प्रख्यात ज्योतिषाचार्य, भविष्यवक्ता और तन्त्र-मन्त्र विशेषज्ञ
डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली
श्मशान भैरवी
हिन्दी का एकमात्र तान्त्रिक उपन्यास

श्मशान भैरवी

हिन्दी का एकमात्र तान्त्रिक उपन्यास, जिसे अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त ज्योतिषाचार्य एवं तन्त्र-शास्त्र के विद्वान डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली ने अपने जीवन के अनुभवों के आधार पर बेहद रोचक एवं रोमांचक शैली में लिखा है।

परम सुन्दरी श्मशान भैरवी मृगाक्षी की तन्त्र साधनाओं, अपने गुरु के साथ तन्त्र-युद्ध तथा किसी अजनबी के प्रति मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत हो उठने की एक ऐसी दास्तान है, जो वास्तव में एक चमत्कारिक उपन्यास होने के साथ-साथ तन्त्र क्षेत्र की अनेक विधियों और नियमों से सीधा साक्षात्कार कराता है।

अद्भुत रहस्यों में डूबा तन्त्र-संसार इसमें कुछ ऐसे उभरकर आया है कि पाठक दांतों तले उंगली दबा ले।

हिन्द पॉकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित
तंत्र-मंत्र पर आधारित पुस्तकें

डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

- श्मशान भैरवी
- हिमालय के योगियों की गुप्त सिद्धियां
- रहस्यमय अज्ञात तन्त्रों की खोज में
- गोपनीय दुर्लभ मन्त्रों के रहस्य
- तन्त्र साधनाएं
- तन्त्र : गोपनीय रहस्यमयी सिद्धियां
- नवीन अंक ज्योतिष

गॉर्डन स्मिथ

- लोक परलोक का आत्मादूत

जे. डी. गोयल

- मृत्यु के बाद : क्या, कहां और कैसे?

विलियम जे. औस्बी

- हिप्नोटिज़्म

पं गोपीनारायण मिश्र

- भारतीय ज्योतिष

श्मशान भैरवी

डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली

हिन्द पॉकेट बुक्स
भारत की सर्वप्रथम पॉकेट बुक्स

उत्कृष्ट साहित्य का प्रतीक
सुन्दर • सुरुचिपूर्ण • सरल

श्मशान भैरवी (तन्त्र-उपन्यास)

नवीन संस्करण : 2006
पहला रिप्रिंट : 2007
दूसरा रिप्रिंट : 2008
तीसरा रिप्रिंट : 2009
चौथा रिप्रिंट : 2011
प्रकाशक : हिन्द पॉकेट बुक्स प्राइवेट लिमिटेड
जे-40, जोरबाग़ लेन, नई दिल्ली-110003
टाइपसेटिंग : विनायक कम्प्यूटर्स, दिल्ली-110032
मुद्रक : यश प्रिंटोग्रॉफिक्स, बी-123, सेक्टर-10, नोएडा-201301

SHAMSHAN BHAIRVI (Tantra-Novel)
By Dr. Narayan Datt Shrimali

ISBN 13: 978-81-216-0510-6
ISBN 10: 81-216-0510-5
06/11/05/09/10/VC/DE/NO/NO/OP125/NP125

सद्गुरुदेव नारायणदत्त श्रीमाली की ज्ञान-यात्रा

वेद ही सभी प्रकार की विद्याओं के आदि स्रोत हैं। ऋषियों ने वेदों के आधार पर अपनी-अपनी व्याख्या उपनिषदों में स्पष्ट की और यही ज्ञान आगे चलकर पुराण संहिता आदि के रूप में स्पष्ट हुआ। जो ज्ञान हमारे प्राचीन ऋषियों ने दिया, वही ज्ञान मानव जीवन का आधार है। आज हम मानव सभ्यता के विकास की बात करते हैं। यह विकास उचित दिशा में हुआ है, लेकिन इसके साथ-ही-साथ जीवन का सार्वभौमिक सिद्धान्त –

सर्वे भवंतु सुखिनः सर्वे संतु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्॥

अर्थात सारे व्यक्ति रोग-शोक से रहित हों, सब लोग अपने जीवन में प्रसन्नता का अनुभव करें और स्नेह में निरन्तर वृद्धि हो, दुःख का सदैव नाश होता रहे। यह सिद्धान्त वेदों में ब्रह्मा के श्रीमुख से उद्धृत है, लेकिन आज यह सिद्धान्त कहां फलित हो रहा है? उन्नति की इस अन्धी दौड़ में मनुष्य ने बाहर की यात्रा, तो बहुत तेज़ी से की, नए-नए आविष्कार, दूरस्थ ग्रहों की यात्रा, विश्व में संचार सम्पर्क सब-कुछ बढ़ गया। जीवन के हर पक्ष के लिए विज्ञान ने नवीन रचनाएं की, लेकिन उससे भी महत्त्वपूर्ण स्थिति यह है कि क्या आधुनिक विज्ञान मनुष्य को अपने भीतर की यात्रा कराने में समर्थ हो सका? इतनी उन्नति के बावजूद संसार में असन्तोष, हिंसा, लूट-खसोट, व्यभिचार, अत्याचार, असुरक्षा की भावना बढ़ती ही जा रही है। आपसी प्रेम और सद्भाव क्यों कम हो रहा है? मनुष्य के जीवन में सुख के सभी उपकरण हैं, लेकिन अन्तर्मन में आनन्द के उपकरण कहां खो गए?

ये ज्वलन्त प्रश्न हैं, जिनका समाधान हमारे वेदों, उपनिषदों में स्पष्ट है। ज्योतिष, आयुर्वेद, योग, साधना, तपस्या इन्हीं से निकली हुई शाखाएं हैं।

विज्ञान हमारी वैदिक संस्कृति में मूल रूप से विद्यमान रहा है, इसीलिए चरक जैसे महान चिकित्सक, सुश्रुत जैसे शल्य चिकित्सक, आर्यभट्ट और भास्कराचार्य जैसे खगोलशास्त्री भी हुए हैं, जिन्होंने वैज्ञानिक सिद्धान्तों की स्थापना की। इन्हीं के साथ महान ज्ञानी ऋषि भी हुए हैं। शंकराचार्य, गौतम, विश्वामित्र, वशिष्ठ, अत्रि, कणाद, वेदव्यास — जिन्होंने जीवन के सिद्धान्तों की व्याख्या की। उनके ज्ञान का मूल आधार यह था कि किस प्रकार मनुष्य अपने जीवन में जन्म से मृत्यु तक की यात्रा स्वस्थ शरीर और स्वस्थ चित्त के साथ कर सके। इसके लिए मन्त्रों की रचना हुई। तन्त्र विज्ञान अर्थात क्रिया विज्ञान का विकास किया गया और उसके लिए आवश्यक उपकरण यन्त्र का निर्माण हुआ। ब्रह्मांडीय शक्ति, जिसे देव शक्ति माना गया, उसके और मनुष्य के बीच तारतम्य बैठ सके, उसी हेतु साधना विज्ञान विकसित किया गया। ऋषियों का निश्चित सिद्धान्त था कि ब्रह्मांडीय शक्ति अनन्त है और इस अनन्त ऊर्जा से मनुष्य निरन्तर शक्ति प्राप्त कर सकता है। उस शक्ति को अपनी शक्ति के साथ संयोजन कर, योग कर वह जीवन के दुखों का निराकरण कर सकता है। देवी-देवता, सम्मोहन, आकर्षण, साधना, विज्ञान, मन्त्र, अनुष्ठान, यज्ञ, मुद्राएं इसी सिद्धान्त का प्रकट स्वरूप हैं। ऋषियों की परम्परा में इस साधना ज्ञान का विकास इस शताब्दी में नवीन रूप से अद्वितीय सिद्ध पुरुषों द्वारा किया गया है।

ऐसी ही विशेष दिव्यता के साथ हर युग में ईश्वरीय सत्ता का स्वरूप इस धरा पर महापुरुषों के रूप में प्रकट होता ही है, जो अपने ज्ञान, अपने जीवन चरित्र और अपनी चेतना द्वारा पूरे भूमंडल को एक नई दिशा प्रदान करते हैं। ऐसे युगद्रष्टा मनुष्य के जीवन में ज्ञान की क्रान्ति लाते हैं, हमारे जीवन का यह सौभाग्य है कि इस घटाटोप अन्धकार-भरे भौतिकता के आडम्बर में बंधी, अपने मूल मूल्यों से विमुख होती जा रही भारतीय संस्कृति को **सद्गुरुदेव परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी सद्गुरुदेव डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली** जैसे महान व्यक्तित्व अवतरित हुए, जिनके जीवन का प्रत्येक क्षण इस बात में व्यतीत हुआ कि किस प्रकार मानव-मूल्य उदात्त हो, व्यक्ति अपने

जीवन में स्वयं की इच्छा के अनुसार प्रसन्न चित्त जीवन जी सके, अपनी आत्मा का प्रकाश स्वयं देख सके और उसे हर समय यह पूर्ण विश्वास रहे कि उसके पास भौतिकता के साथ आध्यात्मिक सत्ता, ईश्वरीय शक्ति, आराध्य शक्ति, गुरु शक्ति सदैव है, जो उसे जीवन के गहरे अन्धकार-भरे कुएं से बाहर निकालकर शुभ प्रकाश चेतना से आप्लावित अवश्य करेगी। उन्होंने यह मार्ग दिखलाया कि भौतिकता और आध्यात्मिकता दो विपरीत ध्रुव नहीं हैं, दोनों का संगम मनुष्य के जीवन में अति आवश्यक है —

अन्यदेवाहुर्विद्ययान्यदाहुर्विद्यया।
इति सुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचक्षिरे॥

सद्गुरुदेव डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली, जिनका संन्यस्त नाम **परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द** जी है, ने इस ज्ञान को जन-जन की भाषा में विस्तृत रूप से प्रदान करने हेतु अपने जीवन में संकल्प लिया। इसकी पूर्ति के लिए पूज्यश्री ने पूरे भारतवर्ष का भ्रमण किया, उन अज्ञात रहस्यों की खोज की, जिनके कारण मानव जीवन परिष्कृत और मधुर बन सकता है। उन्होंने संसार में रहकर सांसारिक जीवन को भी पूर्णता के साथ जिया, क्योंकि उनका यह सिद्धान्त था कि गृहस्थ जीवन की समस्याओं के पूर्ण ज्ञान हेतु गृहस्थ बनना आवश्यक है। अनुभव प्राप्त कर ही शुद्ध ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। उनके द्वारा रचित सैकड़ों ग्रन्थों में मनुष्य के जीवन में त्रास को मिटाकर सन्तोष और तृप्ति प्रदान करने की भावना निहित है। इसी क्रम में उन्होंने मन्त्र-शास्त्र, तन्त्र-शास्त्र, सम्मोहन विज्ञान, ज्योतिष, हस्तरेखा, आयुर्वेद आदि को वैज्ञानिक एवं तार्किक रूप से स्पष्ट किया।

अपने जीवन की 65 वर्षों की यात्रा में मानव जीवन के लिए उन्होंने ज्ञान का अमूल्य भंडार खोल दिया, क्योंकि उनका कहना था कि ज्ञान ही शाश्वत है। इसी क्रम में उन्होंने सन् 1981 में **मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र विज्ञान** मासिक पत्रिका प्रारम्भ की, जिसके माध्यम से सारे रहस्यों को स्पष्ट किया। आज लाखों घरों में पहुंच रही इस ज्ञान प्रदीपिका ने भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की धरोहर स्थापित कर दी है। यह पत्रिका ज्ञान का वह भंडार है, जो मानव जीवन के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित सभी समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने के

साथ-साथ जीवन को उर्ध्वमुखी गति प्रदान करने की दिशा में क्रियाशील बनाने का सार्थक प्रयास है।

अपना कार्य पूर्ण कर देने के पश्चात 3 जुलाई, 1998 को सांसारिक काया का त्याग कर वे परमात्मा के साथ अवश्य समाहित हो गए, परन्तु आशीर्वादस्वरूप उनके द्वारा स्थापित **अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धाश्रम साधक परिवार** और **मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र-विज्ञान** मासिक पत्रिका पूर्ण रूप से गतिशील है। उनके द्वारा प्रदान किया गया ज्ञान ही इसका आधार है और ज्ञान की इस अजस्र गंगा में लाखों शिष्य सम्मिलित हैं। अपने पूज्य पिताश्री के मार्ग पर चलते हुए यह ज्ञान की गंगा निरन्तर प्रवाहित होती रहे, इसी दिशा में सदैव प्रयत्नशील हूं।

डॉ. श्रीमाली मार्ग, हाईकोर्ट कॉलोनी
जोधपुर-342001 (राजस्थान)
फोन : 0291-2432209, 011-27182248

नन्दकिशोर श्रीमाली
सम्पादक
मन्त्र-तन्त्र-यन्त्र विज्ञान

उस दिन तो एक भयंकर विमान दुर्घटना होते-होते बच गई। एक ऐसी विमान दुर्घटना जो अवश्यम्भावी थी और जिससे बचने की कोई उम्मीद ही नहीं थी, परन्तु शायद मेरे भाग्य में और अभी कुछ वर्षों तक जीवित रहना लिखा होगा या अदृष्ट के कुछ संकेत स्थायी होंगे, जिसकी वजह से इस दुर्घटना के होने पर भी मैं बच गया।

उस दिन मैं प्रातःकाल से ही सोच रहा था कि यदि आज मुखर्जी बाबू प्लेन लेकर आ जाएं, तो मैं अवश्य ही गोरखपुर जाऊंगा। मुखर्जी बाबू के साथ कई वर्षों से मेरा परिचय है, क्योंकि जब मैं कलकत्ता में था, तब मैंने उनके बच्चों का ट्यूशन किया था और इसीलिए वे मुझे बेटे की तरह मानते हैं। उनके पास पुराना फॉकर विमान है, जिसमें वे यात्रा करते रहते हैं। उनका आना बनारस भी होता है और यहां से गोरखपुर होते हुए वे पटना चले जाते हैं। कई बार उन्होंने मज़ाक़-मज़ाक़ में मुझसे कहा भी कि तुम कभी मेरे साथ चलो तो सही, तुम्हें ऐसा आभास होगा कि जैसे तुम हवा में ही उड़ रहे हो, परन्तु मैं हंसकर टाल देता। एक मामूली वेतन पाने वाला अध्यापक बहुत ऊंचे-ऊंचे स्वप्न देखे, यह उचित नहीं है।

परन्तु उस दिन तो प्रातःकाल से ही मेरा मन हो रहा था कि मैं हवाई अड्डे पर पहुंच जाऊं। आज गुरुवार है। आज अवश्य ही मुखर्जी मोशाय पटना जाने के लिए आएंगे और तेल आदि के लिए हवाई अड्डे पर रुकेंगे, यह मेरा अनुमान ही था। कोई ज़रूरी नहीं कि आवें ही, परन्तु उनका यह कहा हुआ वाक्य मेरे ध्यान में था कि मैं किसी गुरुवार को तुम्हारे घर आऊंगा और गरमागरम चाय पीऊंगा।

उस दिन स्कूल की छुट्टी थी। सारी रात छटपटाहट में बीती। ऐसा लगा कि मुझे नौकरी छोड़ देनी चाहिए, परन्तु दूसरे ही क्षण मैं अपने मन को समझाता कि यदि नौकरी छोड़ दोगे, तो खाओगे क्या?

मैं हवाई अड्डे की तरफ़ पैदल जा रहा था। मेरा मन ऊटपटांग विचारों से आक्रान्त था, जिसका न आदि था और न अन्त; न यह निश्चित था कि मुखर्जी बाबू मिलेंगे ही और न यह स्पष्ट था कि मैं हवाई अड्डे तक पहुंच भी पाऊंगा, क्योंकि कई बार मैं आधे रास्ते से ही लौट आया हूं। मन कहता कि 'नहीं-नहीं आगे नहीं जाना, लौट चलना है' और मैं लौट आता।

उस दिन आकाश साफ़ था। मैं जब बनारस के हवाई अड्डे पर पहुंचा, तो वह सुनसान-सा था। आज तो वह अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा बन गया है, परन्तु जिन दिनों की मैं बात कर रहा हूं, यह एक सामान्य-सा हवाई अड्डा था।

मैं उस हवाई पट्टी को देख ही रहा था कि उधर आकाश में घर्र-घर्र की ध्वनि सुनाई दी। ऐसा लगा कि कोई विमान उतरने की तैयारी में है और उतरने का संकेत मांग रहा है। कुछ ही क्षणों बाद एक फॉकर विमान रन-वे पर दौड़ता हुआ हवाई अड्डे की उस मटमैली इमारत के सामने आकर रुक गया था। यह छोटा-सा फॉकर विमान था, जिसमें पायलट के अलावा चार आदमी और बैठ सकते हैं। कुछ ही मिनटों बाद हवाई जहाज़ का दरवाज़ा खुला और मुखर्जी बाबू बाहर आते हुए दिखाई दिए।

मेरे लिए तो यह आश्चर्य ही था, क्योंकि न तो मेरे पास कोई सूचना थी कि आज मुखर्जी बाबू आएंगे और न इस प्रकार का कोई विचार ही, परन्तु इस समय तो वे हवाई जहाज़ की सीढ़ियों से उतरते हुए साफ़ दिखाई दे रहे हैं — वही गोरा-सा सुन्दर गोल बंगाली चेहरा, सिर के छोटे-छोटे और सफ़ेद कुरते-धोती में लिपटा हुआ यह व्यक्तित्व मेरा सुपरिचित था। हवाई अड्डे की इमारत के पास मुझे खड़ा देखकर प्रसन्नता से उनका चेहरा देदीप्यमान हो उठा। हाथ की छड़ी को कलाई पर रखकर मुखर्जी बाबू ने अपनी बांहों में समेट लिया, बोले, "आज अचानक हवाई अड्डे पर कैसे आ गए? लगभग दो वर्ष हो गए हैं, तुम्हें कलकत्ता आए हुए। तुम्हें ध्यान होना चाहिए कि पिंकी और टीटू नित्य तुम्हारी याद करते हैं, परन्तु बनारस आकर तो तुमने हम लोगों को

ऐसे भुला दिया है जैसे जीवन में कोई परिचय ही नहीं रहा हो। अरे, समय और स्थान बदलने पर भी सम्बन्ध थोड़े ही बदलते हैं? अबकी बार मैं पटना से कलकत्ता जाऊंगा, तो तुम्हें अवश्य ही अपने साथ ज़बरदस्ती लेकर जाऊंगा।"

फिर रुककर बोले, "चलो, कैंटीन में चलते हैं और गरमा-गरम चाय की एक-एक प्याली ले लेते हैं। तब तक पायलट 'फॉकर' में पेट्रोल आदि ले लेगा।" कहते-कहते उन्होंने मेरा हाथ पकड़कर कैंटीन की तरफ़ घसीट ही लिया।

कैंटीन में कुर्सियों पर बैठने के बाद अपने हाथ से चाय बनाते हुए मुखर्जी बाबू बोले, "हां, अब कहो हवाई अड्डे पर कैसे आए? तुमने तो कई बार गोरखपुर आदि चलने के लिए कहा था, आज 'फ्री' हो तो मेरे साथ चले चलो। मैं कल वापस लौटूंगा, तब तुम्हें यहां ड्राप कर दूंगा।"

मैंने एक क्षण के लिए हिसाब लगाया कि कल स्कूल जाना है और अगर नहीं गया, तो एक दिन का वेतन फिर कट जाएगा, परन्तु उस विचार को मन-ही-मन दबाकर मैंने कहा, "मुखर्जी मोशाय! आज मेरी इच्छा गोरखपुर जाने की हो रही है, यद्यपि प्रातःकाल से ऐसा कोई विचार या ऐसा कोई चिन्तन मेरा नहीं था, और न कोई ऐसा ज़रूरी काम है कि मुझे प्लेन से गोरखपुर जाना ही पड़े, परन्तु पता नहीं क्यों सुबह से ही मन के एक कोने से बराबर इच्छा बलवती हो रही है कि मैं गोरखपुर चलूं। गोरखपुर ही क्यों चलूं, इसका भी कोई कारण मेरे दिमाग़ में स्पष्ट नहीं है, परन्तु जब भी कहीं चलने की इच्छा होती है, तो गोरखपुर का ही ध्यान मन में आता है। आप कहते हैं तो मैं आपके साथ चला चलता हूं, पर कल वापस यहां कितने बजे पहुंच पाएंगे?"

मुखर्जी बाबू ने चाय का एक घूंट लेकर कप को प्याली में रखते हुए बोले, "यही कोई ग्यारह बजे के आसपास। यहां से मुझे लखनऊ जाना ज़रूरी है, और वहां किसी से दो बजे का अपॉइंटमेंट है, इसलिए ग्यारह-सवा ग्यारह तक निश्चित ही यहां पहुंच जाएंगे। तुम चाहो तो यहां से सीधे ही स्कूल पहुंच सकते हो। यहां से तो वह नज़दीक ही होगा।"

चाय समाप्त हो गई थी। मैंने तो पहले ही चाय समाप्त कर दी थी। चाय समाप्त होते ही मुखर्जी बाबू उठ खड़े हुए, बोले, "चलो, चलते हैं, हमें

जल्दी ही पहुंच जाना चाहिए।" और मैं उनके साथ रन-वे पर फॉकर विमान के पास आगे जाने के लिए आ गया।

मैं और मुखर्जी बाबू जब वायुयान में चढ़े, तो पता नहीं क्यों मेरा हृदय एक क्षण के लिए कांपकर रह गया। कभी-कभी आने वाली सम्भावित घटनाओं को हमारा सूक्ष्म मन स्वतः आंक लेता है। यह अलग बात है कि हम ज़रूरत से ज़्यादा बुद्धिमान होने का दम्भ भरने के कारण इन सबको दकियानूसी कहकर टाल देते हैं, परन्तु अब यह वैज्ञानिक परीक्षणों से सिद्ध हो चुका है कि हमारा सूक्ष्म मन समस्त संसार में विचरण करता रहता है; और आने वाली अज्ञात घटनाओं को पहले से ही भांप लेता है! एक क्षण के लिए मेरा मन घबराया भी, और विचलित भी हुआ। ऐसा लगा, जैसे मैं वायुयान से नीचे उतर जाऊं और साथ-ही-साथ मुखर्जी बाबू को भी उतार लूं, परन्तु तब तक पायलट स्मिट ने वायुयान के इंजन को स्टार्ट कर दिया था और परिचारिका ने वायुयान का दरवाज़ा बन्द कर दिया था।

कुछ क्षणों के लिए वायुयान रन-वे पर दौड़ा और दूसरे ही क्षण उसने धरती छोड़कर आकाश की तरफ़ पंख पसार दिए।

जब तक वायुयान अपनी निश्चित ऊंचाई तक पहुंचकर स्थिर नहीं हो गया, तब तक मैं जड़वत मौन रहा, मुखर्जी बाबू भी कुछ बोले नहीं, परन्तु उनके हाव-भाव और चेहरे के उतार-चढ़ाव से लग रहा था कि मेरी चुप्पी उनको खल-सी रही है। एक-दो मिनट मेरी ओर ताकने के बाद बोले, "क्या बात है? बड़े चुप-चुप से हो, क्या घर की याद आने लगी है?"

मैं कुछ बोला नहीं। तब तक परिचारिका ने चाय के दो कप हम दोनों के सामने रख दिए। अभी-अभी तो चाय पी थी, इसलिए पीने की इच्छा ही नहीं हो रही थी, परन्तु मुखर्जी बाबू को प्याला होंठों से लगाते देखकर मैंने भी प्याला हाथ में लेकर दो घूंट लिये।

अभी मुश्किल से वायुयान को वाराणसी छोड़े दस मिनट हुए होंगे कि वह अस्थिर गति से डोलने लगा। ऐसा लगा जैसे इंजन में कुछ गड़बड़ी आ गई हो, और वायुयान कैप्टेन के नियन्त्रण में न रहा हो। मुखर्जी बाबू के कहने से मैंने कुर्सी की पट्टी कमर में बांध ली, परन्तु फिर भी वायुयान बराबर हिचकोले

खा रहा था, उसकी गति सामान्य नहीं थी।

तभी परिचारिका कॉकपिट से घबराती हुई बाहर निकली और मुखर्जी बाबू से बोली, "मुखर्जी मोशाय! इंजन का एक पंख टूटकर अलग हो गया है, और वायुयान स्मिट के नियन्त्रण में नहीं है। अगले ही क्षण कुछ भी दुर्घटना हो सकती है, आप लोग सावधान रहें, मैं इमरजेंसी दरवाज़े का लॉक खोलकर तैयार रखती हूं।"

मुखर्जी बाबू के चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। एक पंख टूटने का मतलब वायुयान नियन्त्रण में नहीं रहा है और अगले कुछ ही सेकेंडों में यह फॉकर या तो हवा में ही जलकर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा या अनियन्त्रित होकर ज़मीन से टकरा जाएगा।

उस एक क्षण में मेरे मन में सैकड़ों-सैकड़ों विचार उठकर लुप्त हो गए। मृत्यु से एक क्षण पहले पूरे जीवन का इतिहास आंखों के सामने साकार हो जाता है और वस्तुतः उस एक क्षण में मेरे जीवन के सारे चिह्न, जीवन की सारी घटनाएं आंखों के सामने तैर गईं। कल के सपने मटियामेट हो गए। मैं इस प्रकार अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाऊंगा, इसकी तो मुझे कल्पना ही नहीं थी। मैं अपने-आप को काफ़ी मज़बूत दिल वाला समझता रहा हूं, परन्तु इस क्षण मेरा सारा धैर्य समाप्त हो गया, मेरा चेहरा मृत्यु की आशंका से सफ़ेद झक हो गया।

मैंने इस कठिन मृत्यु की घड़ी में भी मुखर्जी बाबू के चेहरे की ओर ताका, तो ऐसा लग रहा था जैसे रुई की तरह उस सफ़ेद चेहरे में ख़ून का क़तरा भी नहीं रहा हो। आंखों से आंसू बह रहे थे, गला रुंध गया था और होंठों से 'मां काली' शब्द उच्चरित हो रहे थे। मौत और आदमी का क्या सम्बन्ध होता है? यह मृत्यु की घड़ियों में भली प्रकार से जाना जा सकता है। हम दोनों के हृदय फड़फड़ा रहे थे, और ऐसा लग रहा था कि कुछ ही क्षण हमारी ज़िन्दगी के बाक़ी हैं। मैं खिड़की के पास बैठा हुआ बाहर का दृश्य भली प्रकार से देख रहा था। मैं देख सकता था कि वायुयान निरन्तर अपनी ऊंचाई खो रहा है और तीव्रता के साथ ज़मीन की तरफ़ बढ़ रहा है।

चालक स्मिट पूरी शक्ति से यन्त्रों से जूझ रहा था। उसका शरीर

पसीने-पसीने हो रहा था। वह किसी भी प्रकार से वायुयान को अपने नियन्त्रण में नहीं ले पा रहा था। हमारी कुर्सी के सामने कॉकपिट के बाहर होस्टेस घुटनों के बल बैठी क्रास को सीने से लगाए, ईसा को स्मरण कर रही थी।

वायुयान कटी पतंग की तरह डोलता हुआ निरन्तर नीचे की ओर झुक रहा था। तभी मैंने देखा कि एक लम्बा तगड़ा योगी वायुयान के समानान्तर उड़ रहा है। मेरे लिए यह घोर आश्चर्य की बात थी, परन्तु ऐसी कठिन परिस्थितियों में भी जो कुछ मैं देख रहा था, वह भी सर्वथा सत्य था। लम्बा, दुबला-पतला शरीर, गौर वर्ण और चमकती हुई दो आंखें, सिर पर लम्बी और सफ़ेद जटा तथा नीचे की ओर झूलती हुई दाढ़ी साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थी। मैं देख रहा था कि वायुयान जिधर मोड़ लेता है, साधु भी उधर ही समानान्तर मोड़ ले रहा था। मेरी बुद्धि कुछ भी काम नहीं कर रही थी। मैंने अपनी आंखें मलकर देखा, परन्तु जो सत्य था, वह सत्य था ही, क्योंकि मैंने यह अनुभव किया कि वायुयान अब उतना नहीं डोल रहा है जितना कि पहले डोल रहा था। हो सकता है यह मेरी आंखों का भ्रम हो। यह भी हो सकता है कि मृत्यु से पूर्व जिस प्रकार मनुष्य को अजीबोग़रीब दृश्य और घटनाएं दिखाई दे जाती हैं, उसी प्रकार के दिवास्वप्न का मुझे अनुभव हो रहा हो। पर यह भी तो हो सकता है कि वास्तव में ही कोई उच्च कोटि का योगी हमें बचाने का प्रयत्न कर रहा हो।

इन योगियों की महिमा निराली है। इनके पास प्रत्येक प्रकार की सिद्धि और शक्तियां होती हैं। इनके लिए सब-कुछ सम्भव होता है, हो सकता है यह योगी भी आकाश-पथ से कहीं आगे की ओर गतिशील हो रहा होगा और वायुयान को डोलते हुए देखकर अपनी शक्ति से उसे नियन्त्रित करने का प्रयत्न कर रहा हो। अभी भी मैं उस साधु को बराबर वायुयान के समानान्तर उड़ता हुआ देख रहा था।

तभी मैंने देखा कि वायुयान ज़मीन के बहुत निकट आ गया है। कॉकपिट का दरवाजा खुला था। मैं उसके अन्दर बैठे हुए चालक स्मिट को देखने के लिए मुड़ा और उस एक क्षण में ही मैंने भांप लिया कि उसका चेहरा मृत्यु की छाया से ग्रस्त है। आंखों में मौत पूरी तरह से समा गई है, बुद्धि पर अशुभ

छाया पड़ी हुई है। इसमें कोई दो राय नहीं कि अब इस वायुयान का ज़मीन से टकराना निश्चित है। टकराते ही एक भयंकर विस्फोट होगा, वायुयान के परखचे उड़ जाएंगे और इंजन में आग लग जाने की वजह से सब-कुछ स्वाहा हो जाएगा।

अभी गोरखपुर बहुत दूर था। वायुयान ज़मीन से मुश्किल से सौ मीटर ऊंचा रहा होगा। एक क्षण के लिए मैंने बाहर झांका, तो वायुयान पेड़ों की फुनगियों को छूता मौत की ओर भागा चला जा रहा था, जो साधु समानान्तर उड़ता हुआ साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था, अब उसका कहीं कोई पता नहीं था।

तभी वायुयान पेड़ की डाली को काटता हुआ एक खेत की समतल भूमि पर उतर गया। ऐसा लगा, जैसे किन्हीं अदृश्य हाथों ने खिलौने की तरह उठाकर उसे ज़मीन पर रख दिया हो, न तो किसी प्रकार का विस्फोट हुआ और न वायुयान में आग ही लगी। जो कुछ हुआ वह सर्वथा अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक था।

पायलट स्मिट के लिए तो यह सब-कुछ अप्रत्याशित था। वह दौड़कर बाहर आया और कॉकपिट में ही खुले हुए संकट द्वार से हमें बाहर निकालने के लिए घसीटकर ले जाने लगा। मुखर्जी बाबू की आंखें मृत्यु-भय से बन्द थीं और सारा शरीर लगभग ठंडा-सा पड़ गया था। मि. स्मिट के तीन-चार बार हिलाने से उनकी मृत्यु-तन्द्रा भंग हुई।

स्मिट ने अंग्रेज़ी में मुखर्जी को बाहर चलने के लिए कहा, साथ-ही-साथ मुझे भी कहा, "इंजन बहुत गर्म है, और किसी भी क्षण यह फटकर जल जाएगा, इसीलिए तुरन्त वायुयान से बाहर आ जाइए। और वह मुखर्जी बाबू को घसीटते हुए कॉकपिट के संकट द्वार की ओर ले गया।

मैं भी मुखर्जी बाबू के पीछे था। जब मैंने कॉकपिट में प्रवेश किया, तो मुझे ताज़े खिले हुए चमेली के पुष्पों की सुगन्ध अनुभव हुई। परन्तु यह क्षण सोचने का नहीं था, न इस बात का पता लगाना था कि वह सुगन्ध कहां से आ रही है, इस समय तो जल्दी-से-जल्दी बाहर निकलकर उतनी दूर जाकर रुकना था।

तभी मैंने सामने व्हील पर चमेली की माला पड़ी हुई देखा, अब तक चालक स्मिट संकट द्वार से नीचे उतर गए थे और सहारा देकर उन्होंने मुखर्जी बाबू को भी उतार लिया था। होस्टेस मेरे पीछे थी। मि. स्मिट मुझे नीचे उतरने के लिए कह रहे थे, पर संकट द्वार पर एक क्षण के लिए बैठकर मैंने अंग्रेज़ी में मि. स्मिट से उस चमेली की माला की तरफ़ इशारा करते हुए पूछा, "क्या यह माला आपने ख़रीदी, या यहां रखी थी?"

मि. स्मिट भी उस माला को देखकर आश्चर्यचकित रह गए थे। उन्होंने कहा, "नो-नो, मुझे फूलों से एलर्जी है, यह माला यहां कॉकपिट में कहां से आ गई?"

मैं रहस्य समझ गया कि उस योगी ने ही कॉकपिट में बैठकर उन यन्त्रों को अपने नियन्त्रण में लेकर वायुयान को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुंचाए खेत में उतार लिया था और जाते समय स्मृति-स्वरूप वह माला यहां रख गए थे।

मेरे चेहरे पर मृत्यु की इन भयानक घड़ियों में भी मुस्कान फैल गई।

चालक मि. स्मिट मुखर्जी बाबू को लेकर खेत में एक तरफ़ तेज़ी से आगे बढ़ रहे थे, और हम लोगों को भी उस तरफ़ आने का संकेत कर रहे थे, परन्तु अब मैं निश्चिन्त था, क्योंकि मैं समझ रहा था यदि वायुयान के परखचे उड़ने ही होते, तो कभी के उड़ गए होते। अब कुछ भी नहीं होगा।

कुछ समय हम खड़े-खड़े उस वायुयान की तरफ़ ताकते रहे, हर पल, हर क्षण यही आशंका मन में थी कि अब किसी भी क्षण वायुयान गर्मी की अधिकता से जलकर समाप्त हो जाएगा। आधा घंटा बीत गया, पर फिर भी कुछ नहीं हुआ, वायुयान ज्यों-का-त्यों अडिग खड़ा था। अब तक पास के गांव के कई लोग इस कौतूहल को देखने के लिए खेत में एकत्र हो गए थे। ऐसा लग रहा था, जैसे किसी ने वायुयान को पकड़कर धीरे से ज़मीन पर उतार दिया हो। यह हम सबके लिए आश्चर्यजनक घटना थी। मि. स्मिट के अनुसार वायुयान का बचना या सही ढंग से लैंडिंग करना सम्भव ही नहीं था, पर जो कुछ था, वह हम सबके लिए आश्चर्यजनक ही था।

निर्णय यही हुआ कि गोरखपुर यहां से दस-बारह किलोमीटर दूर है, इसलिए कोई टैक्सी करके गोरखपुर के एयरपोर्ट के कर्मचारियों से मदद लेकर

वायुयान को कलकत्ता तक उड़ाने लायक बना दिया जाए।

हम कुछ समय तक तो पैदल चले। थोड़ा-सा आगे चलने पर एक ख़ाली ट्रैक्टर मिल गया और हम गोरखपुर पहुंच गए।

मैं और मुखर्जी मोशाय गोरखपुर के नूतन होटल में रुके। यह होटल अन्य होटलों की अपेक्षा ज़्यादा साफ़-सुथरा प्रतीत हुआ। थके-थकाए तो थे ही, इसलिए स्नान आदि से निवृत्त होकर कपड़े बदले और नाश्ता किया, परन्तु मन में किसी प्रकार की शान्ति नहीं थी। इतने वर्षों से मुखर्जी बाबू का निमन्त्रण था और जब निमन्त्रण का पालन कर वायुयान में बैठा, तो यह घटना घट गई, जो सर्वथा अप्रत्याशित थी। इससे भी ज़्यादा आश्चर्यजनक घटना यह थी कि हम सब मृत्यु के मुंह से सकुशल वापस लौट आए थे। इससे एक बात तो स्पष्ट थी कि अभी हमारे भाग्य में मौत लिखी नहीं थी। ईश्वर को अभी हमें कुछ दिन और ज़िन्दा रखना था, कोई-न-कोई ऐसा हेतु अवश्य है, जिसकी वजह से हम बच सके हैं, यह हेतु, यह रहस्य, और काल के गर्भ में क्या घटना है, यह तो आने वाला समय ही बता सकेगा।

शाम को मैं और मुखर्जी बाबू गोरखपुर के बाज़ार में घूमते रहे। गीता प्रेस जाकर दो-चार किताबें ख़रीदीं और शाम के लगभग छः-साढ़े छः बजे हम गोरखनाथ के मन्दिर की ओर चले गए।

गोरखनाथ सही शब्दों में युग प्रवर्तक और युग पुरुष थे, जिन्होंने नवीन मन्त्रों की रचना कर एक नया मार्ग प्रशस्त किया था, जो कि गोरखनाथ सम्प्रदाय के नाम से विश्वविख्यात है। वास्तव में इस अवधूत योगी ने विपरीत परिस्थितियों में भी अपने-आप को जीवित रखकर तथा संघर्षों, कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना कर एक ऐसा रास्ता दिखाया था, जिसके आलोक में गूढ़तम मन्त्र और रहस्य दुनिया के सामने स्पष्ट हो सके हैं।

यदि देखा जाए, तो गोरखनाथ का एक-एक दिन, एक-एक क्षण चुनौतियों का क्षण था। उस समय सारा वातावरण गोरखनाथ के ख़िलाफ़ था, परन्तु इस काल-पुरुष ने अपनी अजेय संकल्प शक्ति के सहारे उन चुनौतियों का डटकर सामना किया और सारे विरोधियों को परास्त करता हुआ अपने पथ पर अविराम गति से अग्रसर होता रहा, इसीलिए आज भी मन्त्र अध्येता

उसे काल-पुरुष के नाम से सम्बोधित करते हैं।

मैं जब मुखर्जी बाबू के साथ मन्दिर में पहुंचा, तो चारों तरफ़ एक विशेष प्रकार की शान्ति महसूस हुई, परन्तु यह शान्ति मरघट की शान्ति नहीं थी, अपितु इस शान्ति में भी अन्दर-ही-अन्दर एक ऐसा लावा, एक ऐसा विद्युत प्रवाह महसूस हो रहा था, जिससे कि सारा वातावरण चैतन्य, ऊर्जस्वित और प्राणवान हो रहा था। मुझे वह वातावरण अत्यधिक रुचिकर प्रतीत हुआ।

मन्दिर के एक तरफ़ महन्त जी का निवास स्थान है, जहां गोरखनाथ से सम्बन्धित साहित्य भरा पड़ा है। महन्त जी स्वयं विद्वान और गोरख ज्ञान के अन्यतम अध्येता हैं, जिनके प्रयत्नों से इस गोरख साहित्य की सुरक्षा हो सकी है। अत्यन्त सुन्दर आकर्षक शरीर, देदीप्यमान चेहरा, उन्नत भाल और आकर्षण प्रदान करने वाली आंखें, सब मिलाकर महन्त जी के व्यक्तित्व को भव्यता ही प्रदान कर रही थीं। उन्होंने हम दोनों को बाहर से आया हुआ जान प्रेमपूर्वक अपने पास बिठाया और आने का प्रयोजन पूछा।

आधे घंटे के बाद हम दोनों वहां से उठ खड़े हुए और मन्दिर के मुख्य भाग में जाकर गोरखनाथ की आकर्षक और तेजस्वी प्रतिमा के दर्शन किए। वास्तव में गोरखनाथ की मूर्ति अत्यन्त ही प्राणवान और चेतना-युक्त है, ऐसा लगता है कि जैसे गोरखनाथ की विशाल आंखें सीधे हृदय में प्रवेश कर रही हैं और हमारे सारे अन्तर को टटोलकर देख रही हैं। मैं मन-ही-मन उस छवि पर मुग्ध-सा हो गया। मैंने इस महापुरुष की जीवनी पढ़ी थी। इससे सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन किया था, गोरख मन्त्रों तथा गोरखनाथ की नवीन पद्धति का गहराई से विवेचन किया था, और इन सबका मेरे चित्त पर एक गहरा और स्थायी असर पड़ा था, इतने उच्च कोटि के ग्रन्थों का रचयिता मेरे सामने खड़ा था वह चाहे मूर्ति रूप में ही क्यों न हो, परन्तु था तो वही व्यक्तित्व ही, और मेरे दोनों हाथ स्वतः श्रद्धा से उनके चरणों में झुक गए।

मैं और मुखर्जी बाबू गोरखनाथ की मूर्ति के दर्शन कर बाहर निकले और प्रांगण से होते हुए ज्यों ही सीढ़ियों से नीचे उतरे कि सीढ़ियों के एक तरफ़ एक तेजस्वी कनफटा योगी खड़ा था। देखकर सारा शरीर सन्न-सा रह गया। मैं ही नहीं मुखर्जी मोशाय भी उस अवधूत को देखते ही दो क़दम पीछे हट गए।

लम्बा-चौड़ा बलिष्ठ शरीर, बैल की तरह सुदृढ़ स्कन्ध, मोटी और मज़बूत ग्रीवा, दो हाथ की लम्बी-चौड़ी छाती जिस पर रोमावली उगी हुई थी, लम्बे और मज़बूत हाथ, प्रशस्त भाल, उन्नत ललाट और कटोरे की तरह मोटी-मोटी लाल सुर्ख़ आंखें जैसे कि हज़ारों बोतलों का नशा एक बार में ही कर लिया हो। सिर पर इतना ऊंचा और लम्बा, जटा-जूट कि कुछ पता ही नहीं चलता था। एक हाथ में मोटा-सा चिमटा और दूसरे हाथ से लोहे की बनी हुई कोई नुकीली वस्तु, जिसे देखते ही भय लगता था। ऐसा भयंकर व्यक्तित्व इससे पहले मैंने कभी नहीं देखा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि यह यदि किसी मज़बूत बैल से टकरा जाए, तो केवल एक टक्कर में ही बैल के प्राण पखेरू उड़ने स्वाभाविक हैं। आंखों से क्रोध की चिनगारियां निकल रही थीं, उसको देखकर पूरे शरीर में सिहरन-सी दौड़ गई।

मुखर्जी बाबू उसको देखने के बाद दो-तीन क़दम स्वतः ही पीछे हट गए और चक्कर-सा खाकर सीढ़ियों पर ही धम्म से बैठ गए।

मैंने एक दृष्टि मुखर्जी बाबू पर डाली और दूसरी दृष्टि उस कनफटे अवधूत पर डालकर मैंने दोनों हाथों से बंगाली बाबू को उठा लिया, तभी यह कनफटा अवधूत ज़ोरों से अट्टहास कर हंस पड़ा। उसकी हंसी वास्तव में पैशाचिक थी। ऐसा लग रहा था जैसे बांस का जंगल हवा के ज़ोर से खड़खड़ा गया हो या श्मशान में किसी पिशाच ने ज़ोरों से अट्टहास कर लिया हो। वह हंसी प्राणों को कंपाने वाली थी।

मैं मुखर्जी बाबू को लेकर सीढ़ियों से उतरकर निकल जाना चाहता था, परन्तु वह अवधूत सीढ़ियों के बीच में इस प्रकार से खड़ा था कि हम चाहते हुए भी सीढ़ियां पारकर निकल नहीं सकते थे, फिर भी मैंने हिम्मत कर दो सीढ़ियां मुखर्जी बाबू को लेकर नीचे उतरा कि उस अवधूत की आंखें तन गईं, आंखों के डोरे लाल सुर्ख़ हो गए और पूरा चेहरा तमतमा उठा। उसके सामने ही उसकी अवज्ञा कर बिना उसकी अनुमति के कोई दो सीढ़ियां भी नीचे उतर जाए, वह शायद उसके लिए चुनौती-सा था, तभी उसने अपनी वे लाल सुर्ख़ आंखें मेरे चेहरे पर गड़ा दीं।

एकबारगी ही हम दोनों कांप कर रह गए। मुझे चिन्ता अपनी नहीं थी,

जितनी मुखर्जी की। यदि हार्ट-अटैक हो गया या ब्रेन हेमरेज हो गया, तो एक मुसीबत मेरे सामने खड़ी हो जाएगी। इसलिए मैं बंगाली बाबू को अपने पीछे कर नीचे उतर रहा था और चाहता था कि इस योगी से यदि उलझना नहीं ही हो, तभी ठीक रहेगा। 'राजा, जोगी, अगन, जल इनकी उलटी रीत' ये कड़े और अपनी ही धुन के जीव होते हैं। न मालूम कब क्या कर बैठें, इसलिए इन लोगों से उलझना व्यर्थ की मुसीबत को मोल लेना होता है।

मैं आगे-आगे सीढ़ियों से उतर रहा था। सीढ़ियों के नीचे बाईं ओर वह अवधूत खड़ा था, इसलिए अपने दाहिने हाथ में मुखर्जी बाबू का हाथ पकड़ रखा था।

ज्यों ही मैंने अन्तिम सीढ़ी को पार कर आगे क़दम रखा और मुश्किल से दो-तीन डग ही भरे होंगे कि वह अवधूत ज़ोरों से हंस पड़ा। उसकी हंसी ऐसी डरावनी और दिल दहला देने वाली थी कि चलते-चलते भी हमारे पांव ठिठक गए, परन्तु मैं रुकना नहीं चाहता था, इसीलिए एक क्षण के लिए रुककर दूसरे ही क्षण मैं मुखर्जी बाबू को घसीटता हुआ-सा जल्दी-जल्दी डग भरने का उपक्रम कर ही रहा था कि मेरे कन्धे पर वज्र की तरह हाथ पड़ा। वह हाथ मेरे कन्धे पर पड़कर रह नहीं गया, अपितु पैनी और मज़बूत उंगलियां कन्धे के मांस से गड़-सी रही थीं, और कन्धे के ऊपर की हड्डी उसकी हथेली के नीचे दब-सी रही थी। मैं एक क्षण में ही भांप गया कि यह मज़बूत और वज्र की तरह हथेली उसी अवधूत की हो सकती है।

मैं पीछे मुड़ा, हथेली के दबाव की वजह से पूरी तरह से पीछे मुड़ नहीं पाया, किन्तु इस छोटे से मोड़ में ही उसके तमतमाए चेहरे और लाल सुर्ख़ आंखों को देखकर पूरे शरीर में एक सिहरन-सी व्याप्त हो गई। सारा चेहरा अंगार की तरह दहक रहा था और रह-रहकर उसकी मूंछों के बाल और दाढ़ी फड़क रहे थे। यदि मज़बूत दिल-दिमाग़ वाला आदमी भी उस अंधेरी रात में उस अवधूत को ऐसे स्वरूप में देख ले, तो निश्चित ही गश खाकर गिर सकता था, फिर भी मैंने अपने-आपको स्वस्थ बनाए रखने का प्रयास किया।

अब तक उसका वह वज्रयुक्त हाथ मेरे कन्धे पर पड़ा था और व्याघ्र की तरह उसकी पैनी उंगलियां मेरे कन्धे के मांस में गड़ रही थीं। मैंने एक

क्षण के लिए अपनी आंखें उसकी आंखों में डाली और दोनों हाथों की ताक़त लगाकर कन्धे पर रखे हुए हाथ को झटक दिया।

पर मैं एक क्षण से ज़्यादा उसकी आंखों में ताक नहीं सका, क्योंकि उनमें बला की गर्मी और तेज था, मैंने न मालूम किस जोश और साहस में उसके हाथ को झटक तो दिया, परन्तु भावी अज्ञात आशंका से मैं मन-ही-मन घबरा गया कि अब यह कुछ भी कर सकता है, अगर सन्तोष था, तो केवल इतना ही कि मैं जंगल में नहीं हूं, अपितु मन्दिर में हूं और अभी भी इक्का-दुक्का लोग अवश्य ही आठ-दस लोग मेरी सहायता को आ जाएंगे। मैं उस वक़्त चिल्लाना भी चाहता था, परन्तु यह प्रयास भी व्यर्थ गया, क्योंकि अज्ञात भय ने मेरे ऊपर पूरी तरह से नियन्त्रण कर लिया था और मेरी यह चीख़ मेरे अन्दर ही घुटकर रह गई।

कोई व्यक्ति उसके हाथ को झटक दे, यह उसके लिए चुनौती-सा था। इसी वजह से उसका चेहरा क्रोध से तमतमा गया और उसके मुंह से ज़ोर से 'हुं' की ध्वनि निकली, जो कि अत्यधिक भारी घोषमय और दिल दहला देने वाली थी। मानो कह रहा हो, तुम्हारी यह हिम्मत कि तुम मेरे हाथ को झटक दो। यह 'हुं' कई-कई प्रश्न और अज्ञात आशंकाएं मेरे सामने खड़ी कर गया, परन्तु जो कुछ होना था वह हो चुका था। अब डरकर पीछे हटना कोई मायने नहीं रखता था। मैं उस समय वहां से भाग सकता था और मुझे विश्वास था कि यदि मैं भागता तो वह अवधूत पीछे दौड़कर मुझे शायद ही पकड़ पाता, परन्तु दुबली-पतली काया लिये मुखर्जी बाबू मेरे साथ थे और वे किसी भी तरीक़े से मेरे साथ इतना तेज़ दौड़ नहीं सकते थे। उनको छोड़कर मेरा जाना सम्भव ही नहीं था, इसलिए मैं वहीं पर डरकर खड़ा रहा।

मैंने अपनी दाहिनी ओर मुखर्जी बाबू को देखा, तो मुझे दूसरा धक्का लगा। मुखर्जी बाबू उस भीमकाय अवधूत को देखकर और उसकी हुंकार ध्वनि को सुनकर निर्जीव-से हो गए थे। उनके प्राण मुंह को आ गए थे, आंखें फैल गई थीं और उनका सारा शरीर थर-थर कांप रहा था। ऐसा लग रहा था, यदि मैंने एक क्षण का भी विलम्ब किया, तो निश्चित ही मुखर्जी बाबू धड़ाम से गिर पड़ेंगे और फिर उनको उठाना, संभालना और फिर होश में लाना

अत्यन्त कठिन हो जाएगा।

मैं उनको सहारा देता, तब तक वे धम्म से ज़मीन पर बैठ गए। अकस्मात मैंने देखा कि वह अवधूत मेरे पास से हटकर मुखर्जी बाबू के सामने आकर खड़ा हो गया और उनकी दाहिनी कलाई पकड़कर एक ही झटके में उन्हें पैरों पर खड़ा कर दिया। वह तो पहले से ही आधे मरे हुए थे, कलाई पकड़ते ही उनका रहा-सहा जोश और दमखम भी समाप्त हो गया।

अवधूत मुखर्जी बाबू की कलाई पकड़कर आगे बढ़ गया और वह भी घिसटते हुए से उसके पीछे-पीछे चलने लगे। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई कसाई बकरे को पकड़कर वध करने के लिए ले जा रहा हो। जब अवधूत आठ-दस क़दम आगे बढ़ गया, तो मैं अपने-आप को रोक नहीं पाया और मुखर्जी बाबू के साथ-साथ मैं भी आगे बढ़ गया। मैंने एक-दो बार चिल्लाने की भी कोशिश की।

मैं यदि एकाध मिनट के लिए रुका भी, तो वह व्यर्थ ही रहा, क्योंकि मैं मुखर्जी बाबू और अपने बीच का फासला बढ़ाना नहीं चाहता था। अंधेरी रात में यदि थोड़ा-सा भी फासला बढ़ गया, तो फिर उनको ढूंढ़ पाना या देख पाना असम्भव हो जाएगा, इसलिए मैं बाहर दौड़ता हुआ-सा उनके साथ ही रहना चाहता था।

मन्दिर के बाहर आकर वह अवधूत एक क्षण के लिए रुका और मुखर्जी बाबू का हाथ उसने छोड़ दिया। छोड़ने के बावजूद मुखर्जी बाबू जड़वत वहीं खड़े रहे। ज्यों ही उसने मुखर्जी बाबू का हाथ छोड़ा, एक या दो क्षण तो वह थरथराते खड़े रह सके, पर दूसरे ही क्षण भरभराकर नीचे बैठ गए।

मैं मुखर्जी बाबू को संभालने या खड़ा करने का प्रयत्न कर ही रहा था कि उस अवधूत का दाहिना हाथ मेरी कलाई पर पड़ा। मेरी दाहिनी कलाई को पकड़कर उसने एक ही झटके में खड़ा कर दिया और मुझे बिना मेरी इच्छा के तेज़ी से लेकर आगे बढ़ गया। मैंने आठ-दस क़दम चलने के बाद प्रतिरोध भी किया, क्योंकि मैं मुखर्जी बाबू को ऐसी स्थिति में अकेले छोड़ना नहीं चाहता था। न मालूम इस घबराहट से उनके हृदय पर क्या असर पड़ा हो, परन्तु दूसरे ही क्षण उस अवधूत की व्याघ्रवत आवाज़ सुनाई दी, "उसकी चिन्ता मत करो।

वह स्वतः उठकर होटल पहुंच जाएगा, तुम्हें मेरे साथ चलना है। सीधे-सीधे चले चलो। तुम्हारा कुछ भी अहित नहीं होगा। परन्तु यदि तुमने किसी प्रकार का प्रतिरोध किया, तो मैं तुम्हें कन्धे पर डालकर निकल जाऊंगा और इससे तुम्हारे सीने की एकाध हड्डी टूट भी जाए, तो मुझे दोष मत देना।"

मैं खिंचा हुआ-सा उस अवधूत के साथ आगे की ओर बढ़ रहा था, मेरे पांव तेज़ी से गतिशील हो रहे थे, परन्तु फिर भी मैं अवधूत के क़दमों से क़दम मिलाकर नहीं चल पा रहा था। उसकी चाल में बला की तेज़ी थी।

लगभग हम पांच-छः किलोमीटर चले होंगे। रात निस्तब्ध थी। जंगल में झिंगुरों की आवाज़ के अलावा और किसी प्रकार की कोई आवाज़ कानों में सुनाई नहीं दे रही थी। मुझे यह भी पता नहीं था कि हम कहां और किस तरफ़ जा रहे हैं। यह अवधूत कापालिक है या वाममार्गी? सुना था कि गोरखनाथ के मन्दिर के आसपास सैकड़ों कापालिक और कनफटे योगी साधनाओं में रत हैं। कई भैरव और भैरवियां श्मशान साधनाओं में मग्न हैं, और यहां से लेकर नेपाल तक का पूरा प्रदेश इस प्रकार के तान्त्रिकों से भरा हुआ है, जिसका एक सिरा गुरु गोरखनाथ का मन्दिर है, तो दूसरा सिरा नेपाल का प्रसिद्ध तान्त्रिक तीर्थ दक्षिण काली का मन्दिर।

लगभग तीन-चार घंटे हम दोनों बराबर चलते रहे। इस पूरी अवधि में न तो अवधूत कुछ बोला और न मुझे कुछ पूछने का साहस हुआ। अब तक मेरे मन में कुछ-कुछ हिम्मत और साहस का संचार हो गया था। मैंने निश्चय कर लिया कि अब जो कुछ होगा देख लिया जाएगा। अब घबराने या विचलित होने से फ़ायदा भी क्या है? मैंने एकाध बार पीछे मुड़कर लौटने का भी निश्चय किया, परन्तु ज्यों ही मैं लौटने का उपक्रम करता कि मेरे पैर बंध से जाते और चाहते हुए भी न तो पीछे मुड़ पाता और न लौट पाता। ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे इस अवधूत ने मुझे कीलित कर दिया हो, जो कि निरन्तर आगे की ओर ही गतिशील हो सकता है, पीछे मुड़कर न तो देख सकता है और न पीछे जाने का मौक़ा ही रहता है।

अब थोड़ी-थोड़ी रोशनी दिखाई देने लगी थी। अवधूत के पैरों में कुछ ज़्यादा ही गति आ गई। उसने कुछ दूर चलने के बाद मेरा दाहिना हाथ पकड़

लिया और कहा, "घबराने की जरूरत नहीं है। तुम एक विशिष्ट उद्देश्य के लिए यहां आए हो।"

अब तक वे रोशनियां नज़दीक आ गई थीं। मैंने देखा वह स्थान कुछ-कुछ खंडहर-सा है। पुराने ज़माने में यहां बहुत बड़ी हवेली या क़िला रहा होगा, परन्तु अब सब-कुछ धूल-धूसरित पड़ा था। जगह-जगह पत्थरों के ढेर, टूटी हुई दीवार और बिखरा हुआ मलबा दिखाई दे रहा था। इन खंडहरों के बीच कई कापालिक सर्वथा नग्न होकर किसी विशेष साधना में रत थे। अब मैं उन लोगों के चेहरे भी साफ़-साफ़ देख रहा था। सामने बहुत बड़ा यज्ञ-कुंड बना हुआ दिखाई दे रहा था और उसके एक तरफ़ कोई अवधूत नग्न-सा बैठा हुआ किसी पशु के मांस को काट-काटकर उस अग्नि-कुंड में 'फट् स्वाहा' शब्द के साथ होम रहा था। इन दो शब्दों के पहले वह किस मन्त्र का उच्चारण कर रहा था, वह साफ़-साफ़ नहीं सुनाई दे रहा था, परन्तु ऐसा दिखाई दे रहा था कि वह कोई वाममार्गी तान्त्रिक क्रिया है, जिसमें मृत पशु का मांस होम किया जाता है। यज्ञ-कुंड के पास ही बिखरे हुए प्याले, गिलास और शराब की बोतलें लुढ़की हुई थीं। अवधूत ने पूरी तरह से शराब चढ़ा रखी थी, क्योंकि उसकी आंखों के डोरे लाल-सुर्ख़ थे। बड़ा-सा चेहरा, अग्नि स्फुटलिंग की तरह लपलपाती हुई आंखें, सीने तक लहराती हुई काली दाढ़ी और पीछे की ओर लम्बे बिखरे हुए बाल और जटाएं सब-कुछ मिलकर एक बीभत्स-सा दृश्य ही उपस्थित कर रहे थे। बीच-बीच में वह कापालिक मांस के साथ शराब की आहुति भी देता जा रहा था। ऐसा करते समय उसकी आंखों की चमक कुछ विशेष बढ़ जाती थी। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह जो क्रिया कर रहा है, वह सही हो रही है, इसीलिए उसके मुंह से कभी-कभी किलकारी-सी निकल जाती थी।

हम दोनों वहां आकर खड़े हो गए, परन्तु कापालिक को हमारे आने का भान नहीं था। वह उसी प्रकार अपनी अभिचार क्रिया में रत था। बीच-बीच में वह 'ॐ मणि पद्मे हुं फट्' की ध्वनि करता और कुंड में शराब की आहुति दे देता, साथ ही कुछ घूंट चसक पात्र में लेकर स्वयं भी लेता और उसके बाद भी कुछ बूंदें बच जातीं, तो उन बूंदों को अपने सिर पर छिड़क देता।

मांस और शराब की मिली-जुली गन्ध से वातावरण एक विशेष प्रकार

का हो गया था। वह अवधूत एक तरफ़ बढ़ा, तो मुझे भी उसके साथ उधर बढ़ना पड़ा। मैंने देखा कि आठ-दस कापालिक भैरव अपने-अपने यज्ञ-कुंडों पर इसी प्रकार की अभिचार क्रिया में रत हैं।

तभी मैंने एक तरफ़ बड़ा-सा यज्ञ-कुंड देखा। उस यज्ञ-कुंड के पास एक भैरवी बैठी हुई थी। जिसकी उम्र मुश्किल से 23-24 साल की रही होगी। सुन्दर आकर्षक चेहरा, तीखे नाक-नक्श, हंस की तरह ग्रीवा, खुले बाल और सुन्दर देहयष्टि सिर के बाल कमर से भी नीचे की तरफ़ लटके हुए थे। यह योगिनी जहां बैठी हुई थी, उसके चारों तरफ़ छोटे-छोटे ग्यारह यज्ञ-कुंड दहक रहे थे। एक प्रधान और उन ग्यारह कुंडों के बीच बैठी हुई भैरवी प्रधान यज्ञ-कुंड में आहुति विसर्जित कर रही थी। जिसमें शराब की तरह कोई पदार्थ भरा हुआ था। यह उसमें से निकाल-निकालकर बीच-बीच में पीती भी जाती थी और आहुति भी देती जाती थी।

उन यज्ञ-कुंडों के बीच में बैठना कठोर परीक्षा और कठिन साधना थी। एक क्षण के लिए भी बैठना अपने शरीर को भुर्ता बना देने के समान होता। यह कहां की थी, यहां किस प्रकार से आ गई थी? अपनी इस सुन्दर कोमल काया को क्यों इस तप्त दाह के बीच जला रही है, मैं कुछ अनुमान नहीं लगा सका। इतना निश्चित था कि वह इस प्रकार की साधनाओं में कई वर्षों से है, क्योंकि इतनी कठिन और कठोर साधना करना प्रत्येक के बस की बात नहीं है।

मैं और वह अवधूत कापालिक उसके सामने खड़े थे। मैं उसकी अभिचार क्रिया को देर तक देखता रहा। अचानक उसकी नज़र 'फट् स्वाहा' कहने के बाद ऊपर उठी और ज्यों ही उसने नज़रें मुझसे मिलाई कि मैं सिहर कर रह गया। सारा शरीर एकबारगी पीपल के पत्ते की तरह कांप गया। उसकी आंखों में कुछ ऐसी चमक और लपक थी कि एक क्षण में ही मैंने समझ लिया कि वह भैरवी किसी ऊंचे खानदान से सम्बन्धित है, और अपनी इच्छा से ही इस प्रकार की साधना में रत है। उसके चेहरे पर किसी प्रकार का कोई तनाव नहीं था। चेहरे की कान्ति और लावण्य अत्यधिक आकर्षक और मोहक। पूरा चेहरा नशे और अग्निदाह से लाल भभूका हो गया था, जिसकी वजह से वह

और ज़्यादा सुन्दर लग रही थी। उसकी गुलाबी थरथराते होंठों से अत्यन्त शुद्ध और स्पष्ट रूप से मन्त्र उच्चारित हो रहे थे, वह किसी ऊंची साधना में रत थी।

जिस समय वह 'फट्' कहती हुई अग्नि-कुंड में आहुति विसर्जित करती, तो उसका चेहरा और आंखें गुलाबी हो उठतीं, ऐसा लगता जैसे सैकड़ों सूर्य एक साथ पूर्व दिशा में उग आए हों। उसकी रतनारी आंखें शराब के नशे से और भी ज़्यादा गहरी और आकर्षक हो जातीं, वह अधखुली आंखों से झूमती हुई, पर अपने-आप में चैतन्य, बराबर शुद्ध उच्चारण करती हुई आहुति विसर्जित करती जाती थी।

मैं मन्त्रबद्ध-सा खड़ा था। ऐसा लग रहा था, जैसे मेरे पैरों को किसी ने बांध दिया हो। चाहते हुए भी वहां से न तो हिल पा रहा था, और न जा पा रहा था। मेरा पूरा शरीर मन्त्र आबद्ध-सा था और मेरी आंखें उस भैरवी की आंखों और चेहरे पर टिकी हुई थीं।

अचानक उसने दोनों हाथों की अंजुरी हवा में बनाई और दूसरे ही क्षण वह ताज़े गुलाब के पुष्पों से भर गई। फिर उसने फूल यज्ञ में समर्पित कर दिए। वह शायद आज के दिन की पूर्णाहुति थी। कम-से-कम मुझे उसके शब्दों की ध्वनि से ऐसा ही प्रतीत हो रहा था।

दूसरे ही क्षण वह उठी। वह बड़ी मुश्किल से अपने पैरों पर खड़ी हो पा रही थी। मैंने अनुभव किया कि अवश्य वह किसी ऊंचे घराने से सम्बन्धित सुन्दरी है। मैंने सुना था कि गोरखपुर के आसपास ऐसे कई राजाओं और जागीरदारों के घराने हैं, जिनके यहां तान्त्रिक क्रियाएं कई वर्षों से होती आ रही हैं। उनमें से ही यह किसी घराने की बालिका रही होगी।

थकावट से चूर उस सुन्दरी भैरवी ने एक भरपूर अंगड़ाई ली। मैंने उसके अंगड़ाई लेते हुए शरीर को देखा, तो मेरे शरीर का बहता हुआ ख़ून थम-सा गया। लगभग साढ़े पांच फुट का क़द लिये वह भैरवी अपने-आप में अप्रतिम थी।

एक-एक अंग सांचे में ढला हुआ, कमर पर मृगचर्म पहना हुआ था, जो मुश्किल से ही पिंडलियों को ढक रहा था, और सीने पर एकमात्र कंचुकी, इसके

अलावा उसका पूरा शरीर उस चन्द्रमा की चांदनी में साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था। ऐसा लग रहा था कि भूल से कोई रम्भा या उर्वशी अपनी उच्च महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए अरण्य में साधना हेतु आ गई हो।

मैं अभी तक एकटक उसको देख रहा था। वह मुझसे सर्वथा बेख़बर अपनी ही किसी सोच में निमग्न थी। उसकी आंखें पूरी तरह से खुल नहीं पा रही थीं। शराब के नशे की वजह से ज़मीन पर टिके पैर लड़खड़ा रहे थे, फिर भी वह सप्रयास पैरों पर खड़ी थी, और अर्द्ध निमीलित नेत्रों द्वारा यज्ञ से उठती हुई लपटों को देख रही थी।

कुछ ही क्षण बीते होंगे कि उसने उस यज्ञ-कुंड की एक परिक्रमा की, और कुंड से भभूत लेकर टीका-सा अपने ललाट पर जड़ दिया, ऐसा लगा, जैसे चन्द्रमा पर लम्बी लकीर खींच दी हो।

अब उसने मेरी ओर देखा, फिर कापालिक को देखकर उसके होंठों पर एक क्षण के लिए आई मुस्कुराहट से मैंने अनुभव किया कि कापालिक और भैरवी अवश्य ही एक-दूसरे से परिचित रहे होंगे, क्योंकि भैरवी को देखकर कापालिक मुस्कुरा रहा था, और उस भैरवी की क्रियाओं को देखकर उसके चेहरे पर सन्तुष्टि के भाव थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भैरवी ने अभी-अभी जो क्रिया सम्पन्न की है, वह सही ढंग से हो गई है।

कापालिक को एक क्षण देखने के बाद उसकी नज़रें मेरे शरीर पर टिक गईं और एक क्षण में ही उसने आंखों-ही-आंखों में मुझे तोल लिया। उसके होंठों पर व्यंग्य की एक हल्की-सी रेखा उभर आई, मानो कह रही हो, इस 'भक्कू' को कहां से उठा लाए? इससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा?

वह अपने स्थान से हिली और कापालिक के पास से होती हुई मेरे पास आकर खड़ी हो गई। वह मेरे से सटकर खड़ी थी। मैं उसके शरीर से निकलती हुई सुगन्ध को अनुभव कर रहा था। उसने अपनी गुलाबी आंखें मेरी आंखों में गड़ा दी। मैं निरीह भाव से खड़ा था। न तो मेरे लिए कुछ बोलने का अवसर था और न कुछ करने का। मन-ही-मन मैं अत्यधिक भयभीत अवश्य था, ऐसे लोग कार्य-सिद्धि के लिए नर-बलि दे देते हैं। हो सकता है, मुझे नर-बलि के लिए ही चुना हो, यह सोच-सोचकर मैं अन्दर-ही-अन्दर सिहर रहा था।

मैं एक प्रकार से आकर्षण-बद्ध हो गया था। मेरी आंखें खुली हुई थीं। उसने अपनी आंखों से मेरे पूरे अन्तर को मिलाकर रख दिया था। उसकी नाक से निकले हुए भभके को मैं महसूस कर रहा था, पर मैं अपने पैरों पर खड़ा-खड़ा ही लड़खड़ा गया। उसने दूसरे ही क्षण अपना हाथ कन्धे से हटा लिया, और मुस्कुराकर कापालिक की तरफ़ मुखातिब होकर बोली, "ले आओ।"

अवश्य ही मुझे बलिदान करने के लिए ही यहां बुलाया गया है और आज इस रात्रि में ही किसी विशेष तान्त्रिक क्रिया सम्पन्न करने के लिए मेरा बलिदान किया जाना निश्चित है। यह सोचकर मैं पीपल के पत्ते की तरह कांप उठा।

मैंने मुड़कर कापालिक की ओर देखा, उसकी आंखों के डोरे लाल हो रहे थे, और चेहरे पर एक विशेष प्रकार की पैशाचिकता दिखाई दे रही थी, जो कि ऐसे अवसरों पर चेहरे पर उतर आती है। मैं उन लोगों से घिरा हुआ बलि के बकरे की तरह था, जिसकी कोई स्वतन्त्र सत्ता नहीं होती, वह तो बलि के लिए ही होता है, और उसकी बलि निश्चित होती है।

एकबारगी ही मेरी आंखों के सामने मेरा घर, भावी जीवन के सपने, मुखर्जी बाबू, सब-कुछ कौंध-सा गया। एक क्षण के लिए सोचा कि न मैं मोह कर इस तरफ़ आता और न मेरे जीवन में इस प्रकार की घटना घटती। मृत्यु तो जीवन में अवश्यम्भावी है, इसलिए मृत्यु से घबराना या विचलित होना मैंने सीखा नहीं था, परन्तु अकाल मृत्यु तो जीवन का अभिशाप है, अकाल मृत्यु से तो आत्मा की गति भी नहीं होती और वह अन्य योनियों में भटकता रहता है।

कापालिक ने मुझे आगे ठेला और उस यज्ञ-कुंड के पास ले जाकर खड़ा कर दिया, जहां पर वह भैरवी खड़ी थी। मेरे और भैरवी के बीच मुश्किल से पांच-छः इंच का फासला रहा होगा। उसके शरीर से निकलती हुई सुगन्ध और नथुनों से निकलती हुई शराब की भभक की मिली-जुली गन्ध मैं अनुभव कर रहा था। उसने मेरी ओर एक क्षण के लिए ताका और उस एक क्षण में ही मेरे सारे शरीर का रक्त जम-सा गया। उसके चेहरे पर जो कोमलता और मधुरता थी, वह एकाएक लोप हो गई। सुन्दर कमल के समान आंखें रक्तिम हो गईं, चेहरे पर खिंचाव आ गया और उसने मुझे एक क्षण के लिए

उसी प्रकार से ताका, जैसे एक शिकारी अपने शिकार को ताकता है।

मेरे पैर लड़खड़ा रहे थे, परन्तु फिर भी मैं अपने-आप में ज़बरदस्ती हिम्मत और जोश भर रहा था। मृत्यु तो निश्चित है ही, परन्तु इस प्रकार कायरों की तरह मरना उचित नहीं है। मैं मनुष्य हूं, जवान हूं, इन लोगों से बराबरी का मुक़ाबला नहीं कर सकता, परन्तु कायर की तरह बिना हाथ-पांव हिलाए मरना भी उचित नहीं समझता। सोचते-सोचते मेरे दोनों हाथों की मुट्ठियां भिंच गईं।

तभी उस भैरवी के मुंह से एक विशेष प्रकार का शब्द निकला, जो सीटी की तरह का था। यह शब्द धीमे से ही निकला था, परन्तु उस गहन निस्तब्ध अर्द्धरात्रि में यह धीमा शब्द भी चारों तरफ़ फैल गया, और दूसरे ही क्षण मैंने देखा कि कई कापालिक उस यज्ञ-कुंड के पास आकर खड़े हो गए। सभी विशेष क्रियाओं में संलग्न से प्रतीत हो रहे थे। बाल बिखरे हुए, आंखों में एक विशेष चमक, चेहरे पर खिंचाव, गले में मुंडों की माला, सारा शरीर लगभग नग्न-सा, और उस पर ढेरों-ढेरों भस्म लगाई हुई। मैंने एक नज़र अपने चारों ओर देखा, तो उस कापालिक और भैरवी के अलावा मेरे चारों ओर लगभग दस-बारह अन्य कापालिक तथा आठ-दस भैरवियां खड़ी थीं। मैं आया, तब तो ये सब दिखाई नहीं दे रहे थे, फिर अचानक कहां से आ गए? कहां बैठे हुए थे? क्या ये इतने ही कापालिक और भैरवियां हैं या इसके अलावा भी कुछ और है, मैं निर्णय नहीं कर पा रहा था।

उन सभी की नज़रें मेरी ओर थीं। उन कापालिकों को देखकर मन में जुगुप्सा का भाव पैदा हो रहा था। भैरवियां नग्न या अर्द्ध-नग्न-सी खड़ी थीं। पीठ पर छितरे हुए लम्बे बाल, उन्नत वक्षस्थल। मृग-चर्म पहने हुए वे यदि कण्व के आश्रम में होतीं, तो अवश्य ही ऋषि-कन्याएं प्रतीत होतीं, परन्तु यहां तो ये सभी कुछ ऐसी साधनाओं में रत थीं, जो तान्त्रिक क्रियाओं में उच्च कोटि से सम्बन्धित हो सकती हैं, उनकी आंखों के लाल डोरे मेरी इसी धारणा को पुष्ट कर रहे थे।

जिस भैरवी के पास मैं खड़ा था, उसने एक कापालिक को संकेत किया और वह मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। लम्बा-चौड़ा शरीर, भारी-भरकम डील-डौल, सारे शरीर पर बड़े-बड़े बाल, मद्यपान से रक्तिम आंखें, उघड़ा हुआ

वक्षस्थल और केवल एक लंगोट पहने हुए वह कापालिक पूरा औघड़ लग रहा था, गले में मुंडों की माला पहने हुए और हाथों में पात्र लिये हुए वह उस अर्द्धरात्रि में भयानक-सा प्रतीत हो रहा था। यदि कोई कमज़ोर मन-मस्तिष्क का होता, तो इस भयंकर अर्द्धरात्रि के इस वातावरण में उस औघड़ को देखकर अवश्य ही उसका प्राणान्त हो जाता।

उस कापालिक ने अपने हाथ का पात्र ज़मीन पर रख दिया। मैंने देखा उसमें ताज़ा रक्त भरा हुआ था। अवश्य ही यह रक्त किसी मानव देह का ही हो सकता है। सम्भव है, मुझसे पूर्व किसी और निर्दोष की बलि ले ली हो और उसके रक्त से यह खप्पर भर लिया हो।

उसने मेरे कपड़े उतार दिए। जब धोती खोलकर हटानी चाही, तो मैंने थोड़ा-बहुत प्रतिरोध किया, परन्तु उन लोगों के बीच मेरा प्रतिरोध क्या मायने रखता था। दूसरे ही क्षण उस औघड़ ने एक झटके से धोती खींचकर अलग कर दी और नीचे पहने हुए बनियान तथा अंडरवियर को नाख़ूनों से फाड़कर टुकड़े-टुकड़े कर दिए। अब मैं सर्वथा नग्न-सा उन लोगों के बीच खड़ा था। भय के आगे शरम का तो कोई महत्त्व ही नहीं होता। उस समय शरम करने की तो कोई गुंजाइश ही नहीं थी, पर मैंने अब पक्की तरह से मन में निश्चय कर लिया था कि मेरा बलिदान निश्चित है, और मुझे कुछ प्रतिरोध करना ही चाहिए।

मैंने कुछ प्रतिरोध किया भी, और उस औघड़ के गले पर हाथ रखा, जिससे कि मैं उसे धक्का देकर अपने-आपको अलग कर सकूं, परन्तु मैंने अनुभव किया कि वह औघड़ पहाड़ की तरह निश्चल है। मैंने कुछ और प्रतिरोध करने की कोशिश की, तभी मेरे दाहिने गाल पर झन्नाटेदार थप्पड़ लगा और मेरा सारा शरीर तथा सिर एकबारगी घूम गया।

मैं समझ गया कि यह बलिदान का समय है। भैरवी ने जो कुछ तान्त्रिक क्रिया सम्पन्न की है, उसके समापन के लिए नर-बलि आवश्यक है, और इस बार दुर्भाग्य से बलिदान हेतु मेरा चयन हो गया है। मैंने यह भी पढ़ा था कि बलिदान से पूर्व मनुष्य को सर्वथा नग्न कर उसको स्नान कराकर मन्त्रों से पवित्र किया जाता है और इसके बाद उसके रक्त की आहुति यज्ञ में दी जाती है।

मैं अपने-आप को नियन्त्रण में ही नहीं रख पा रहा था। टांगें उस थप्पड़ के आघात से कांपने लगी थीं और मैं लड़खड़ाती टांगों से नीचे बैठने ही वाला था कि उस औघड़ ने मेरी बांह पकड़कर संभाल लिया और मैं गिरता-गिरता पुनः स्थिर हो गया। मैंने दर्द से बोझिल आंखें उठाकर उस औघड़ की ओर देखा, तो मेरा रहा-सहा ख़ून भी जल-सा गया। उसका चेहरा लाल सुर्ख़ हो रहा था, आंखों से जैसे अंगारे बरस रहे थे, वह मेरी तरफ़ तीक्ष्ण और पैनी दृष्टि से ताक रहा था, जैसे बिल्ली शिकार करने से पूर्व चूहे की ओर ताकती है।

मैंने उचटती निगाह से अपने चारों ओर खड़े उन औघड़ यमदूतों की ओर देखा। सभी उस क्षण की प्रतीक्षा कर रहे थे, जब मेरी बलि दी जाने वाली थी। हो सकता है बलि देने के बाद मेरा मांस प्रसाद के रूप में उन औघड़ों को वितरित कर दे और उस मांस की लालच में वे लपलपाती मुद्रा में खड़े हों। पता नहीं उस एक क्षण में कितने-कितने विचार, कितने-कितने भाव मानस में कौंध गए और किस प्रकार मैंने अपने-आप को नियन्त्रित किया, आज भी इन पंक्तियों को लिखते समय वह दृश्य स्मरण कर मेरा हाथ थरथराता है।

कुछ क्षणों बाद औघड़ ने संकेत-सा किया, तो सामने खड़ी एक भैरवी जल का कलश लेकर आ गई और वह कलश औघड़ के हाथ में थमा दिया। औघड़ ने कलश को हाथ में लेकर संकल्प-सा भरा, तीन अंजलि जल काल-भैरव को समर्पित किया और फिर वह कलश अपने हाथों से उठाकर मेरे सिर पर उड़ेल दिया। मैं सर्वथा नग्न-सा खड़ा पहले से ही अन्दर से कांप रहा था, यह ठंडा बर्फ़-सा जल गिरते ही पूरा शरीर भीग गया और उस बर्फ़ीले पानी से शरीर का रक्त जमता हुआ-सा अनुभव हुआ, उन्होंने बलिदान से पूर्व मुझे स्नान करा दिया था। मैंने जो कुछ सोचा था, वैसा ही हो रहा था। मनुष्य का स्वभाव है कि वह अन्तिम क्षण तक उम्मीद की डोर से बंधा रहता है। शायद मेरे पागल प्राणों ने ऐसी ही कोई अज्ञात उम्मीद की डोर पकड़ रखी होगी कि शायद मेरा बलिदान न किया जाए।

एक भैरवी के औघड़ के ही संकेत पर आगे बढ़कर अपने कन्धे पर रखे लाल वस्त्र से मेरे शरीर को पोंछना शुरू कर दिया। बाल, सिर और शरीर के प्रत्येक भाग को उसने रगड़-रगड़कर पोंछा और फिर एक ओर हट गई।

औघड़ ने खड्ग हाथ में ले लिया, जो उसके कमर से बंधा हुआ था। उसके संकेत पर दो-तीन नवयुवकों ने लकड़ी के लट्ठों पर घी उंडेल दिया। घृत के स्पर्श से वे सूखे हुए लकड़ी के लट्ठे जल्दी ही जलने लगे और देखते-ही-देखते अग्नि-कुंड से ऊंची-ऊंची आग की लपटें निकलने लगीं। वे पांच-छः फुट ऊंची लपटें मुझे लील जाने को व्याकुल थीं। मेरी अन्तिम घड़ी आ गई थी। मन में एक क्षण के लिए हताशा पैदा हुई कि मेरी अधोगति हो रही है, और यह अकाल मृत्यु के बाद भी मुझे भटकाती रहेगी। एक क्षण के लिए मेरा बचपन मेरी आंखों के सामने तैर गया, जब मेरे मां-बाप ने मेरे बारे में कैसे-कैसे सपने सजाए होंगे, वे मुझे पढ़ा-लिखाकर उच्च स्तर का इंजीनियर बनाना चाहते थे। उसका शतांश कार्य भी हुआ नहीं है, और मेरी मृत्यु की घड़ी निकट आ गई। सामने मृत्यु खड्ग के रूप में खड़ी है, और मां-बाप का दुलारा, पत्नी का एकमात्र सहारा, इस प्रकार से इन औघड़ों के बीच घिरकर अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा, ऐसी तो किसी ने कल्पना ही नहीं की होगी।

कुछ समय तक वे मेरी राह देखेंगे, पत्नी पल-प्रतिपल मेरा इन्तज़ार करेगी। मगर साल-दो साल बीतने के बाद भी जब मैं घर नहीं पहुंचूंगा, तो सभी हताश और निराश हो जाएंगे। मुझे खोया हुआ मान लेंगे और हज़ार-हज़ार आशंकाएं उनके मन में व्याप्त हो जाएंगी। उस बेचारी सुधा के तो हाथ की मेहंदी भी भली प्रकार से सूखी नहीं होगी। उसकी मांग का सिन्दूर भी अभी तक ज्यों-का-त्यों ताज़ा होगा। उसने वैवाहिक सुख और पति-सुख का एक क्षण भी भली प्रकार से अनुभव नहीं किया और उसे भरी जवानी में विधवा हो जाना पड़ेगा।

मैंने एक क्षण के लिए इन सारे विचारों को झटककर मस्तिष्क से अलग कर दिया। अब इन बातों को सोचने से क्या लाभ? मेरी अकाल मृत्यु मेरे सामने है, मेरी जली हुई हड्डियां भी इस जंगल में फेंक दी जाएंगी और मेरी आत्मा छटपटाती हुई यहीं चारों ओर घूमती रहेगी, परन्तु यदि मेरे भाग्य (ललाट) पर ऐसा ही लिखा है, तो विधि के विधान को कौन टाल सकता है, और मैंने अपने-आप को नियति के सामने असहाय-सा खड़ा कर दिया।

मेरी आंखें ऊपर उठीं, बाईं ओर खड्ग लिये औघड़ खड़ा था, जो कि

बलिदान देने के लिए एक ही वार से अलग कर अग्नि में समर्पित करने के लिए तैयार था। बाक़ी अन्य सब औघड़ और भैरवियां मेरी ओर ताक रही थीं। यज्ञ-कुंड में अग्नि पूरी शक्ति के साथ उफन रही थी। सामने इस आयोजन की मुख्य सूत्रधार भैरवी खड़ी थी, जो कि उन सब उपस्थित भैरवियों में श्रेष्ठ और साधना क्षेत्र में उच्च स्तर पर थी, ऐसा मैंने अन्य भैरवियों की आंखों में श्रद्धा के उमड़ते हुए भावों को देखकर अनुभव किया था। वह भैरवी यज्ञ-कुंड के सामने ही दक्षिण दिशा की ओर मुंह किए मेरे सामने एक ऊंची वेदी पर खड़ी थी, उसके चेहरे पर विजय का गर्वोन्नत भाव था और साधना की पूर्णता का अहं भी। लम्बे खुले अनावृत बाल, पीछे की ओर उसकी पिंडलियों को छू रहे थे, सामने लाल कंचुकी में उसका यौवन पूरी तरह से दब नहीं पा रहा था। खुला हुआ वक्षस्थल और हंसवत ग्रीवा उसके सौन्दर्य को चार-चांद लगा रहे थे। कमर पर मृग-चर्म लपेटा हुआ था, और उस पर एक लाल रेशमी दुपट्टा कमर से बंधा हुआ अत्यन्त ही सुन्दर और आकर्षक प्रतीत हो रहा था। घुटने और उसके नीचे का भाग सर्वथा अनावृत था।

उर्वशी की तरह अद्वितीय सौन्दर्य की साम्राज्ञी भैरवी इतनी जल्लाद और क्रूर होगी, इसकी तो कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। पढ़ा था नारी हृदय से कोमल और संवेदनशील होती है, मातृत्व भाव स्वभावतः उसके हृदय में हिलोरें लेता है, प्रभु ने नारी की सृष्टि भी कोमल भाव से ही की है, अतः वह स्वभावतः मृदु संवेदनशील भावुक और मधुर होती ही है, परन्तु यहां पर यह सब-कुछ बेमानी और व्यर्थ-सा लगा। नारी का यह रूप भी हो सकता है, इसकी तो मैंने कल्पना ही नहीं की थी।

सुना है कि नारी जब प्रतिशोध लेती है, तो वह किसी को बरबाद कर सकती है, परन्तु यहां पर तो प्रतिशोध जैसी कोई बात ही नहीं है। इससे पूर्व तो इसका मेरा कोई साक्षात्कार भी नहीं हुआ था। न ही मैंने इसका किसी प्रकार से कोई अहित ही किया है। मेरी आंखें उस भैरवी के चेहरे पर स्थिर थीं और मन में विचारों का भयंकर चक्रवात घूम रहा था। दूसरे ही क्षण मैंने सिर को झटककर उन विचारों से अपने-आप को मुक्त किया और पूरी क्षमता के साथ आंखें उठाकर उसको देखा, जो मेरे सामने सुन्दर वेदी पर खड़ी हुई थी, जिसके हाथों में एक रिक्त पात्र था। सम्भवतः मेरा सिर खड्ग से

अलग करने के बाद गर्दन से निकलने वाले रक्त से वह पात्र भरकर यज्ञ-कुंड में आहुति देने की व्यवस्था हो। अब मेरी आंखों में किसी प्रकार की कोई याचना नहीं थी, न मन में किसी प्रकार का भय और हड़बड़ाहट थी, मैंने अपने-आप को मृत्यु के लिए तैयार कर लिया था और पूरी क्षमता के साथ अपने पांवों पर खड़ा था।

मैंने एक नज़र से उपस्थित सभी औघड़ और भैरवियों को देखा, फिर किंचित मुस्कान के साथ अपनी दृष्टि सामने खड़ी भैरवी के चेहरे पर टिका दी। उसकी तेजस्वी कमलवत आंखों से मेरी आंखें टकराईं और कुछ क्षणों तक वह इसी प्रकार मुझे देखती रही।

तब बाईं ओर खड़े औघड़ ने 'हुं फट्' कहते हुए खड्ग हवा में लहराया और उसका वार मेरी गर्दन पर होने ही वाला था कि बिजली की तेज़ी से उस भैरवी ने हाथ के पात्र को एक ओर फेंककर मुझे झटके के साथ खींचकर अपने सीने से लगा लिया। औघड़ का हवा में उठा हुआ हाथ झटके के साथ नीचे गिरा, परन्तु वह खड्ग मेरी गर्दन पर नहीं, हवा में ही लहराकर रह गया। मेरा सीना उसके वक्षस्थल से दबा हुआ था, और धौंकनी की तरह उसका निकलता हुआ श्वास मेरे चेहरे पर तैर रहा था। मेरा सीना ज़ोर-ज़ोर से धड़क रहा था, ऐसा लग रहा था कि सीना फट जाएगा और प्राण बाहर को उछल पड़ेंगे, परन्तु साथ-ही-साथ मैं उसके धड़कते हुए वक्षस्थल को भी अनुभव कर रहा था।

यह सारी घटना पलक झपकते ही हो गई, एक क्षण के सौवें हिस्से में यह सब घटित हो गया, जिसकी पहले कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। उपस्थित सभी लोग सन्न से खड़े थे। काल भैरव की बलि को अलग कर देना धृष्टता है। इस प्रकार इससे पहले कभी नहीं हुआ, अवश्य ही महाकाल को भयानक रूप से कुपित कर दिया जाएगा। इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

सारी प्रकृति सन्न होकर रह गई थी, हवा भी स्थिर थी, और सभी उपस्थित भैरव-गण इस अप्रत्याशित अकल्पनीय घटना से स्तब्ध थे।

मैं स्वयं कुछ क्षणों तक इस स्थिति को अनुभव नहीं कर सका, मैं समझ

ही नहीं सका कि यह सब-कुछ अचानक कैसे हो गया, उसने मेरी आंखों में क्या पढ़ लिया और विद्रोह करने के लिए उतारू हो गई। इसकी सारी साधना अवश्य ही खंडित हो गई होगी। जो कुछ इसने प्राप्त करना चाहा था, शायद वह प्राप्त न हो पाया हो। साधना क्रम को उसने पूरी क्षमता के साथ सम्पन्न किया होगा, अन्तिम पूर्णाहुति ही देनी बाक़ी थी और इसके लिए भी तैयारी हो चुकी थी, फिर अचानक इसके मन में यह कोमल भाव क्यों और कैसे आ गया?

जो कुछ भी घटित हुआ वह सत्य था, काल भैरव का भोग खंडित हो चुका था, उनका जो कुछ प्रसाद चढ़ाना था, वह अपूर्ण रह गया था, यह तान्त्रिक मर्यादा के सर्वथा विपरीत था, यह साधनात्मक पद्धति की अपूर्णता थी।

देखते-ही-देखते खड्ग लिये हुए औघड़ की त्यौरियां चढ़ गईं, आंखों के डोरे लाल सुर्ख़ हो गए, क्रोध के कारण सारा शरीर उत्तप्त हो गया, ऐसा लग रहा था जैसे उसे क्रोध की धधकती हुई भट्टी में से निकालकर उस स्थान पर खड़ा कर दिया हो, उसके मुंह से कुछ क्षणों के लिए स्वतः निकल पड़ा –

यं यं यं यक्ष रूपं दश दिशिवदनं भूमिकम्पायमानं
सं सं सं संहारमूर्ति शुभमुकुटजटाशेखरं चन्द्रबिम्बम्।
दं दं दं दीर्घकाय विकृतनखमुखं चौहर्वरोमनं करालं।
पं पं पं पापनाशं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

उसके ही नहीं अन्य औघड़ और भैरवियों के मुख से भी निकल रहा था –

रं रं रं रक्तवर्ण कटकटि ततनु तौष्णं दंष्ट्रं विशालं
घं घं घं घोर घोषं घघघघघटितं घर्घराघोरनादम्।
कं कं कं कालरूपं घगवगघगितं ज्वालितं कामदेहं
दं दं दं दिव्यदेहं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

मैं इन शब्दों को सुन रहा था, परन्तु अनुभव कर रहा था कि क्रोध से उत्पन्न इन शब्दों में लड़खड़ाहट थी, ऐसा लग रहा था कि अपने आराध्य

भैरव के प्रति इस अवज्ञा से वे भैरवी के प्रति अत्यधिक क्रोधित अवस्था में हैं, और कोई बड़ी बात नहीं कि ये सभी मिलकर भैरवी को ही काटकर आराध्य भैरव को बलि प्रदान कर दें। सबकी नज़रें बदल गई थीं, कुछ क्षण पहले भैरवी के प्रति उनकी आंखों में से जो स्नेह, ममत्व और आदर था, वह क्रोध के रूप में परिवर्तित हो गया था, सभी की नज़रें उस भैरवी के ऊपर टिकी हुई थीं, जिनमें आश्चर्य था, क्रोध था और प्रतिशोध था।

इस आकस्मिक वातावरण से वह भैरवी भी बेख़बर नहीं थी, वह सब कुछ समझ रही थी, उसकी बाईं भुजा के घेरे में मैं आबद्ध था और अभी तक वह मुझे अपने सीने से लगाए हुए थी। उसका दाहिना हाथ स्वतन्त्र था और उसकी नज़रें वहां उपस्थित सभी भैरवियों और औघड़ों पर थीं।

मैं भैरवी के हृदय की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई धड़कनों को अनुभव कर रहा था, वह भी यह समझ गई कि हो सकता है, क्रोध में पागल ये औघड़ उसकी ही बलि ले लें। हो सकता है, इस आगन्तुक की जगह उसके सिर का रक्त ही आहुति के रूप में समर्पित कर दे, क्योंकि भैरव को बिना भोग लगाए कोई भी कृत्य पूर्ण नहीं होता और अपूर्ण कृत्य सारे औघड़ों के लिए संकटदायक और मृत्युसूचक होता है, सभी उपस्थित औघड़ों और भैरवियों पर आती हुई विपत्ति और मृत्यु से तो एक भैरवी की बलि ले लेना ही ज़्यादा उचित है, ऐसा आभास मैं ही नहीं वह भैरवी भी कर रही थी, परन्तु फिर भी वह निश्चल थी, उसके मन में किसी प्रकार का भय या घबराहट नहीं थी, उसकी आंखों में कायरता या दीनता दिखाई नहीं दे रही थी, वैसी ही अग्निस्फुलिंग आंखों में वह एकटक सामने उन सभी उपस्थित लोगों को देख रही थी।

सामने चारों ओर खड़े हुए औघड़ क्रोध की साक्षात मूर्ति दिखाई दे रहे थे, सुन्दरी भैरवियां भी उस समय क्रोधातुर हुई उन औघड़ों के साथ ही शब्द उच्चरित कर रही थीं —

लं लं लं लम्बदन्तं ललललुलित दीर्घजिह्वा करालं।
घूं घूं घूं घूम्रवर्ण स्फुटविकृत मुखं भासुरं भीमरूपम्।
रुं रुं रुं रुंडमालं रुधिरमयमुखं ताम्रनेत्रं विशालं
नं नं नं नग्नरूपं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

उनका घेरा उत्तरोत्तर छोटा होता जा रहा था, वे सभी मेरे साथ उस भैरवी को भी घेरने के उपक्रम में थे। मेरी आशंका सच प्रतीत हो रही थी कि काल भैरव की क्षुद्र शान्ति के लिए उस भैरवी की बलि दी जानी निश्चित थी, और इसीलिए उन्होंने चारों ओर छितरकर घेरा-सा बना लिया था, और धीरे-धीरे घेरे को छोटा करते हुए आगे की ओर बढ़ रहे थे कि भैरवी भाग न सके।

मैं समझ रहा था कि भैरवी के सामने एक कठिन चुनौती थी। उसने वह चुनौती ले ली थी, जो सर्वथा अप्रत्याशित थी। इसमें कोई शक नहीं कि वह कई साधनाओं में सिद्ध रही होगी। कई तान्त्रिक क्रियाओं में निष्णात होगी, परन्तु ये औघड़ भी कुछ कम नहीं होंगे, शायद भैरवी से कुछ ज़्यादा ही जानते होंगे। इसलिए भैरवी का भागना या बच जाना कठिन-सा प्रतीत हो रहा था। यदि भैरवी इन लोगों पर कुछ प्रयोग भी करे, तो ये भी कच्ची मिट्टी के बने हुए नहीं थे। इन्हें भी इस प्रयोग से बचाव का रास्ता ज्ञात होगा और ये भी निश्चित रूप से बचाव करते हुए भैरवी पर भीषण तान्त्रिक क्रिया सम्पन्न करेंगे और इस प्रकार भैरवी की बलि देकर भैरव को सन्तुष्ट करने का उपक्रम करेंगे।

मैंने ऊपर की ओर देखा, तो अनुभव किया कि वह भैरवी कुछ विचलित अवश्य हुई है, परन्तु इतनी नहीं कि वह हताश और निराश हो ज़ाए। उसने एक क्षण के लिए कुछ सोचकर मुझे एक तरफ़ अपने पास ही खड़ा कर दिया और तनकर खड़ी हो गई, ठीक उसी प्रकार जैसे कि उन्मत्त शेरों से घिर जाने पर शेरनी अग्नि रूप बनकर उनसे भिड़ने के लिए तैयार हो जाती है। उसके चेहरे का रंग धीरे-धीरे बदलने लगा। शान्ति और सौम्यता के स्थान पर क्रोध की उन्मत्तता बढ़ने लगी, करुणा और प्रेम के स्थान पर आंखों के डोरों में ललाई-सी आने लगी और उसका सारा शरीर तनकर इस्पात-सा मज़बूत हो गया।

मैंने अनुभव किया यह भैरवी इस समय मरने-मारने के लिए तैयार हो गई है। निश्चय ही यह अकेली भैरवी इन सारे दुष्टों का सामना नहीं कर सकेगी, शारीरिक शक्ति में ये ज़्यादा बलवान हैं, तान्त्रिक क्षेत्र में भी ऐसी ही स्थिति

होगी। ऐसी स्थिति में भैरवी की मृत्यु निश्चित है, और सम्भवतः उसने भी शायद इस बात का अनुभव कर लिया है, अपने-आप को एक क्षण के लिए तैयार कर लिया है कि जब मृत्यु होनी ही है, तो इस प्रकार दीनता के साथ मरने में क्या तुक है।

पर अभी तक उसके मन में मेरे प्रति कोमलता थी, ऐसा मैं अनुभव कर रहा था। यह अपनी रक्षा के लिए तो सन्नद्ध थी ही, परन्तु मुझे भी किसी प्रकार से नुक़सान न पहुंचे, इसके लिए भी वह कृतसंकल्प थी, परन्तु मैं ऐसी स्थिति में उसकी क्या मदद कर सकता था? हां, यदि संघर्ष करने की ही नौबत आ गई, तो मैं ले-देकर एक औघड़ से तो भिड़ ही सकता हूं, परन्तु पन्द्रह-बीस औघड़ों के सामने शारीरिक शक्ति से मैं कर भी क्या सकता हूं? तन्त्र की दृष्टि से तो मैं अभी तक सर्वथा कोरा हूं।

परन्तु जो कुछ भी हो, उस भैरवी ने मेरे लिए इतना बड़ा ख़तरा उठाया है, केवल मुझे बचाने के लिए अपनी ज़िन्दगी दांव पर लगा दी है, इसलिए मैं कृतघ्न नहीं बनूंगा, भैरवी से पहले इस संघर्ष में मैं जूझता हुआ अपने प्राणों का बलिदान कर दूंगा। यह मेरी आश्रयदाता और जीवनदाता है, मेरी तो मृत्यु निश्चित थी ही, यदि मैं अभी तक सांस ले रहा हूं, तो इस भैरवी की कृपा से ही, इसी ने इतनी बड़ी चुनौती उठाई है, अब इसके प्राणों पर आ पड़ी है, तो मुझे आगे बढ़कर अपने-आप को पहले समाप्त कर देना चाहिए, यही इंसानियत है।

घेरा संकुचित होता-होता बहुत छोटा हो गया था। हम दोनों के चारों ओर भैरवियां और औघड़ खड़े थे, उनके मुंह से अभी तक स्तुति के कुछ पद उच्चरित हो रहे थे –

वं वं वं वायुवेगं प्रलयपरिमित ब्रह्मरूपं स्वरूप
खं खं खं खड्गहस्तं त्रिभुवन निलय भास्कर भीमं रूपम्।
चं चं चं चालयन्त चलचलचलित चालित भूत चक्रम्
मं मं मं मायकायं प्रणमत सततं भैरव क्षेत्रपालम्॥
खं खं खं खड्गभेद विषममृतमयं काली कालान्धकार
क्षि क्षि क्षि क्षिप्रवेग दह दह दहन नेत्रसदीप्यमानम्।

हुं हुं हुं हुंकारशब्दं प्रकटितगहन गर्जित भूमिकम्पं
वं वं वं वाललील प्रणगत सतत भैरवं क्षेत्रपालम्॥

यद्यपि घेरा संकुचित हो रहा था, परन्तु फिर भी भैरवी उसी प्रकार दृढ़ता से अपने स्थान पर खड़ी थी। वास्तव में ही मैं उसके साहस और हिम्मत को अनुभव कर एक तरफ़ जहां प्रसन्नता अनुभव कर रहा था, वहीं दूसरी ओर अपने-आप पर ग्लानि भी थी कि वह स्त्री होते हुए भी सिंहनी के समान अविचल अपने स्थान पर खड़ी है और एक मैं पुरुष होकर भी बलिदान के समय कमज़ोर और कायर हो गया था। वे सभी क्रोध से उत्तप्त हो रहे थे, लावे की तरह अन्दर-ही-अन्दर धधक रहे थे, उनकी आंखों से नफ़रत और क्रोध की चिनगारियां निकल रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे वे सभी मिलकर इस अवज्ञा करने वाली भैरवी को कच्चा ही चबा डालेंगे, टुकड़े-टुकड़े करके उठती हुई लपटों में फेंक देंगे और जब तक हम दोनों के शरीरों की बोटी-बोटी नहीं काट देंगे, तब तक शायद ही इनका क्रोध शान्त हो सके।

मैंने औघड़ों से नज़र हटाकर भैरवियों की ओर एक क्षण के लिए ताका, तो मुझे वे कमनीय नारियों की अपेक्षा साक्षात काली स्वरूपवत ही अनुभव हुईं। ऐसा जैसे मां काली ही कई रूपों में प्रकट होकर वहां आ गई हो और अपने भक्ष्य को प्राप्त कर अपने गले की मुंड माला में एक और मुंड की वृद्धि करने के लिए आतुर हो, चारों तरफ़ का वातावरण उत्तप्त और लावे की तरह दहक रहा था।

तभी वह प्रमुख औघड़ हाथ में खड्ग लिये भैरवी के सामने खड़ा हो गया, क्रोध से उसकी आंखें फटी जा रही थीं, और पूरे शरीर के साथ-साथ नासापुट फड़क रहे थे, हाथ का खड्ग उठाते हुए वह चीख़ा, "दुष्ट पापिनी! ले अपने किए का फल भोग।"

मैंने देखा कि एक क्षण के लिए भैरवी के सिर पर संकुचन हुआ, परन्तु दूसरे ही क्षण वह उसी प्रकार से हिम्मत के साथ उस प्रधान औघड़ के सामने डटकर खड़ी रही, बोली, "अगर हिम्मत है, तो खड्ग चला और भैरव को मेरी बलि दे दे, परन्तु अभी तक तेरी कलाई में इतनी ताक़त नहीं आ पाई है। मैं कोई घासफूस की बनी हुई नहीं हूं, जिससे कि तेरे 'हुं फट्' कहने से ही

घबराकर अलग हो जाऊंगी। मैंने जो भी निर्णय किया है, सोच-विचार कर किया है। जिसे तुम भैरव की बलि देने जा रहे हो, वह बलि देने योग्य नहीं है, अपितु भैरव साधक बनाने योग्य है।" ऐसा कहते-कहते वह यज्ञ-वेदी के पास से दो क़दम पीछे हट गई।

एक पिद्दी-सी छोकरी, और प्रधान औघड़ के सामने ज़बान चलाए, यह सब औघड़ों के लिए सर्वथा अप्रत्याशित और आश्चर्यजनक था। सभी मन में शायद यह सोच रहे थे कि अब ज़रूर कोई भीषण घटना घटेगी और इस भैरवी का तो अन्त निश्चित है।

औघड़ की भयानक आवाज़ और तमतमाते हुए चेहरे की ओर मैंने एक क्षण के लिए ताका, तो मैं सन्न-सा रह गया। उसके दाहिने हाथ में खड्ग उठा हुआ था और सारा शरीर गर्म लावे की तरह दहक रहा था, उसकी बड़ी-बड़ी आंखों से क्रोध की ज्वाला फूट रही थी, उसका चेहरा एक हिंसक क्रूर भेड़िए की तरह हो गया था, जो अपने शिकार को किसी भी प्रकार से समाप्त करने के लिए तैयार हो। उस भीषण माहौल में मेरे जैसे साहसी व्यक्ति की भी टांगें लड़खड़ा रही थीं, मैं अपने-आपको बहुत संभालने का प्रयत्न कर रहा था, कोशिश कर रहा था कि मेरी कमज़ोरी और मेरा भय मेरी लड़खड़ाती हुई टांगों से भैरवी को पता न चले, परन्तु उस भीषण माहौल में मेरा भय मेरे ऊपर हावी हो रहा था। कोई-न-कोई अनर्थ अवश्य होगा और इस अनर्थ में भैरवी की मृत्यु निश्चित है, ऐसा मैं चारों तरफ़ खड़े औघड़ों के तमतमाते हुए चेहरों और प्रधान औघड़ की आग उगलती हुई आंखों से अनुभव कर रहा था। वह खड्ग जो हवा में ऊपर उठा है, वह बिना कुछ किए वापस अपने स्थान पर नहीं जाएगा। यदि मेरी या भैरवी की बलि हो गई, तो वास्तव में ही यह एक अनर्थ हो जाएगा।

मैंने भैरवी की तरफ़ नज़रें उठाकर देखा, तो मुझे वहां एक अलग ही रूप दृष्टिगोचर हुआ। क्षण-भर पहले जो चेहरा अत्यन्त सुन्दर, कमनीय, आकर्षक और लावण्ययुक्त था, वही चेहरा इस समय क्रोध से लाल भभूका हो रहा था, बड़ी-बड़ी आंखें फैलकर रक्ताभ हो गई थीं, सिर के बाल छितर कर मन के उफनते हुए वेग को स्पष्ट कर रहे थे, सारा चेहरा अग्नि-कुंड की तरह दहक रहा था और दांतों के नीचे दबे हुए होंठ को देखकर मैं यह अनुभव

कर रहा था कि भैरवी ने मन-ही-मन कोई निश्चय कर लिया है और उस निश्चय को कार्यान्वित करने के लिए वह कृतसंकल्प है।

तभी मैंने देखा कि चारों तरफ़ औघड़ और भैरवियों का घेरा संकुचित होता जा रहा है, सभी के हाथों में लम्बे-लम्बे फलदार चाकू आ गए हैं, उस चांदनी रात में वे चाकू लपलपा रहे थे, उनकी तेज़ धार उस चांदनी रात में भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी, मैंने एक क्षण के लिए अनुमान लगा लिया कि ये सभी भैरवी पर टूट पड़ने के लिए आमादा हैं और प्रधान औघड़ का एक संकेत पाते ही वे सभी औघड़ भूखे भेड़ियों की तरह शिकार पर टूट पड़ेंगे और इस भैरवी के टुकड़े-टुकड़े कर हवा में उछाल देंगे।

धीरे-धीरे यह घेरा छोटे से छोटा होता जा रहा था, सभी के चेहरे पर भैरवी की अवज्ञा और 'हुं फट्' बोलने की वजह से तमतमा रहे थे, सभी की नज़रें औघड़ के चेहरे पर जमी थीं और वे उसका संकेत पाने के लिए बेताब से थे, अन्य सभी औघड़ों के मुंह में कुछ-कुछ क्षण के उपरान्त जीभ लपलपा आती और अपने ही होंठों को चाटकर अन्दर हो जाती, ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सभी कई-कई दिनों से भूखे हैं और इस स्वादिष्ट कोमल मांस को पाने के लिए और निगल जाने के लिए उतावले हैं।

अब घेरा बहुत अधिक संकुचित हो गया था, उन औघड़ों की गर्म निकलती हुई सांसें मैं साफ़-साफ़ सुन रहा था, उनके शरीर के तापमय दाह को मैं अपने शरीर पर अनुभव कर रहा था, सभी औघड़ हमसे मुश्किल से दो या तीन फ़ुट की दूरी पर खड़े थे। सभी के हाथों में लम्बे फलदार नुकीले चाकू थे और सभी हिंसक पशुओं की तरह बेताल से लग रहे थे। प्रधान औघड़ अभी भी क्रोध की साक्षात मूर्ति बना अपने स्थान पर खड़ा था। उसे शायद विश्वास नहीं हो रहा था कि यह भैरवी इस प्रकार से सामने आकर चुनौती दे देगी और औघड़ों के बीच मुझे कुछ करने के लिए बाध्य कर देगी। मैं उसके मन के अन्तर्द्वन्द्व को समझ रहा था, अब यदि वह कुछ नहीं करता है, इस विद्रोह और अवज्ञा का जवाब नहीं देता है, तो अनुशासन टूटता है, और कल कोई भी औघड़ या भैरवी विद्रोह करने के लिए तैयार हो सकती है, और यदि प्रहार करता है, तो कुछ भी अनर्थ हो सकता है, जिस भैरवी को साधनाएं

सिखाईं, जिसे उच्च स्तर की साधनाओं में निपुण किया, जो इन सभी औघड़ों और भैरवियों में श्रेष्ठ स्तर पर पहुंच गई थी, वही भैरवी विद्रोह कर देगी, एक मामूली से युवक के लिए सारे औघड़ समुदाय से लड़ने के लिए तैयार हो जाएगी और उसे ही चुनौती दे देगी, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा होगा।

वह शायद इस अन्तर्द्वन्द्व में भी उलझा हुआ था कि यह भैरवी इस समय तक साधना के क्षेत्र में जिस स्तर पर है, वह सामान्य स्तर नहीं है, इसने उच्च कोटि की साधनाएं और कृत्याएं सिद्ध कर रखी हैं। पलक झपकते ही साधना के बल पर यह कुछ भी कर सकती है और इन सारे औघड़ों और भैरवियों का मान-मर्दन कर सकती है। उसे तो पता ही था कि उसने छुपकर भैरवी को क्या-क्या साधनाएं सिखा दी हैं, उच्च कोटि की कृत्या वीरभद्र प्रयोग, विध्वंस प्रयोग, मारण प्रयोग और अभयचारी प्रयोग उसे सिखा दिए हैं, क्योंकि भैरवी के प्रति उसके मन में दुर्बलता थी।

उसने अपनी शक्ति अपनी सामर्थ्य और अपनी साधना का बल देकर भी इस भैरवी को योग्य बनाया होगा। उच्च कोटि की साधनाओं से सम्पन्न किया, अद्वितीय मारक-तारक शक्तियों से परिचित कराया। इस भैरवी के लिए आकाश-गमन और जल-गमन एक साधारण प्रक्रिया है, यह एक क्षण के सौवें हिस्से में विश्व के किसी भी कोने में जा सकती है, और यदि चाहे तो अपनी शक्ति और साधना के बल पर पहाड़ को मिट्टी की ढेरी में बदलने की सामर्थ्य रखती है।

अन्य औघड़ इसलिए तमतमा रहे थे कि उन्हें इस भैरवी की साधनाओं के बारे में सही-सही जानकारी नहीं थी। वे तो यही समझ रहे थे कि हमारे पास जो साधनाएं हैं, वे ही साधनाएं इसके पास भी हैं, परन्तु प्रधान औघड़ जानता था कि वे औघड़ और भैरवियां अंधेरे में हैं, मात्र उसे ही पता है कि यह भैरवी कितनी अधिक साधना सम्पन्न एवं शक्ति सम्पन्न है, इसीलिए वह कुछ करने से पहले अन्तर्द्वन्द्व में उलझा हुआ था।

मैं उसकी दुविधा समझ रहा था, परन्तु कुछ-न-कुछ तो करना ही था और यदि कुछ नहीं किया, तो अनुशासन भंग होता है, फलस्वरूप कल कोई

किसी की बात नहीं मानेगा, परन्तु यदि कुछ किया जाता है, तो सर्वनाश निश्चित है, यह एक ऐसा कठोर और यथार्थ अन्तर्द्वन्द्व था, जिसका सामना प्रधान औघड़ को करना पड़ रहा था। और वह समझ रहा था कि इसी वजह से यह भैरवी निर्भीक सिंहनी की तरह सामने डटकर खड़ी है।

तभी उस धक्का-पेली में संकुचित हुए घेरे में किसी एक औघड़ का शरीर भैरवी से टकरा गया। भैरवी ने खा जाने वाली नज़रों से उसको ताका। उसने देखा कि सारे औघड़ और भैरवियां रक्त-पिपासु बनीं उसके चारों ओर खड़ी हैं, और यदि उसने एक-आध क्षण में ही कोई ठोस निर्णय नहीं लिया तो अनर्थ हो सकता है, और ऐसा निश्चय करते ही भैरवी ने कृत्या प्रयोग कर दिया, मुझे आज ये पंक्तियां लिखते समय भी भैरवी के मुख से निकलते हुए शब्दों का पूरा-पूरा स्मरण है —

ॐ काली कंकाली किलकिले क्लीं रक्त कंबले महादेवी मृतक मुत्थापय चालय चालय पर्वतां कम्पय नीलय हुं हुं भूतनाथाय भूतेश्वराय अज किंकिरोत्तम कंकाली महाकाली केलि कलाभ्यां हुं हुं...

आगे के और भी शब्द उसके होंठों से निसृत हो रहे थे। मैंने देखा कि उसने अपना दाहिना हाथ हवा में ऊपर उठाया, ऊपर उठाते ही उसकी मुट्ठी में पीले-पीले से कुछ दाने आए और 'हुं फट्' कहकर वे दाने अपने चारों ओर बिखेरते ही ऐसा लगा मानो एक साथ सैकड़ों बम फट पड़े हों। ज़ोर की आवाज़ होने से कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। चारों तरफ़ घिरे हुए औघड़ और भैरवियां छितरा गए थे, प्रधान औघड़ उस आकस्मिक और अप्रत्याशित कृत्य से भौचक्का-सा हो गया था, कृत्या के प्रयोग से उसके हाथ का खड्ग छिटककर चार-पांच फुट दूर जा गिरा था, उसका सारा शरीर कृत्या के प्रहार से थरथरा रहा था। यद्यपि बाक़ी सारे औघड़ और भैरवियां तिनकों की तरह उछलकर दूर औंधे मुंह जा गिरे थे, परन्तु प्रधान औघड़ उस कृत्या के प्रहार को झेल गया था, यद्यपि इस प्रहार से उसका सारा शरीर कम्पित हो गया था। इस समय भी उसके शरीर की थरथराहट मैं अनुभव कर रहा था, उसके घुटनों में जो कम्पन था, उसको मैं भली प्रकार से देख रहा था, परन्तु फिर भी प्रधान औघड़ साधना सम्पन्न था, उसके हाथ का खड्ग अवश्य ही छिटककर दूर

जा गिरा था, उसका शरीर उस भीषण प्रहार से थरथरा गया था, फिर भी उसके पांव मज़बूती से एक जगह पर जमे थे। वह अनुमान नहीं लगा पा रहा था कि यह भैरवी प्राणों पर आ पड़ने पर कृत्या का प्रयोग तक कर देगी।

परन्तु अब तो तीर कमान से छूट गया था, अब तो बराबरी की बात थी। अब किसी प्रकार से न्यूनता नहीं रखनी है। क्रोध की उन्मत्त अवस्था में प्रधान औघड़ ने दोनों हाथ हवा में लहराए और एक क्षण के अन्तराल में ही उसकी दोनों मुट्ठियां काले दानों से भर गईं। शायद उन मुट्ठियों में काली मिरच या ऐसी ही कोई वस्तु रही होगी और मन्त्र बुदबुदाते हुए प्रधान औघड़ ने उन बीजों को भैरवी के सामने ही ज़मीन पर पटक दिया। पटकते ही भयानक विस्फोट हुआ, जैसे कि सारी धरती ही फट जाएगी। ऐसा लगा कि मेरे पैरों के पास परमाणु बम का विस्फोट हुआ हो, या 'मृत्यु-बाण प्रयोग' था, जो कि अपने-आप में भीषण और कठिन कहा जाता है।

भैरवी मुझे खींचकर अपने स्थान से पांच क़दम पीछे सरक गई। प्रधान औघड़ के द्वारा 'मृत्यु-बाण प्रयोग' से अन्य जितने भी भैरव और भैरवियां खड़ी थीं, वे हवा में उछलकर काफ़ी दूर जा गिरे थे। वे सभी अपनी सुध-बुध भुलाकर ज़मीन पर इस प्रकार पड़े थे, जैसे कि युद्ध-स्थल में मरे हुए सैनिक पड़े हों, परन्तु उन्हें संभालने का होश किसे था। यहां तो दोनों ही अपने जीवन की बाज़ी लगाए खड़े थे, दोनों ही एक दूसरे पर हावी होने की कोशिश में थे, दोनों ही इस बात के लिए प्रयत्नशील थे कि किसी भी हालत में अपने वर्चस्व को, अपने अहं और अपने प्रभुत्व को बनाए रखना है।

प्रधान औघड़ द्वारा किया गया 'मृत्यु बाण प्रयोग' इतना भीषण और संहारात्मक था कि जहां हम एक क्षण पहले खड़े थे, वहां आठ-नौ फ़ीट का गहरा गड्ढा बन गया था। यदि भैरवी मुझे खींचकर पांच-सात क़दम पीछे न सरकती, तो हम दोनों निश्चित रूप से उस गड्ढे में गिर चुके होते। मेरे कानों के परदे फट-से गए थे, पूरा वातावरण दिल-दहला देने वाला था, हवा ख़ामोश स्तब्ध-सी हो गई थी। कुछ क्षणों पहले जो अन्य औघड़ और भैरवियां अपने-अपने खड्ग लपलपा रहे थे, वे मृतवत बेहोश पड़े थे। मैं नहीं समझ पा रहा था कि मैं और भैरवी बेहोश क्यों नहीं हुए? अभी तक हम दोनों होश में थे, मेरे लिए यही आश्चर्य की बात थी, मुझमें इतनी भी शक्ति नहीं

रह गई थी कि नज़रें ऊंची उठाकर भैरवी की ओर देखता, परन्तु उसका दायां हाथ मेरी कमर के इर्द-गिर्द लिपटा हुआ था और मैं उसके शरीर से सटा हुआ था, जिसने अभी-अभी संसार का भीषणतम प्रयोग मृत्यु-बाण सम्पन्न किया था। वह किसी भी युक्ति और योजना से अपनी शत्रु भैरवी को समाप्त करने पर तुला हुआ था, उसकी आंखों से अंगारे बरस रहे थे, सारा शरीर अग्नि-पुंज बना हुआ था। देखने पर ऐसा लग रहा था, जैसे कोई साक्षात भस्मासुर खड़ा हो।

मैंने एक बार डरते-डरते कनखियों से उसे देखा, मात्र निमिष-भर के लिए ही उसे देखा होगा और उस क्षणिक झलक में ही मेरे सारे शरीर के रोंगटे खड़े हो गए थे, अन्दर का सारा ख़ून जमकर ठंडा-सा पड़ गया था, बांहों में ताक़त नहीं रह गई थी। यदि भैरवी का बायां हाथ मेरी कमर के इर्द-गिर्द लिपटा हुआ न होता, तो निश्चय ही मैं धम्म से पृथ्वी पर गिरकर बेहोश हो चुका होता।

प्रधान औघड़ के पास में ही अग्नि-कुंड अभी भी दहक रहा था, कुंड की ज्वालाएं लपलपाती जीभों से सब-कुछ निगल जाने को आतुर थीं। चारों तरफ़ का वातावरण डरावना, भयंकर और रहस्यमय हो गया था, ख़ामोशी इतनी अधिक थी कि भैरवी की सांस भी मैं साफ़-साफ़ सुन रहा था।

औघड़ ने देखा कि 'मृत्यु-बाण प्रयोग' से भी भैरवी का कुछ बिगड़ा नहीं है। निश्चय ही उसने पहले से ही भांप लिया था कि औघड़ 'मृत्यु-बाण प्रयोग' सम्पन्न करेगा और ऐसा भांपते ही भैरवी ने उसके प्रतिरोधात्मक मन्त्र का जप प्रारम्भ कर दिया था। फलस्वरूप इस भीषण मृत्यु-बाण के प्रयोग के बावजूद भैरवी और उसके चहेते का बाल भी बांका नहीं हुआ था। यही नहीं, अपितु भैरवी आसन्न ख़तरे को भांपकर अपने स्थान से आठ-दस क़दम पीछे की ओर सरक गई थी, जिससे वह सुरक्षित रूप से बची रह सकती थी।

प्रधान औघड़ विशेष शक्ति सम्पन्न लगता था। जान पड़ता था कि अभी भी उसके पास ऐसी कई साधनाएं और प्रयोग थे, जिसके बल पर वह इससे भी भीषण तबाही मचा सकता है, परन्तु उसने यह समझ लिया था कि सामने भैरवी खड़ी है, वह अब मिट्टी का माधो नहीं रह गई है, अपितु इसमें बचाव

करने की और प्रहार करने की शक्ति भी है।

प्रधान औघड़ ने चिल्लाकर कहा, "भैरवी, तू अब भी संभल जा, अगर मैं अपने-आप पर तुल गया, तो तेरे साथ-साथ इन सभी औघड़ और भैरवियों का सर्वनाश भी निश्चित है, तू एक गए-गुज़रे छोकरे के लिए अपने-आपको जिस ख़तरे में डाल रही है, वह उचित नहीं है। मुझसे टकराने से पहले अपने-आपको संभाल ले, तो ज़्यादा उचित रहेगा। मैं अब भी तुझे माफ़ कर सकता हूं; यदि तू इस बलि को मेरे हवाले कर दे, जिससे कि मैं इसे यज्ञ-कुंड में होम कर भगवान भूतभावन भैरव को बलि देकर उन्हें सन्तुष्ट कर सकूं। मैं तुझे विश्वास दिलाता हूं कि उन अन्य साधनाओं में भी मैं तुझे सिद्धहस्त कर दूंगा, जो अभी तेरे पास नहीं हैं।"

भैरवी व्यंग्य से मुस्कुराई, बोली, "मेरे गुरु और आधार तो काल भैरव हैं, और केवल उनकी आज्ञा का पालन करना ही मेरा धर्म है। इसके अलावा मैं संसार में न तो किसी के बन्धन में बंधकर रही हूं और न बंधकर रहूंगी। अपनी यह सीख अपने पास ही रहने दे या इन टुच्चे भैरव-भैरवियों को सिखा, जिससे कि वे तेरे इर्द-गिर्द घूम सकें। अब तू सामने शत्रु के रूप में खड़ा ही हो गया है, तो मन में मत रखना। जो कुछ करना है तू कर सकता है, परन्तु इतना याद रखना कि मैं मोम की बनी हुई नहीं हूं कि फूंक देकर बुझा दे।"

सुनते ही प्रधान औघड़ की आंखें कपाल में चढ़ गईं, क्रोध के मारे उसकी सांस धौंकनी की तरह चलने लगी। वेग से उसका सारा शरीर थरथरा रहा था, ग़ुस्से के मारे वह अपने आपे में नहीं रह गया था। बड़बड़ाने में उसके मुंह से झाग-सा निकल रहा था। कोई उसकी इस प्रकार से अवहेलना कर दे, इस प्रकार से अपमानित कर दे और इस प्रकार से अवज्ञा कर दे, यह उसने स्वप्न में भी नहीं सोचा था शायद, और आज एक छोकरी उसकी सारी प्रतिष्ठा को दांव पर लगाए बैठी है। उसके गुरु सूक्ष्म शरीर में आसपास ही कहीं विचरण कर रहे होंगे, और वे उसकी इस प्रकार की पराजय और दीनता को देखकर व्यंग्य से मुस्कुरा रहे होंगे, कौन-सा मुंह लेकर वह अपने गुरु के सामने जाकर खड़ा हो सकेगा, यह सोच-सोच कर उसके सारे शरीर की धमनियां उत्तप्त हो उठीं, रक्त की जगह लावा-सा बहने लगा और क्रोध के मारे मुंह से गालियों का अजस्र प्रवाह बह निकला।

औघड़ यज्ञ-कुंड से आगे बढ़ता हुआ खड्डे के किनारे-किनारे चलकर भैरवी के सामने आ खड़ा हुआ, ऐसा लगा जैसे साक्षात यमराज किसी अप्सरा के सामने आ खड़ा हुआ हो। सारा शरीर लाल भभूका हो रहा था और लगभग दो-तीन फीट दूर खड़ा मैं उसके शरीर की दाह और आंच को अनुभव कर रहा था, अगले ही क्षण क्या कुछ घटित होने वाला है, इसका मैं आभास नहीं लगा पा रहा था। मेरी तो इतनी हिम्मत ही नहीं हो पा रही थी कि मैं नज़रें ऊंची उठाकर उस औघड़ की ओर ताक सकूं, मैं तो उसके क्रोध और तप्त देह की आंच से ही झुलसा जा रहा था।

मैंने अनुभव किया कि भैरवी का शरीर और भी तन गया था। उन दोनों के बीच मुश्किल से एक-दो फुट का फ़ासला था। मैंने पहली बार पूर्ण दृष्टि से ऊपर देखा तो औघड़ आंखें फाड़कर खा जाने वाली नज़रों से भैरवी को देखता हुआ चीख़ रहा था, "कुत्ती, कमीनी, बेहया, चुड़ैल, वेश्या...।"

और तभी वह हो गया, जो नहीं होना चाहिए था। भैरवी ने एकदम आगे बढ़कर झन्नाटेदार थप्पड़ उस औघड़ के गाल पर जड़ दिया। थप्पड़ का लगना था कि औघड़ अचकचा गया।

भैरवी ने अपने हाथों में काली सरसों ली और चारों दिशाओं की ओर फेंकती हुई उच्चारण करने लगी, "ओऽम् हुं हुं हुं वीर वेताल राक्षस ब्रह्मराक्षस भूत प्रेत पिशाच हुं फट् फट् ह्रीं भूतिनी हुं हुं हुं। कोधास्त्रद्वयं मायाते भूतिनीं च त्रिकूर्चतः। ओऽम् ह्रीं ह्रीं फट् फट् विभूषिणी हुं हुं हुं भीषिकां लम्बजिह्वां सुधामुखीम् कृष्णवर्णा हसन्मुखीं भीमिका भयंकरि करिकरि उन्मनाय आगच्छ आगच्छ इह तिष्ठ इह तिष्ठ क्रीं क्रीं क्रीं उग्र प्रभे विकट दंष्ट्रे परपक्षं पच पच, मथ मथ, दह दह, हन हन, मारय मारय, वारय वारय छिन्ध छिन्धि भिन्थि भिन्थि करालिनी गृहणं गृहणं ओऽम् क्रीं क्रीं क्रीं स्फूर स्फूर पूर पूर पून पून चल्व चल्व धकधक धमधम मारय मारय श्मशान कालिके दिगम्बरी जाग्रय जाग्रय हुं फट्।"

श्मशान जागरण मन्त्र भैरवी के मुंह से बराबर उच्चरित हो रहा था और वह काली सरसों चारों ओर बिखेर रही थी। उसकी आंखें आधी बन्द और आधी खुली थीं। उस भयानक निस्तब्धता में केवल भैरवी के शब्द ही व्याघात कर रहे थे, औघड़ बराबर भैरवी को देख रहा था। उसे पहली बार अपने आप

पर गर्व हुआ था कि निश्चय ही भैरवी 'दृढ़ वज्रा' है। यह मेरी सही उत्तराधिकारिणी हो सकेगी और सिद्धियों के क्षेत्र में अद्वितीय बन सकेगी।

तभी ज़ोर का धमाका हुआ। श्मशान जागरण मन्त्र की मालाएं समाप्त होने को आई थीं। भैरवी के हाथों में सर्प अस्थियों की माला थी और देखते-ही-देखते श्मशान अंगड़ाई लेकर उठ बैठा। चारों तरफ़ से विचित्र और विविध ध्वनियां आने लगीं।

श्मशान में चारों तरफ़ से भूत-प्रेत, पिशाच निकल-निकलकर आ रहे थे, विचित्र वेशभूषा, विचित्र आकृति और विचित्र ध्वनियों के साथ। किसी की गर्दन पर दो सिर थे, कुछ के पीछे के बाल इतने बढ़े हुए थे कि वे ज़मीन पर घिसट रहे थे, तो किसी के मुंह में आठ-आठ इंच लम्बे दांत बाहर निकले हुए दिखाई दे रहे थे, तो कुछ बिल्कुल सफाचट मुंडे हुए सिर के साथ दिखाई दे रहे थे। कुछ की आंखें हाथी की तरह बहुत छोटी-छोटी, तो कुछ की इतनी बड़ी-बड़ी थीं कि चेहरे पर आंखों के अलावा कुछ दिखाई ही नहीं दे रहा था। कुछ के पेट ज़रूरत से ज़्यादा बढ़े हुए, मोटे, थुल-थुल और बेडौल, तो कुछ सींकिया पहलवान से दिखाई दे रहे थे। वे ऐसे लग रहे थे कि जैसे सूई के छेद में से भी आसानी से बाहर निकल जाएंगे। कुछ का शरीर सुन्दर-सा दिखाई दे रहा था, तो कुछ के पूरे शरीर पर लम्बे काले बाल बहुत गन्दे और घिनौने से प्रतीत हो रहे थे। कुछ के पैर और पैरों की उंगलियां सामान्य मानवों की तरह आगे की ओर दिखाई दे रही थीं, तो कुछ के पैर पीछे की ओर मुड़े हुए प्रतीत हो रहे थे, जिनकी उंगलियां तो पीछे की ओर थीं, पर वे एड़ी की तरफ़ से आगे चल रहे थे। कुछ ने ज़रूरत से ज़्यादा कपड़े अपने शरीर पर पहन रखे थे, तो कुछ सर्वथा दिगम्बर वस्त्रहीन नंगे। कुछ बहुत ही बौने और ठिगने दिखाई दे रहे थे, मुश्किल से उनकी ऊंचाई दो या तीन फ़ीट रही होगी, तो कुछ ताड़ के पेड़ की तरह बहुत ही लम्बे लगभग आठ या नौ फ़ीट दिखाई दे रहे थे, किसी का किसी से मिलान नहीं हो रहा था। सभी अपने-आप में अजीब बेडौल और भयानक दिखाई दे रहे थे।

जिस प्रकार से विभिन्न वेशभूषा और विविध आकृति से युक्त भूत दिखाई दे रहे थे, ठीक वैसी ही भूतनियां भी विविध रूपों से युक्त सामने आती हुई दृष्टिगोचर हो रही थीं। बढ़े हुए दांत आगे की ओर नुकीले पैने और गले

की तरफ़ मुड़े हुए भयंकर दिखाई दे रहे थे। उनके चेहरे पर आग बरसाती हुई आंखें दहशत पैदा कर रही थीं। चिड़िया के घोंसले की तरह उनके उलझे हुए रूखे बाल चेहरे की कुरूपता और भयंकरता को और अधिक बढ़ा रहे थे। मुंह से रह-रहकर ख़ून की पिचकारियां छूट रही थीं। सारा शरीर नग्न-सा बहुत ही गन्दा और घिनौना प्रतीत हो रहा था। ज़रूरत से ज़्यादा पेट बढ़ा हुआ और उस पर लटके हुए वक्षस्थल, मन में एक जुगुप्सा पैदा कर रहे थे। जांघें और घुटने मैल से भरे हुए, पैरों की उंगलियां मुड़ी हुईं। ये स्त्रियां इतनी अधिक कुरूप बीभत्स और घिनौनी दिखाई दे रही थीं कि भैरवी जैसी दृढ़ साधिका ने भी दो क्षण के लिए भयभीत होकर अपनी आंखें बन्द कर लीं। इसके विपरीत कुछ भूतनियां अत्यधिक आकर्षक और सुन्दर दिखाई दे रही थीं, मानो किसी बहुत ही ऊंचे घराने की राजकुमारियां हों। उनका दूधिया गौर वर्ण अत्यधिक आकर्षक लग रहा था। भैरवी ने इन राक्षसनियों के बीच में ऐसी गजगामिनियों को देखकर आश्चर्य ही अनुभव किया। शरीर पर झीना पारदर्शी उत्तरीय और ओढ़नी के साथ-साथ कंचुकी पूरे शरीर को एक विशेष आभा से दीपित करने में समर्थ थी।

एक तरफ़ जहां ऐसी गज-गामिनियों का झुंड मन्द-मन्द चाल से मुस्कुराता हुआ भैरवी की तरफ़ आ रहा था, वहीं दूसरी ओर बीभत्स-क्रूर लम्बे-तीखे नाख़ून, बिखरे हुए बाल, सूखे हुए चेहरे से युक्त पिशाचनियां झपटती हुई भैरवी की ओर बढ़ रही थीं जैसे वे एक ही झटके से भैरवी को उठाकर टुकड़े-टुकड़े कर खा जाएंगी। उनके हाथों में खप्पर या सुरा-पात्र थे, जिनमें से ताजा बहता हुआ मानव-रक्त मन में दहशत पैदा कर रहा था। उनके गले में पड़ी हुई नर-मुंडों की माला इस बात की साक्षी थी कि वे सही अर्थों में पिशाचनियां हैं और मानव शरीर से खेलना उनका नित्य का कार्य है।

भैरवी ने कहीं पढ़ रखा था कि ये पिशाचनियां नित्य सात स्वस्थ व्यक्तियों की गर्दन तोड़कर उनके ताजे रक्त से अपना खप्पर भरती हैं और उस रक्त को पीने के बाद ही वे अन्य क्रियाओं में रत होती हैं। मारने के बाद उनके नर-मुंडों की माला अपने गले में धारण कर लेती हैं। भैरवी साफ़-साफ़ देख रही थी कि उन पिशाचनियों के गले में जो नर-मुंडों की मालाएं पड़ी हुई हैं, वे ताजी और स्वस्थ हैं। ऐसा लग रहा है कि कुछ ही घंटों पहले

कुछ पुरुषों का निर्ममता के साथ वध हुआ होगा। उन नर-मुंडों से अभी भी रक्त टपक रहा था। उनकी आंखें भय से फैली हुई इस बात की गवाह थीं कि अनिच्छा और विवशता में ही उनका वध हुआ होगा।

चलती-चलती वे परस्पर बीभत्स किलोलें करती जातीं। उनका सारा शरीर ताजे रक्त से चिपचिपाया था। पीते समय उन्हें यह होश नहीं रहता था कि कितना मानव-रक्त उनके उदरस्थ होता है और कितना कपड़ों पर या शरीर पर जाता है! जो कुछ दिखाई दे रहा था, वह अत्यन्त घिनौना, बीभत्स, क्रूर और भयंकर था। भैरवी के मुंह से चीख़ निकलना ही चाहती थी कि उसने ज़बरदस्ती उस चीख़ को अन्दर ही घोंट लिया। भय से उसका शरीर पीला पड़ता जा रहा था और आंखें फैलकर दहशत व्यक्त कर रही थीं।

अभी वह इस झटके से मुक्त नहीं हो पाई थी कि उसे अत्यन्त क्रूर और भयानक व्यक्ति आते हुए दिखे, जिनकी लम्बाई कम-से-कम बारह-तेरह फ़ीट तो आसानी से होगी। लम्बा-चौड़ा डील-डौल, सारा शरीर सर्वथा नग्न-सा, पूरी देह पर लम्बे-लम्बे बाल, दहकती हुई आंखें, टेढ़े और वक्र दांत तथा लम्बे-लम्बे नाख़ून लिये वे तेज़ी से आगे की ओर बढ़ रहे थे। उनका चलना सर्पाकृति के समान था। सीधे तो वे चल ही नहीं पा रहे थे। अपितु परस्पर लड़ते हुए, नाख़ूनों से एक-दूसरे को खरोंचते, दांतों से काटकर लहू निकालते, वे सही अर्थों में राक्षस थे। एक बार बातचीत के प्रसंग में अघोरी ने बताया था कि मनुष्य के अलावा भी कई इतर योनियां हैं, जो हमारे चारों ओर फैली रहती हैं। वे हमें आसानी से देख लेती हैं, यह अलग बात है कि हम उन्हें नहीं देख पाते। इसका कारण यह है कि मनुष्य सही रूप में चतुर्वर्गात्मक है। सामान्य सिद्धान्त के अनुसार जिसकी लम्बाई, चौड़ाई, ऊंचाई और मोटाई होगी, वह दृष्टिगोचर होगा ही, पर जो केवल त्रिवर्गात्मक है, उनके बाक़ी सारे हाव-भाव क्रिया-कलाप तो मनुष्य की तरह ही होते हैं, परन्तु वे सामान्य मनुष्यों को दिखाई नहीं देते।

भूत-प्रेत, राक्षस, ब्रह्म-राक्षस आदि योनियां भी हमारे चारों ओर बिखरी हुई हैं। मरने पर यदि उनकी इच्छाएं तृप्त नहीं हो पातीं या इनमें किसी प्रकार की वासना रह जाती है, तो उनकी मुक्ति नहीं हो पाती, अपितु इसी प्रकार

की किसी योनि में परिवर्तित होकर चारों ओर भटकती फिरती हैं। सही अर्थों में देखा जाए, तो ये योनियां स्वयं ही अपने-आप में अत्यधिक दुखी और परेशान रहती हैं, क्योंकि उनकी इच्छाएं पूरी होती नहीं हैं, और अतृप्त इच्छाओं के कारण उनके मन को किसी प्रकार की शान्ति नहीं मिल पाती। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति की मृत्यु होती है और उसकी इच्छा धन में लगी होती है कि मेरे मरने के बाद कहीं मेरा यह उपार्जित धन मेरे लड़के उड़ा न दें या बरबाद न कर दें और ऐसे चिन्तन में उसकी मृत्यु हो जाती है, तो वह निश्चित ही भूत-योनि में परिवर्तित होकर अपने घर के चारों ओर मंडराता रहता है। यद्यपि इस योनि में आकर वह अपने परिवार से सम्बन्धित व्यक्तियों के जीवन में कोई बहुत बड़ा व्याघात उत्पन्न नहीं कर सकता। यदि उसके लड़के धन उड़ाना भी शुरू कर दें, तब भी वह कुछ कर तो नहीं पाता, परन्तु अपने लड़के की ओर, घर के चारों ओर, अतृप्त इच्छाओं को लिये मंडराता रहता है।

इसी प्रकार पुत्र के प्रति मोह, स्त्री के प्रति आसक्ति, धन के प्रति लालसा, या अन्य ऐसी ही कई इच्छाएं मरते समय मन में रह जाती हैं और वे अतृप्त इच्छाएं ही मानव को भूत-योनि में परिवर्तित कर देती हैं।

सही अर्थों में भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस आदि त्रिवर्गात्मक हैं। इनमें लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई तो होती है, परन्तु गहराई का सर्वथा अभाव रहता है। ये अपने आकार को छोटा या बड़ा, लम्बा या ठिगना करने में समर्थ हो पाते हैं। कई बार कुछ भूत-प्रेत आदि तो मानव या सम्बन्धियों के शरीर में भी प्रवेश कर जाते हैं और अपनी इच्छाओं को पूरी कर लेते हैं। इनमें सुस्वादु भोजन करना, बहू या बेटी के साथ सम्भोग करना आदि शामिल है। योनियों में नैतिकता नाम की कोई वस्तु नहीं होती। न इनमें दया, ममता, स्नेह, अपनत्व आदि की भावनाएं ही होती हैं।

मनुष्य पंचभूतात्मक है। मनुष्य का शरीर पांच तत्त्वों — अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश से निर्मित है। इनमें भूमि तत्त्व सबसे अधिक है। इसीलिए वह ज़मीन से चिपका हुआ चलता है। मानवेतर योनियों में भूमि तत्त्व का सर्वथा लोप होता है, जिसके फलस्वरूप इन्हें गुरुत्वाकर्षण शक्ति नहीं बेध पाती और वायु के समान एक स्थान से दूसरे स्थान पर कुछ ही क्षणों में पहुंच पाने में समर्थ होते हैं।

इन योनियों में भी कई वर्ग हैं। जिनमें भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस, ब्रह्म-राक्षस आदि भी एक-दूसरे से लड़ते-झगड़ते रहते हैं। द्वेष भावना इनमें ज़रूरत से ज्यादा होती है। एक ही योनि के ये लोग परस्पर लड़ते भी रहते हैं। प्रेम-स्नेह का सर्वथा अभाव इनमें पाया जाता है। भूत से ज़्यादा बीभत्स और क्रूर प्रेत योनि होती है। उससे भी ज़्यादा भयंकर और दुष्ट राक्षस योनि कही जाती है और सर्वाधिक बीभत्स, भयानक, क्रूर और दुष्ट योनि को ब्रह्म राक्षस कहा जाता है।

भैरवी ने जब भूतों और प्रेतों के क़ाफ़िले को आते देखा, तो वह अपने आप में संयत बनी रही, परन्तु जब लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले प्रेतों को आते हुए देखा, तो उसका रहा-सहा धैर्य भी समाप्त हो गया। इनमें लम्बे तो लगभग सभी थे, परन्तु उनकी आकृति इतनी अधिक भयानक और डरावनी थी कि भैरवी की जगह यदि और कोई महिला या साधक भी होता, तो निश्चय ही दहशत से मर चुका होता। भैरवी ने तो इतने समय तक श्मशान में रहकर साधनाएं की थीं, उच्च कोटि के मन्त्रों का जप किया था और अपने-आप को संयत बनाने की कला सीखी थी, पर इन प्रेतों को देखकर भैरवी भी विचलित हो गई।

भैरवी ने मन-ही-मन अपने-आप को दृढ़ करने का प्रयत्न किया। उसने स्वयं कहा, 'यही क्षण परीक्षा का है, यदि तुम यह क्षण चूक गई, तो साधना में पीछे रह जाओगी। हिम्मत और हौसले की ज़रूरत है और फिर जहां वह बैठी हुई है, उसके चारों ओर तो सुरक्षा रेखा खिंची हुई है। ये भले ही आवें, परन्तु तेरा अहित नहीं कर पाएंगे।

परन्तु अपने-आप को समझाना अलग बात है और उस वातावरण में अपने-आप को संयत करना अलग। उन प्रेतों ने जो उपद्रव किया, जो भयानकता दिखाई, उसे देखकर तो अच्छों-अच्छों के छक्के छूट जाते। कुछ प्रेतों ने तो पूरे-के-पूरे पेड़ को ही जड़ से उखाड़कर कन्धे पर डाल रखा था, कुछ ने सामान्य मानव की गर्दन अपने बाएं हाथ में दबोच रखी थी और उसके गले को दांतों से काटकर छोटा-सा छेद बनाकर चलते-चलते ही उसका सारा ख़ून पी रहे थे। सभी प्रेत चिल्लाते-चीख़ते एक दूसरे को मारते, ख़ून निकालते, ख़ून पीते और तांडव करते दिखाई दे रहे थे।

भैरवी का मन्त्र बराबर चालू था। श्मशान धीरे-धीरे जाग्रत हो रहा था, उन प्रेतों ने भैरवी की तरफ़ अंगारों जैसी आंखें उठाकर देखा और होंठों पर जीभ फेरने लगे, जैसे उन्हें ताजा और कोमल मांस का ढेर सामने दिखाई दे गया हो।

उनमें से कुछ प्रेत लम्बे-लम्बे भाले और चाकू जैसे अस्त्र लिये द्रुत गति से लपकते हुए भैरवी की ओर बढ़े। उसके सीने में वे लपलपाते हुए चाकू भोंकने ही वाले थे कि भैरवी की आंखें चीख़ के साथ बन्द हो गईं।

दूसरे ही क्षण भैरवी ने अपने-आप को संयत किया। पास बैठे औघड़ की ओर कनखियों से देखा, तो वह अपने आसन पर स्थिर चित्त बैठा हुआ था। आंखें खुली थीं और अपलक दृष्टि से वह सामने की ओर निस्पृह भाव से प्रेत-लीला देख रहा था। भैरवी के मन को एक क्षण के लिए सन्तोष ही हुआ कि चलो, उसके गले से निकली हुई चीख़ औघड़ ने सुनी नहीं है। यदि सुन लेता, तो निश्चय ही यह साधना बन्द करवा देता और डेरे पर चलने के लिए कहता।

वह किसी भी प्रकार से इस अवसर को खोना नहीं चाहती थी। वह औघड़ के सामने अपने-आप को कमज़ोर और कायर प्रदर्शित नहीं करना चाहती थी। उसने कुछ ही क्षणों में अपने-आप को संयत कर लिया और उसी गति से श्मशान जागरण मन्त्र बुदबुदाने लगी। अब तक आधे से ज़्यादा श्मशान जाग्रत हो चुका था।

तभी उसने ज़ोर का कोलाहल सुना। उसकी एकाग्रता भंग हुई। उसने देखा कि पहाड़-के-पहाड़ उसकी तरफ़ सरकते हुए आ रहे हैं। प्रेतों से भी ज़्यादा भयंकर, बीभत्स और लम्बे-चौड़े डील-डौल वाले कुछ व्यक्ति आते हुए दिखाई दिए, जिनका पहाड़ की तरह शरीर था और पैर पीछे की ओर मुड़े हुए थे। उसने अपने मन में राक्षसों की जो कल्पना कर रखी थी, वे वैसे ही थे। उसने मन में सोचा कि ये अवश्य ही राक्षस होंगे। राक्षस घेरे को या सीमा रेखा को नहीं मानते। अब ज़रूर कुछ-न-कुछ होकर रहेगा। वे सभी अपने-आप में विचित्र और भयानक थे। कुछ के लम्बे और पतले मुंह थे, तो कुछ के मुंह और चेहरे इतने अधिक चौड़े थे कि चेहरों के अलावा सारे शरीर का अस्तित्व नगण्य-सा रह गया था। कुछ के बाल लम्बे बांस की खपच्चियों की तरह उठे

हुए थे, तो कुछ सिर मुंडाए हुए आगे की ओर बढ़ रहे थे। सभी की आंखें लाल-सुर्ख़ बड़ी-बड़ी और क्रोधमय थीं। सारे शरीर पर सैकड़ों छोटे-छोटे घाव थे, जिनमें से ख़ून रिस रहा था। उनके हाव-भाव कार्य-कलाप इतने अधिक बीभत्स, गन्दे और क्रूर थे कि ऐसे कृत्यों के बारे में तो सोचा ही नहीं जा सकता। भैरवी ने देखा कि मौक़ा पड़ने पर एक राक्षस ने थोड़ा-सा असावधान खड़े राक्षस को धक्का देकर नीचे गिरा दिया और उसकी छाती पर चढ़ बैठा। तब तक दूसरे राक्षसों ने उस गिरे हुए राक्षस को तलवारों, बर्छियों, भालों और तीरों से इतने अधिक प्रहार कर दिए कि एक ही क्षण में उसके शरीर के सैकड़ों छोटे-छोटे टुकड़े हो गए। सारे शरीर से ख़ून के फव्वारे बह निकले और बाक़ी सारे राक्षसों ने उसकी बोटियां चबा-चबाकर उदरस्थ कर लीं।

वे राक्षस दौड़ते हुए भैरवी की तरफ़ ही आ रहे थे। अब तो उसका और राक्षसों के बीच का फ़ासला चार-पांच फ़ीट से ज़्यादा नहीं रह गया था। वे परस्पर दांत किटकिटा रहे थे। आंखों से अंगारे बरसा रहे थे और उस सीमा-रेखा के चारों ओर घूम रहे थे। एक-दो राक्षसों ने उस खींची हुई रेखा को पार करने का प्रयत्न भी किया। यहां तक कि उनके नथुनों से निकलती हुई दुर्गन्ध भी भैरवी ने अपने चेहरे पर महसूस की, पर उन्हें पीछे हटना पड़ा।

सही कहा जाए तो भैरवी स्वयं अपने-आप में भयभीत हो गई थी। उसने क्षण-भर पहले एक राक्षस का हस्र देखा था। यदि वह सीमा रेखा से बाहर गिर पड़ी, तो उसके शरीर की इतनी बोटियां और टुकड़े हो जाएंगे कि जिसकी कोई गिनती ही नहीं हो। उसका सारा शरीर चीर-फाड़ दिया जाएगा। एक-एक बोटी नोचकर अलग कर दी जाएगी और मांस तो मांस हड्डियां तक भी ये राक्षस चबा डालेंगे। अपने जीवन का इतना भयानक अन्त अनुभव कर पीपल के पत्ते की तरह भैरवी अन्दर-ही-अन्दर सिहर उठी।

तभी एक तरफ़ ज़ोर का धमाका हुआ। उसने देखा कि बहुत बड़ा बवंडर उसकी तरफ़ आ रहा है। उस भयंकर वात्याचक्र को देखकर रात्रि में उस निर्जन स्थान में अच्छे-से-अच्छा महारथी भी अन्दर से हिल उठता। उसने मन-ही-मन सोच लिया कि हो न हो अब श्मशान जागरण पूर्णता की ओर है और यह ब्रह्म-राक्षस ही होगा, परन्तु उसने आज यह दृढ़ निश्चय कर लिया था कि चाहे मेरा शरीर समाप्त ही क्यों न हो जाए। मैं इस श्मशान जागरण साधना को

भली प्रकार सम्पन्न करूंगी।

चीख़ें और आवाज़ें बराबर उसकी ओर आ रही थीं। उसे भयंकर और विशाल आकृति वाले कुछ दैत्य सामने आते हुए दिखाई दिए। रामायण, महाभारत पढ़ते समय उसने ऐसे दैत्यों की कल्पना मन-ही-मन की थी, उन कल्पनाओं से ही वह सिहर उठती थी, पर आज तो वह अपनी आंखों से उन दैत्यों को देख रही है।

उसे देखकर अन्य भूत-प्रेत आदि एक तरफ़ दुबक गए थे। उनके चेहरों पर भी सन्त्रास के भाव स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे। जिस प्रकार से बिल्ली को देखकर चूहे की स्थिति होती है ठीक वैसी स्थिति उन भूतों और प्रेतों की ब्रह्म-राक्षस को देखकर हो रही थी। वास्तव में ब्रह्म-राक्षस तूफ़ान की तरह पेड़ों को उखाड़ता, पिशाचों और राक्षसों को मारता, भूतों के लम्बे-लम्बे बाल पकड़कर उन्हें हवा में उछालता आ रहा था। उसने आते ही ज़ोर से फुंकार छोड़ी। उस फुंकार का वेग ही इतना अधिक तीव्र था कि भैरवी का आसन अपनी जगह से एक-दो इंच पीछे सरक गया। यदि भैरवी दृढ़ता के साथ संयमित और संयत न होती, तो अवश्य ही सीमा रेखा से बाहर गिर पड़ी होती। उसका सारा शरीर कांप रहा था, चेहरे पर हवाइयां उड़ रही थीं। शरीर का रोम-रोम खड़ा हो गया था और गला घर्र-घर्र की ध्वनि के साथ गड़गड़ा रहा था।

तभी ब्रह्म-राक्षस ने ज़ोर से हाथ का झपट्टा मारा। उसके लम्बे-लम्बे नाख़ून भैरवी से कुछ ही इंच पीछे रह गए थे और ज़ोर से हुंकार भरने के साथ-साथ उस झपट्टे को देते हुए आंखों में पैशाचिकता लिये हुए ब्रह्म-राक्षस ने अपने पूरे शरीर को इस प्रकार से लहराया कि मानो वह भैरवी पर गिर पड़ेगा।

वह जड़ की तरह उस भयंकर ब्रह्म-राक्षस को देख रही थी। ऐसा लग रहा था कि किसी भी समय वह बेहोश होकर गिर पड़ेगी। तभी उसे ब्रह्म-राक्षस दो-तीन क़दम पीछे जाता हुआ दिखाई दिया। उसने भयातुर आंखों से उस भयंकर ब्रह्म-राक्षस की आंखों में पैशाचिकता देखी और उसने देखा कि ब्रह्म-राक्षस ने ज़ोर से थप्पड़-सा भैरवी के गाल पर जमा दिया है। दूसरे ही क्षण भैरवी की आंखें बन्द हो गईं और शरीर निढाल होता हुआ-सा होकर

गिरने लगा। तभी अप्रत्याशित रूप से उसके मुंह से ज़ोर से चीख़ निकल पड़ी।

औघड़ ने चीख़ सुनकर उसकी तरफ़ ताका और अनुभव किया कि भैरवी का सारा शरीर डर के मारे पीपल के पत्ते की तरह कांप रहा है। उसका चेहरा पीला पड़ गया है, दांत किटकिटा रहे हैं और आवाज़ गले में फंस गई है। वह किसी भी समय ज़मीन पर गिर सकती है और यदि उसका सिर या शरीर का कोई भी भाग सीमा रेखा से बाहर आ गया, तो भैरवी का अस्तित्व ही नहीं रह जाएगा। वह ब्रह्म राक्षस बोटी-बोटी काटकर उदरस्थ कर लेगा। औघड़ से एक ही क्षण में मन-ही-मन निर्णय ले लिया और श्मशान को सुप्त और शान्त करने का मन्त्र बुदबुदाने लगा –

ओऽम् नमो वीर वैताल अंजनि समुदाय प्रकट विक्रम वीर दैत्यदानव यक्ष राक्षस, ग्रह बंधनाय भूत ग्रह प्रेत ग्रह पिशाच ग्रह, सापिनी ग्रह, डाकिनी ग्रह, काकिनी ग्रह कामिनी ग्रह, ब्रह्म ग्रह, ब्रह्म राक्षस ग्रह, चोर ग्रह, बंधनाय आवंशयावेशय स्फुर स्फुर प्रस्फुर प्रस्फुर मर्दय मर्दय मारय मारय चूर्णय चूर्णय खे खे हां हीं हूं हैं हैं हः भट्।

और धीरे-धीरे श्मशान शान्त होने लगा। ब्रह्म-राक्षस पीछे की ओर लौट पड़ा। उसके जाते ही अन्य भूतों और प्रेतों ने राहत की सांस ली और वे भी पीछे की ओर मुड़ने लगे। मात्र पांच-दस मिनट में सारा श्मशान ख़ाली हो गया।

औघड़ ने आगे बढ़कर कांपती हुई भैरवी को अपनी बांहों में थाम लिया। भैरवी अब पहले की अपेक्षा संयत थी। उसकी दृढ़ संकल्प शक्ति स्पष्ट दिखाई दे रही थी कि इतना होते हुए भी उसने अपने शरीर को ज़मीन पर गिरने नहीं दिया था। उसके हाथ की माला छूटकर ज़मीन पर नहीं गिरी थी और होंठों से निकलते हुए शब्दों में व्यवधान नहीं आया था।

उसने आंखें खोलीं। ज़रा स्वस्थ और संयत हुई, उसने अनुभव किया कि उसका शरीर औघड़ की बांहों में है, औघड़ ने उसकी पीठ पर शाबाशी भरी थपकी दी और कहा, "वास्तव में तुम बहुत मज़बूत और दृढ़ निश्चय वाली

साधिका हो। मैं भी जब पहले-पहले अपने गुरु के साथ श्मशान जाग्रत क्रिया में आया था, तो बेहोश होकर गिर पड़ा था, पर तुमने तो अपने-आप को बराबर संयत बनाए रखा है। इसमें कोई दो राय नहीं कि तुम योग्य तेजस्वी साधिका हो और एक दिन अपने गुरु से भी आगे बढ़ सकोगी।"

पर औघड़ ने शायद यह स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि जिस कोमल कमनीय मूर्ति को वह तराश रहा है, वही एक दिन वज्र की तरह उसके सामने आकर खड़ी हो जाएगी और चुनौती दे देगी। श्मशान जागरण के बाद तो भैरवी बहुत आगे बढ़ गई है, और औघड़ ने उसको क्या-क्या नहीं सिखा दिया है अपनी गुप्त से गुप्त क्रियाएं और गुह्य से गुह्य साधनाएं भी उसे मनोयोगपूर्वक सिखा दी हैं। आज निश्चय ही वह औघड़ से टक्कर लेने में समर्थ है और यदि वह अपने-आप पर तुल जाए, तो औघड़ को चार क़दम पीछे सरका सकती है।

पर आज उसे जीवन में अपमान का कड़वा घूंट पीना पड़ा। शायद पहले ऐसी कोई घटना नहीं घटी होगी और न किसी के हाथों इस प्रकार अपमानित होना पड़ा होगा।

उसने गरजकर कहा, "तूने मेरे गाल पर थप्पड़ लगा दिया है। मैं अपने गुरु बटुकनाथ की सौगन्ध खाकर प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तक मैं तेरा सर्वनाश नहीं कर दूंगा, तेरी बोटी-बोटी काटकर महाकाल भैरव को समर्पित नहीं कर दूंगा, तब तक चैन से नहीं सोऊंगा और न अन्न ग्रहण करूंगा।" और ऐसा कहते-कहते उसने अपना हाथ यज्ञ-कुंड में दहकती हुई अग्नि के बीच डालकर चार-छः अंगारे उठा लिये और क्रोध के मारे अपनी मुट्ठी में मसलते हुए उसने चीख़कर आगे कहा, "भैरवी, तूने मेरा अपमान नहीं, काल भैरव का अपमान किया है और मैं इन अंगारों को हाथ में लेकर कहता हूं कि तेरा सर्वनाश ही मेरे जीवन का उद्देश्य होगा।" और उसने पास में पड़े चसक पात्र में से सुरा लेकर अग्नि को समर्पित कर दी, फिर व्यालोल मन्त्र पढ़ता हुआ बोला, "दसों दिशाएं और दिग्पाल सुन लें। मैं काल भैरव को जब तक इसकी बलि नहीं दूंगा, तब तक अन्न स्वीकार नहीं करूंगा।"

मैं थोड़ा संभल चुका था। मैं तनकर खड़ा हो गया था। मैंने यह निश्चय

कर लिया था कि इस औघड़ से यदि जूझना पड़ा, तो निश्चय ही भिड़ जाऊंगा। मेरी आंखों में चिनगारियां थीं और यह विश्वास था कि मैं थोड़ा बहुत योगदान अपनी प्राण-रक्षिका को दे ही सकूंगा।

भैरवी ने एक क्षण के लिए मेरी ओर देखा और फिर सामने दृष्टि डाली। सभी भैरव-भैरवियां पीछे की ओर सरक गए हैं। उन्होंने सोच लिया है कि जो खेल प्रारम्भ हुआ है, उससे किसी-न-किसी का सर्वनाश निश्चित है। पर साथ-ही-साथ उन्हें शायद आश्चर्य भी हो रहा था कि औघड़ के इतने तीक्ष्ण प्रहारों को यह कैसे झेल गई।

औघड़ ने आग्नेय दृष्टि से भैरवी की तरफ़ देखा और महाकाल के यज्ञ-कुंड के पास ही दक्षिण दिशा की ओर मुंह कर बैठ गया। दाहिने हाथ की ओर सुरा पात्र था। बैठे-बैठे ही उसने दो-तीन लीटर तीव्र सुरा अपनी हलक के नीचे उतार ली। बाक़ी जो बची थी, उसे अपने सिर पर डालकर पूर्ण श्मशान भैरव बन गया।

भयंकर आवाज़ में औघड़ की उस संकल्प शक्ति को भैरवी ने सुना था। यह तो समय ही बताएगा कि कौन किसका सत्यानाश कर सकता है, परन्तु इतना होने पर भी वह मन के किसी कोने में कांप रही थी। निश्चय ही औघड़ ज़्यादा समर्थ एवं सशक्त है। तन्त्र की कुछ विशेष विधाएं उसे ज्ञात हैं। उसने कई बार भूतात्मा साधना की है। औघड़ ने अपने पास खड़े हुए उस सामान्य रूप-रंग वाले युवक को देखा, जिसके लिए भैरवी ने इतना बड़ा ख़तरा उठाया है। किसी भी दृष्टि से मुझमें कोई विशेषता नहीं थी। सामान्य रूप रंग, मध्यम क़द और साधना के क्षेत्र में बिल्कुल कोरे काग़ज़ की तरह था।

यदि यह हादसा नहीं होता, तो निश्चय ही एक-दो साल में वह महायोगिनी बन जाती। उन अष्ट सिद्धियों को भी प्राप्त कर लेती, जो अन्यतम हैं। जिसके बल पर वह बावन भैरवों को अपनी आंखों में स्थापित कर सकती थी। यह औघड़ उसे सब कुछ सिखा देता, परन्तु अब तो स्थिति बदल गई थी। जो औघड़ उसका रक्षक, पालक और गुरु था, वही अब भयंकर शत्रु बन चुका था और उसका सर्वनाश करने को आतुर था।

मुझको बाद में पता चला कि वह मामूली घराने की लड़की नहीं थी,

अपितु नेपाल के प्रसिद्ध राजघराने और रियासत लोहगढ़ के महाराजा की पुत्री है। काठमांडू के बाद लोहगढ़ ही सर्वाधिक सम्पन्न और बड़ा घराना है, जिसकी धाक पूरे नेपाल में है।

तन्त्र के क्षेत्र में लोहगढ़ विश्व में प्रसिद्ध है। महाराजा हरिसिंह जी तन्त्र के माने हुए अध्येता थे और उन्होंने बंगाल से विशालाक्षा देवी के मन्दिर को अपने तन्त्र के बल के शून्य मार्ग से लाकर लोहगढ़ में स्थापित कर दिया था। आज भी लोहगढ़ के प्रमुख चौराहे पर वह मन्दिर तिरछा ही खड़ा है। संसार के वास्तु शिल्पियों ने उस मन्दिर को देखा है और वे अनुमान नहीं लगा पा रहे हैं कि अस्सी के कोण पर खड़ा यह मन्दिर किस प्रकार से अवस्थित है। एक तरफ़ को झुका हुआ यह विशालाक्षी मन्दिर अपने-आप में पूर्ण चैतन्य और सिद्ध पीठ है। महाराजा हरिसिंह जी विशालाक्षा के अनन्य साधक थे और उन्होंने तन्त्र साधना के बल पर ऐसे कार्य सम्पन्न किए थे, जिनकी तुलना विश्व में अन्यत्र दुर्लभ है।

महाराजा हरिसिंह जी के पुत्र संग्रामसिंह जी जहां एक ओर वीर, रणनीति निपुण और विद्वान थे, वहीं दूसरी ओर तन्त्र के क्षेत्र में भी अन्यतम थे। कहते हैं कि रात-रात-भर वे विशालाक्षी मन्दिर में सिद्ध पीठ पर बैठकर अपने हाथों से विशालाक्षी को आहुतियां देते और वह उन आहुतियों को अपने हाथों में स्वीकार करती। बड़े-बूढ़े आज भी कहते हैं कि जब महाराजा संग्रामसिंह जी मन्दिर में जाते, तो मूर्ति में अद्भुत चैतन्यता आ जाती और ऐसा लगता, जैसे वह बोलने को आतुर हो। कुछ वृद्ध लोगों ने तो यहां तक कहा कि आरती के बाद भोग के समय संग्रामसिंह जी ख़ुद ग्रास विशालाक्षी के मुंह में देते और वह स्वीकार करती।

जीवन के उत्तरार्द्ध में तो संग्रामसिंह जी ने अपने पुत्र हमीरसिंह जी को राज्य सौंपकर पूरी तरह से तन्त्र के क्षेत्र में ही निमग्न हो गए थे। उनके इष्ट बावन भैरव थे और उन्होंने सभी भैरवों को सिद्ध किया था। उनके संकेत पर भैरव नृत्य करते और वे स्वयं उनके साथ ही भैरव हो जाते।

विशालाक्षी मन्दिर के पश्चिम में उन्होंने मुंड-गृह बनाया था। उस साधना-स्थल की दीवारें ईंट-गारे से नहीं, अपितु मानव-मुंडों से निर्मित थीं।

एक मुंड पर दूसरा मुंड और इस प्रकार चारों दीवारों पर मुंडों से तथा आंतों से निर्मित छत थी। द्वार पर भी मानव-मुंडों की श्रेणी स्पष्ट दिखाई देती थी। उस साधना-स्थल के मध्य में उन्होंने बावन भैरव मुंड गाड़कर बावन मुंडी आश्रम स्थापित किया था, जो कि विश्व का सर्वाधिक दुर्लभ और अद्वितीय साधना स्थल है।

आज भी काठमांडू से 140 किलोमीटर दूर अत्यधिक रमणीय प्रकृति और प्रर्वत श्रेणियों के बीच स्थापित लोहगढ़ के मध्य में यह विशालाक्षी मन्दिर और उसके पश्चिम में मुंड ग्रह स्थापित है। उन्होंने अष्ट काली को पूर्णतः सिद्ध किया था और जब रात्रि की नीरवता में अष्टकाली स्त्रोत को सस्वर सुनाते, तो समस्त योगिनियां मुंड-गृह के बाहर आकर नृत्य करने लग जातीं।

वे नित्य प्रातः उठकर श्मशान में जाते और ताज़े मुर्दे की भस्म लाकर विशालाक्षी के मस्तक पर तिलक करते, फिर ताज़े मुर्दे का मांस ही संजोकर विशालाक्षी को भोग लगाते। वास्तव में उन्होंने तन्त्र के क्षेत्र में जो कुछ प्राप्त किया था, वह नेपाल के इतिहास में आज भी सुरक्षित है।

हमीरसिंह जी ने भी उस परम्परा को कायम रखा। बचपन से ही उनकी रुचि तन्त्र के क्षेत्र में थी। राज कार्य सचिवों के और मन्त्रियों के हाथों में था और वे रात-रात-भर साधना की उन ऊंचाइयों को प्राप्त करने का प्रयत्न करते, जो कि अपने-आप में अद्वितीय थीं। वे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने बटुक भैरव, काल भैरव, मुंडी भैरव, रक्तप भैरव, सिद्धि भैरव, कंकाल भैरव, त्रिनेत्र भैरव, घनद भैरव तथा अनन्त भैरव को सिद्ध कर दिखा दिया था कि यदि साधक अपने-आप पर तुल ही जाए, तो इन सभी नौ भैरवों को अपने-आप में समाहित कर सकता है। उन्होंने कई तन्त्र ग्रन्थों की रचना भी की, जो कि नेपाली भाषा में लिखित हैं और आज भी राज पुरोहित मधुसूदन जी के पास सुरक्षित हैं। इन ग्रन्थों में प्रामाणिक साधनाओं की उन विधियों का विवरण-वर्णन है, जो कि संसार की दुर्लभ और गोपनीय साधनाएं कही जाती हैं।

इतना होने पर भी उनके जीवन में राज कार्य में किसी प्रकार की कोई न्यूनता नहीं आई। उच्च राजवर्गीय भी उनसे थर्राते थे। लम्बा-चौड़ा कसा हुआ विशाल शरीर, भव्य और प्रभावपूर्ण चेहरा। दिप-दिप करती हुई रक्तिम

आंखें, दृढ़ स्कन्ध और घुटनों तक छूती हुई भुजाएं इस बात की परिचायक थीं कि हमीरसिंह जी अपने-आप में अद्वितीय सिद्ध पुरुष हैं। उनके भाल पर हर समय सिन्दूर का तिलक लगा रहता और उनके नेत्रों में इतनी प्रखरता थी कि वे त्रिनेत्र भैरव को स्मरण कर जिसे आग्नेय दृष्टि से देख लेते, वह तत्क्षण भस्म होकर शून्य में विलीन हो जाता।

बावन मुंडी आश्रम के बाहर ही वे सात पेड़ उनकी आग्नेय दृष्टि के आज भी गवाह हैं। उन्होंने त्रिनेत्र साधना सम्पन्न कर भूल से ही एक सीध में खड़े उन पेड़ों को देख लिया था और उसी क्षण वे पेड़ जलकर ख़ाक हो गए थे।

दैववशात उनके कोई पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने अपने जीवन में चार विवाह किए, परन्तु उनका अधिकांश समय तो विशालाक्षी साधना और भैरव साधना में ही व्यतीत होता। साधना में वे कभी-कभी तो इतने लीन हो जाते कि उन्हें अपने घर की या रनिवास की याद ही नहीं रहती। एक बार तो वे 90 दिनों तक बावन मुंडी आश्रम में ही बैठे रहे और विशिष्ट साधना सम्पन्न करने के बाद ही बाहर निकले।

चतुर्थ पत्नी से उनके एक पुत्री उत्पन्न हुई थी, जिसका नाम उन्होंने अत्यन्त चाव से मृगाक्षी रखा था। अत्यन्त सुन्दर और हरिण की तरह लम्बी तथा आकर्षक बालिका की आंखों को देखकर ही पिता ने उसे मृगाक्षी नाम से सम्बोधित किया था। जब उन्हें बावन मुंडी आश्रम में सूचना मिली कि रानी ने कन्या को जन्म दिया है, तो वे प्रसन्न हुए थे। उन्होंने कहा था, "मां विशालाक्षी ने मेरे घर बालिका रूप में जन्म लिया है। यह मेरे पुत्र से भी ज़्यादा योग्य बनेगी और मेरी तान्त्रिक साधनाओं को आगे बढ़ाएगी।"

बालिका वास्तव में ही सौभाग्यशालिनी थी। राजगुरु ने उसकी जन्म-कुंडली बनाकर कहा था, "यह राजकुमार के समान ही तेजस्वी, योग्य और अद्वितीय होगी। इसकी जन्म-कुंडली में अत्यन्त ही उच्च और अद्वितीय ग्रह पड़े हैं। इस कुंडली में पूर्ण योग है। या तो यह महान शासिका बनेगी, या उच्च कोटि की यन्त्र साधिका, पर जिस क्षेत्र में भी जाएगी अपने-आप में अजेय और अद्वितीय होगी।"

उसके जन्म से पूर्व दो दिन पहले ही रात्रि को हमीरसिंह जी को स्वप्न में विशालाक्षी ने कहा था, "मैं तुम्हारे घर बालिका रूप में आ रही हूं।" और ठीक ऐसा ही स्वप्न उसी रात को महारानी को भी आया था। जब बालिका का जन्म हुआ, तो बहुत अच्छे शकुन हो रहे थे। बिना किसी प्रसव पीड़ा के ही बालिका ने जन्म ले लिया था।

बालिका का लालन-पालन राजकुल के सिद्धान्तों के अनुरूप ही हुआ था। वह छोटी थी, तब भी वह तन्त्र के मन्त्रों और स्त्रोतों को ध्यान से सुनती। यदि कभी रोती हुई वह चुप ही नहीं होती, तो महाराज उसे यों ही विशालाक्षी स्तवन सुनाते, तो वह तत्क्षण चुप हो जाती और टुकुर-टुकुर अपने पिता को देखने लगती।

जब वह कुछ और बड़ी हुई, तो उसका गोरा रंग और अधिक निखर आया था। पिता अपनी पुत्री को उसी प्रकार से पढ़ाते-लिखाते जिस प्रकार से राजघराने में राजकुमारों को पढ़ाया-लिखाया जाता है। उच्च स्तर के अध्यापक घर पर ही उसे पढ़ाने के लिए आते, जिसमें व्याकरण, दर्शन, भाषा, शास्त्र, पुराण शस्त्रकला आदि की शिक्षा पूर्णता के साथ दी जाती थी। कभी-कभी पिता उसे लेकर बावन मुंडी आश्रम की ओर चले जाते। महारानी हल्का-सा विरोध करतीं कि यह राजकुमारी है, बड़ी होने पर इसे किसी राजघराने में ही जाना होगा, इस प्रकार से इसे तन्त्र क्षेत्र की ओर ले जाना ठीक नहीं, परन्तु बालिका स्वयं मां की आंख बचाकर हठ करती और उस हठ के सामने पिता को परास्त होना पड़ता। ज्यों ही वह पिता के साथ आश्रम में जाती, वह खिल उठती। ऐसा लगता, जैसे वह सही स्थान पर आ गई है।

लगभग बारह-तेरह वर्ष की अवस्था में उसने घुड़सवारी सीख ली थी और पन्द्रह वर्ष की अवस्था तक इसमें निपुणता प्राप्त कर ली थी। अड़ियल से अड़ियल घोड़े को भी वह कुछ ही मिनटों में सीधा कर लेती। प्रजा तो यह देख-देखकर मुग्ध हो जाती कि महाराजा के यहां बालिका ने नहीं, अपितु राजकुमार ने जन्म लिया है।

सत्रह वर्ष की अवस्था में उसका रूप हज़ार-हज़ार गुना फैल गया था। सही कहा जाए, तो पूरे नेपाल में ऐसा रूप और सौन्दर्य देखने को नहीं मिलता।

पिता स्वयं राजकुमारी के सौन्दर्य तथा यौवन को देख रहे थे कि धीरे-धीरे बचपन विदा हो रहा है और राजकुमारी की आंखों में लज्जा, यौवन और मादकता प्रवेश करने लगी है। साथ-ही-साथ वह शस्त्र चालन में भी निपुण हो गई थी। नाज़ुक हाथों में जब वह तलवार पकड़ती और सामने वाले पर रण-कौशल के साथ प्रहार करती, तो लोग दंग रह जाते। इस कोमल कमनीय कोमलांगी के हाथों में इतनी ताक़त और प्रहार क्षमता हो सकती है, इसका विश्वास नहीं होता। उसमें इतनी अधिक फ़ुर्ती थी कि सामने वाला जब तक कुछ निर्णय लेता, तब तक वह पलटकर उस पर वार कर देती।

संगीत का उसे असाधारण ज्ञान था। ऐसा लगता था कि सरस्वती स्वयं उसके कंठ में विराजमान हो। जब वह गाती, तो सुनने वाले सन्न रह जाते। उसके गले में लोच और मिठास के साथ-साथ अद्वितीय प्रभावोत्पादकता थी, जिसकी वजह से सामने वाला सुनते-सुनते सम्मोहित हो जाता। वास्तव में ही मृगाक्षी अपूर्व सुन्दरी, अद्वितीय गायिका, तुरन्त निर्णय लेने वाली राजकुमारी थी, जो कि सभी दृष्टियों से सफल और अपूर्व थी।

पिता हमीरसिंह जी कुछ चिन्तित से रहने लग गए थे। उसके यौवन के उभार और उठते हुए क़द को देखकर विवाह की चिन्ता हो गई थी। पर उन्होंने मृगाक्षी को इतने अधिक लाड़-प्यार से पाला था कि एक क्षण के लिए भी अपनी आंखों से अलग नहीं कर पाते थे। तन्त्र के क्षेत्र में बालिका ने बहुत कुछ सीख लिया था। उन्होंने यह भी अनुमान लगा लिया था कि मृगाक्षी तन्त्र के क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त कर सकेगी, पर इसके साथ उसका विवाह भी तो ज़रूरी है और यदि सामने वाले राजघराने में ऐसा वातावरण नहीं रहा तो क्या होगा? वे सावधानी से नेपाल के सभी राजघरानों को आंक रहे थे कि कहां उनकी बेटी सुखी हो सकती है, परन्तु कुछ निर्णय नहीं कर पा रहे थे।

एक दिन एकान्त में हमीरसिंह जी ने मृगाक्षी को अपने सामने बिठाकर कहा था, "मैं तुम्हारा विवाह बहुत ही ऊंचे घराने में करने की सोच रहा हूं, परन्तु जो घराने मेरी आंखों के सामने हैं, उनमें कोई भी ऐसा दिखाई नहीं देता जो तेरे लायक हो। तेरे पैदा होने से पहले मां विशालाक्षी ने मुझे और महारानी को स्वप्न में बताया था कि वह स्वयं बालिका के रूप में आ रही

हैं और तू सही शब्दों में कुल देवी विशालाक्षी ही है। हमारा घराना तन्त्र के क्षेत्र में विश्व में सिरमौर रहा है, और कुछ विशेष उपलब्धियां हमारे पूर्वजों ने प्राप्त की हैं। तुम्हारा लालन-पालन भी मैंने राजकुमारों की तरह ही किया है। मैं चाहता हूं कि मेरी मृत्यु के बाद भी यह परम्परा समाप्त न हो।" कहते-कहते उस वज्र पुरुष की आंखें भीग गईं।

मृगाक्षी ने अपने पिता की ओर देखा, बोली, "गृहस्थ में मेरी कोई रुचि नहीं है। कीड़े-मकोड़ों की तरह जीवन व्यतीत करना मुझे पसन्द नहीं है। राजघराने के षड्यन्त्रों में मैं उलझना नहीं चाहती। मेरी इच्छा तो तन्त्र के क्षेत्र में कुछ अपूर्व-अद्वितीय करने की है। मैं तन्त्र के उन आयामों को छूना चाहती हूं, जो अभी तक अस्पर्श रहे हैं। आप निश्चिन्त रहें आपकी पुत्री आपके घराने की परम्पराओं को किसी भी दृष्टि से न्यून नहीं रहने देगी।

इसके कुछ ही दिनों बाद महाराजा हमीरसिंह जी का शरीर शान्त हो गया। वे विशालाक्षी मन्दिर में मां के सामने ध्यानस्थ थे और ध्यानस्थ स्थिति में ही मां के चरणों में विसर्जित हो गए। जब लोगों को पता चला, तो वे चकित रह गए। वास्तव में हमीरसिंह जी सही अर्थों में कुल देवी के भक्त थे और उन्होंने अपने प्राण भी उसके चरणों में ही विसर्जित किए।

राजघराने पर अचानक संकट गहरा उठा। राजकुमार था नहीं, अतः महारानी जी ने ही राज-कार्य को संभाला। पर्दे के पीछे रहकर उन्होंने जिस प्रकार से राज्य संचालन किया, वह अपने-आप में अभूतपूर्व था। महाराजा की मृत्यु को पूरा एक वर्ष बीत गया था। यद्यपि इस अवधि में बाहरी राजघरानों के कई षड्यन्त्र अनुभव हुए, कुछ छोटे राजघरानों ने अपने पुत्रों के विवाह के प्रस्ताव भी भेजे, जिससे राजकुमारी के साथ-साथ पूरा राज्य भी शासन के लिए प्राप्त हो सके। दो-तीन ऊंचे घरानों से भी विवाह के प्रस्ताव आए, पर महारानी कुछ निर्णय नहीं कर पा रही थीं। इस पूरी अवधि में वह चुप नहीं बैठीं। अपने विश्वासपात्र मन्त्रियों और सलाहकारों के माध्यम से पूरे राज्य को अपने नियन्त्रण में बनाए रखा और उसके विरुद्ध जो भी षड्यन्त्र हुए उन्हें निरस्त किया।

राजकुमारी के कर्ता-धर्ता, सखा, सलाहकार और मार्गदर्शक तो पिता ही

थे। उनके जाने के बाद मृगाक्षी अपने-आप को बहुत अधिक अकेला महसूस करने लगी थीं, परन्तु फिर भी उसने तान्त्रिक साधनाएं छोड़ी नहीं। अपने पिता और दादा जी द्वारा रचित ग्रन्थों को ध्यान से पढ़ा और उसके अनुसार क्रियाएं करने पर उसे कुछ उपलब्धियां भी प्राप्त हुईं। इससे उसे विश्वास होगा कि वह इस क्षेत्र में बहुत कुछ कर सकती है।

वह सुबह पूजा के समय विशालाक्षी मन्दिर में आ जाती और पूर्ण षोडसोपचार पद्धति से उसकी पूजा करती। कभी-कभी तो उसे ऐसा लगता कि मां विशालाक्षी मुस्कुरा रही है और अपनी गोदी में बिठाने के लिए उसे बुला रही है। कई बार उसे वह मूर्ति जीवन्त अनुभव होती। उसकी पूजा-अर्चना में मृगाक्षी को विशेष आनन्द आता। घंटों वह बैठी रहती, कभी-कभी तो उसके मुंह से अनायास स्तवन निकल जाता –

हं हं हं हंस हंसीस्मित कह-कह चामुक्त घोराट्ट हासा।
खं खं खं खड्ग-हस्ते त्रिभुवन-निलयं कालिका काल-धारी॥
रं रं रं रंग-रंगा प्रमुदित-वदने पिंग-केशी श्मशाने।
यं रं ल तापनीये भ्रकुटि घट घटाटोप-टंकार जापे॥

हं हं हंकार-नादं न-पिशित-मुखी संघिनी साधु-देवी।
ह्रीं ह्रीं कूष्मांड मुंडी वर वर ज्वलिनी पिंग-केशी कृशांगी॥
खं खं खं भूत-नाथे किलि किलि किलिके एहि एहि प्रचंडे।
हुं हुं हुं भूत-नाथे सुर-गण न मिते मातरम्बे नमस्ते॥

मन्दिर के अतिरिक्त जो भी समय बचता उस समय में वह बावन मुंडी आश्रम में जाकर बैठ जाती और कुछ विशिष्ट साधनाओं में रत हो जाती।

एक दिन राजकुमारी मृगाक्षी बावन मुंडी आश्रम के बाहर बैठी हुई थी। उसका ध्यान किसी विशिष्ट साधना के उपक्रम में लगा हुआ था तभी उसके कानों में धनुष की टंकार की तरह शब्द सुनाई दिया, "जय बाबा बटुक नाथ की!"

अचानक उसकी ध्यान तन्द्रा टूटी तो देखा, सामने अत्यन्त तेजस्वी शिव के समान योगी खड़ा है। उसके एक हाथ में खप्पर है, तो दूसरे हाथ में दंड।

नीचे व्याघ्र चर्म लपेटे हुए है और कमर से ऊपर का सारा वक्षस्थल खुला हुआ है।

एक क्षण तो मृगाक्षी चुप रह गई, अचानक ध्यान भंग होने से वह कुछ सोच नहीं पाई। तभी उस औघड़ की आवाज़ सुनाई पड़ी, "मृगाक्षी, तुम जो कुछ सोच रही हो, मैं जानता हूं। तुम मां विशालाक्षी की भक्त हो और भैरव की अनुचरी साधिका। तुम्हारा जीवन तन्त्र के लिए है, तुम्हारी परम्परा उच्च कोटि की तन्त्रात्मक रही है, और तुमने अपने स्वर्गीय पिता को वचन दिया था कि तुम अपने जीवन में इस राजघराने की तन्त्रात्मक परम्परा को आगे बढ़ाओगी।"

मृगाक्षी एक क्षण के लिए ठिठक गई। इसको ये भेद कैसे ज्ञात हुए पिता ने मुझे क्या कहा था और मैंने क्या वचन दिया था, इसे कैसे पता चला। ज़रूर यह या तो कोई भेदिया है, या कोई उच्च तान्त्रिक।

औघड़ ने कहा, "तुम मुझे भेदिया मत समझो, मैं कोई छल करने वाला घटिया आदमी नहीं हूं। भैरव को सेवक हूं और महायोगी बटुकनाथ का शिष्य हूं। तुम्हारे वर्तमान जीवन को और पूर्व जीवन को भी मैं देख रहा हूं। मेरे ऊपर विश्वास करो। तुम्हारे तन्त्र के क्षेत्र में ही पूर्णता प्राप्त करनी है, और जीवन में वह सब-कुछ प्राप्त करना है, जो तुम्हारे पूर्वजों ने प्राप्त किया है।" कहते-कहते औघड़ कपालनाथ ने अपनी जटा को खोलकर निचोड़ा और मृगाक्षी ने देखा कि जटा से कुछ बूंदें ज़मीन पर पड़ीं और उसके साथ ही भैरवगण उपस्थित हो गया।

मृगाक्षी के लिए यह सब-कुछ स्वप्नवत था। उसने दुर्गा सप्तशती में रक्तबीज के बारे में तो पढ़ा था कि जब उसके रक्त की एक बूंद ज़मीन पर गिरती, तो एक नया दैत्य उपस्थित हो जाता, पर आज वह प्रत्यक्ष देख रही है कि इस औघड़ ने अपनी जटा को खोलकर निचोड़ा है, तो एक बूंद पानी की ज़मीन पर गिरते ही भैरवगण साक्षात स्वरूप में उपस्थित हो गया है। भैरवगण पूरे छः फ़ीट का उपस्थित होते ही आज्ञा प्राप्त करने के उद्देश्य से विनीत भाव से एक तरफ़ खड़ा था।

मृगाक्षी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। उसने हिम्मत कर उस

नव उत्पन्न भैरवगण से पूछा, "तू कौन है?"

उसने उत्तर दिया, "कपालनाथ प्रसूत भैरवगण।" फिर कपालनाथ भैरव की तरफ़ हाथ जोड़कर बोला, "क्या आज्ञा है, स्वामी?"

कपालनाथ उससे कुछ बोले नहीं, फिर राजकुमारी की तरफ़ मुख़ातिब होकर बोले, "मृगाक्षी, तुमने जो कुछ सीखा है, वह तन्त्र का बहुत छोटा-सा हिस्सा है, तुम्हारे सामने तो बहुत लम्बा रास्ता है, तुम्हारे पांवों में ताक़त है और जब मेरा साथ है, तो निश्चय ही तुम तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय बन सकोगी।" उसने दाहिने हाथ की मुट्ठी बांधी और मृगाक्षी ने देखा कि भैरवगण लघु से लघुतर होता हुआ कपालनाथ की जटा में समाहित हो गया।

राजकुमारी कुछ निर्णय नहीं ले पा रही थी, वह तो उसके मन में स्पष्ट था कि विवाह नहीं करना है तथा तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीयता, प्राप्त करनी है, पर यह कुछ भी स्पष्ट नहीं था कि उसे जीवन में कौन सिखाएगा, उसका पथ-प्रदर्शक कौन बनेगा, कौन उसे तन्त्र की ऊंचाइयों पर पहुंचाएगा। उसने अपने-आप को पूर्णता के साथ मां विशालाक्षी के चरणों में छोड़ दिया था। मां अपने-आप निर्णय लेगी और समय आने पर अवश्य पथ-प्रदर्शन करेगी।

वह कुछ बोली नहीं, पर उसने अनुमान लगा लिया कि यही औघड़ उसका पथ प्रदर्शक हो सकता है। शायद मां विशालाक्षी ने इसे भेजा हो। इसमें तो कोई दो राय नहीं कि यह साधारण औघड़ नहीं है। तन्त्र के क्षेत्र में कुछ उपलब्धियां इसके पास अवश्य हैं, इसने दो क्षण पहले जो कुछ किया है, वह अपने-आप में अन्यतम है। इसने मेरे मन की बातें जान लीं और यह भी बता दिया कि मैं जीवन में क्या कर सकती हूं।

वह सीधी मां विशालाक्षी के गर्भ-गृह में चली गई तथा उसके चरणों में बैठ गई, बोली, "मां, क्या तुम्हारी यही आज्ञा है। मैं तन्त्र के क्षेत्र में इसके साथ आगे बढ़ जाऊं?" उसने मां के चेहरे की ओर देखा तभी मां के हाथ से एक पुष्प नीचे मृगाक्षी के हाथों में आ गिरा।

मां ने आज्ञा दे दी, पुष्प इसका साक्षी है और उसका निश्चय दृढ़ हो गया। यह औघड़ ही तन्त्र के क्षेत्र में पथ-प्रदर्शक बन सकता है, जीवन-भर

के लिए नहीं, तो कुछ समय तक तो रास्ता दिखा ही सकता है। बाद में तो मेरी कुछ परम्परा और मां विशालाक्षी अपने-आप मेरा पथ-प्रदर्शन करेंगी, मुझे प्रकृति के उन रहस्यों को प्राप्त कर लेना है, जो सर्वथा अज्ञात हैं।

मां के चरणों को भक्ति-भाव से स्पर्श कर वह गर्भ-गृह से बाहर आई। मन्दिर के बाहर उसी स्थान पर वह औघड़ खड़ा था, जहां वह छोड़ आई थी।

औघड़ ने कहा, "मां को पूछ आई? मां ने अवश्य ही अनुमति दी होगी। तुम्हारा यही पथ है। मुझे पराम्बा ने तुझे लेने के लिए भेजा है। जीवन के किसी एक भाग तक मैं अवश्य ही तन्त्र के क्षेत्र में तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करूंगा, यही पराम्बा आद्या शक्ति की आज्ञा है।"

उसे एक क्षण के लिए विचार आया कि मां से अनुमति ले लूं। घर जाकर राजमाता जी को अपने जाने की सूचना तो कम-से-कम दे ही दूं, परन्तु फिर दूसरे ही क्षण विचार आया कि मां ने तो मेरी गोदी में पुष्प देकर संकेत कर ही दिया है, फिर किस मां को पूछना है।

उसने औघड़ की तरफ़ देखा, तो ऐसा लगा, जैसे उसकी आंखों में कोई विशेष आकर्षण हो। इसके पास रहकर ज़रूर कुछ सीखा जा सकता है और फिर जीवन में यदि कुछ प्राप्त करना है, तो कुछ छोड़ना भी पड़ेगा और ख़तरा भी उठाना पड़ेगा।

उसने एक बार फिर औघड़ की तरफ़ देखा, औघड़ ने कहा, "रुको मत मृगाक्षी, यह पृथ्वी और प्रकृति तुम्हें आवाज़ दे रही हैं, यह पथ दोनों हाथ फैलाए तुम्हारे स्वागत के लिए तत्पर है और ये दसों दिशाएं उन्मुक्त भाव से विजय माल पहनाने के लिए आतुर हैं। मैं तुम्हें लेने आया हूं। तुम्हें मेरे साथ चलना चाहिए।" कहते-कहते औघड़ ने आगे क़दम बढ़ा दिए। वह भी यन्त्र चालित-सी उनके पीछे चल पड़ी।

रास्ते-भर औघड़ ने कुछ नहीं कहा, न उसने कहीं पर संयम को शिथिल होने दिया। मृगाक्षी कुछ क्षणों के लिए तो सहमी थी, पर चारों तरफ़ से रात घिर आई थी, परन्तु उसके मन की आशंकाएं निर्मूल निकलीं, जब उसने देखा कि औघड़ उससे काफ़ी दूर जाकर लेटा है।

वह इस औघड़ के साथ गोरखनाथ मन्दिर से आगे इस महा श्मशान में आ पहुंची थी। यही औघड़ का निवास था। यही उसका साधना-स्थल था और यहीं पर उसने कपालमत भैरव की स्थापना कर उसका सिद्धपीठ बनाया था।

महा श्मशान तो तन्त्र का सिद्ध स्थल और भैरव का रम्य स्थल होता है। महाकाली यहीं पर अपना श्रृंगार करती है। तारा यहीं अपने गले में मुंड-माल पहनकर नृत्य करती है और षोडसी अपनी पूर्णता के साथ यहीं विचरण करती हुई प्रतीत होती है। यह स्थान जगत-जननी भुवनेश्वरी का सिद्ध पीठ होता है। भैरव यहीं पर नृत्य कर काली को प्रसन्न करते हैं। छिन्नमस्ता यहीं पर अष्ट नृत्य प्रस्तुत करती है और धूमावती बगला सिद्ध विद्या और मातंगी का यही विहार-स्थल है।

मृगाक्षी ने देखा कि वह स्थान वास्तव में सिद्ध स्थल है। आसपास सैकड़ों कच्चे-पक्के मकान हैं। जिनमें भैरव और भैरवियां साधनारत हैं। जैसा उसने अपने पितृ-गृह में नरमुंडों से निर्मित साधना-भवन देखा था, ठीक वैसा ही भवन यहां पर विद्यमान है। श्मशान के मध्य में कई यज्ञ-कुंड बने हैं, जिन पर बैठे हुए साधक और भैरव साधनारत हैं। कहीं पर चसक पात्र से आहुतियां दी जा रही हैं, तो कहीं मानव-रक्त से मां काली का स्तवन किया जा रहा है। अलग-अलग यज्ञ-कुंडों पर अलग-अलग साधनाएं सम्पन्न हो रही हैं।

उसे यह सब देखकर अच्छा-सा लगा। उसने देखा कि उन सभी भैरव-भैरवियों के हृदय में औघड़ के प्रति श्रद्धा-भाव है। वह इन सबका अग्रणी और गुरु है। उसका चरित्र और विचार अत्यधिक उदात्त है। साधना के क्षेत्र में यह अद्‌भुत है। तन्त्र में इसने नई विशेषताएं प्राप्त की हैं तथा श्मशान जागरण कर अष्टाधार भैरव, व्योमकेस भैरव तथा भूतनाथ भैरव को प्रसन्न किया है। उसने देखा कि अधिकतर साधक साधनाओं में निरन्तर अग्रसर हैं और सभी अपने-आप में मगन, व्यस्त और साधनारत हैं।

नई भैरवी को अपने मध्य पाकर उस श्मशान में स्थित भैरव-गणों को आनन्द और भैरवियों को ईर्ष्या हुई। निश्चय ही वह आगन्तुका अद्वितीय सुन्दरी और सम्मोहक व्यक्तित्व की धनी थी। इस बार गुरु कपालनाथ औघड़ के साथ जों भैरवी आई है, उसकी आंखों में एक विशेष चमक है, ऐसा उन सभी ने

एक क्षण में ही अनुमान लगा लिया।

औघड़ कपालनाथ ने मृगाक्षी को मुंड-निर्मित कक्ष दिया, जिसमें बैठकर वह साधना सम्पन्न कर सके। उसने देखा कि उस मानव-मुंडों से निर्मित कक्ष के अन्दर भी बन्दनवार की तरह नरमुंड लटके हुए थे। कक्ष के अन्दर ही सामने रक्तजिह्वा की मूर्ति स्थापित थी, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे नित्य मानव-रक्त का पान कराना आवश्यक होता है।

उसके हृदय में तन्त्र के प्रति तीव्र भावना थी। उसे बार-बार अपने पिता के शब्द याद हो जाते कि मृगाक्षी तुम्हें जीवन में तन्त्र के क्षेत्र में बहुत कुछ करना है और हमारे घराने की परम्परा को जीवित ही नहीं बनाए रखना है, अपितु आगे बढ़ाना है।

उसने रक्तजिह्वा को प्रणाम किया और सामने सिद्धासन पर बैठ गई। बोली, "मां, मैं तुम्हारी पुत्री हूं। तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीयता प्राप्त करना चाहती हूं। सर्वथा बीहड़ पथ पर अपने पांव आगे बढ़ा दिए हैं। अब पूरी लाज तेरे हाथ में है।" मृगाक्षी ने अपना सिर मां रक्तजिह्वा के चरणों पर टिका दिया।

उसने धीरे-धीरे उस जीवन में अपने-आप को ढाल लिया। बहुत ही कम सोती। रात्रि तो तन्त्र साधना के लिए दिव्य-युग्म होता है। महाकाल की महानिशा में ही तन्त्र की पूर्णता पाई जा सकती है। उसने देखा कि प्रधान औघड़ कपालनाथ उसकी ओर स्वतः आकर्षित है। यह आकर्षण देह का भी हो सकता है और साधना का भी। पर इस बात का उसने निश्चय कर लिया था कि इस देह को सभी दृष्टियों से पवित्र बनाए रखूंगी। उसे कपालनाथ के शब्द याद हो आए कि पराम्बा की आज्ञा से ही मैं तुम्हें लेने आया हूं और जीवन के एक भाग तक मैं अवश्य ही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करूंगा।

इसका तात्पर्य यह है कि जीवन का दूसरा भाग अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, जिसमें मेरे वास्तविक गुरु प्राप्त हो सकेंगे, जिनसे मैं पूर्णदीक्षा प्राप्त कर सकूंगी।

धीरे-धीरे प्रधान औघड़ ने तन्त्र की कुछ कठिन क्रियाओं को समझाना आरम्भ किया। उसने अनुभव किया कि यह शरीर से ही सुन्दर नहीं है, अपितु

मन से भी उज्ज्वल और दिव्य है। तन्त्र के प्रति इसके मन में अदम्य लालसा है। यह सब-कुछ सीख लेना चाहती है। जल्दी-से-जल्दी सब-कुछ प्राप्त कर लेना चाहती है।

धीरे-धीरे मृगाक्षी अन्य भैरवियों की अपेक्षा तन्त्र के क्षेत्र में तेज़ी के साथ आगे बढ़ने लगी। उसने उन क्रियाओं को भली प्रकार से सम्पन्न कर लिया, जो कठिन और अगम्य मानी जाती हैं। उसने खड्गमाल सिद्धि प्राप्त की, कुंडलिनी जाग्रत कर जिह्वा के द्वारा कपाल को स्पर्श कर अमृतीकरण क्रिया को सिद्ध किया। काम्दा और गण श्रेष्ठ साधनाओं को सम्पन्न किया, श्मशान जागरण, भूत सिद्धि की कपालिनी क्रिया सम्पन्न की, सुलिनी सिद्ध की और उन क्षेत्रों में पहुंची, जो कठिन साधनाएं होती हैं।

औघड़ ज्यों-ज्यों उसे समझाता जाता, त्यों-त्यों उसकी प्यास बढ़ती जाती, अन्य भैरव-भैरवियां जहां सारभूत साधना तक ही पहुंचे थे, वहीं यह मृगाक्षी मात्र दो वर्षों में ही भूत भावन, सिद्धि सेवित, कालशमन, धूम्रलोचन, योगिनी-सिद्धि तथा कपाल-सिद्धि सम्पन्न कर भैरव को प्रसन्न कर लिया था। उसने अपने हाथों से भैरव को महाप्रसाद समर्पित किया था और भैरव ने उसे स्वीकार किया था। इतने कम समय में ऐसी स्थिति देखकर प्रधान औघड़ कपालनाथ ने कहा था, "तुम निश्चय ही तन्त्र के क्षेत्र में श्रेष्ठता प्राप्त करोगी, ऐसा मुझे भरोसा है।"

महा निशा में जब अन्य भैरव-भैरवियां निद्रा में निमग्न होतीं, तब मृगाक्षी शुद्ध व्याघ्र-चर्म पहने हुए गरुण प्रयोग सम्पन्न कर रही होती। जब अन्य साधक-साधिकाएं किलोल कर रहे होते, तब वह एकान्त में भद्रकाली हृदयस्थ कर रही होती। जब अन्य योगी और योगिनियां वार्तालाप में मग्न होते, तब वह बड़वानल को अपने-आप में पचा रही होती। उसने अपने प्रत्येक क्षण को तन्त्र के क्षेत्र में समर्पित कर दिया था। ऐसी एकनिष्ठ साधिका और योगिनी पाकर औघड़ अपने-आप को सन्तुष्ट अनुभव करता।

प्रधान औघड़ कपालनाथ के हृदय में भी उसके सौन्दर्य और यौवन के प्रति अवश्य ही कोमल भाव था। जब भी वह साधना में बैठता, तो मृगाक्षी का स्मरण हो आता, तो उसकी आंखों के सामने समुद्र की तरह उफनता हुआ

उसका यौवन लहरा उठता और वह उसको देखने के लिए बेचैन हो उठता। जब भी वह कोई महत्त्वपूर्ण क्रिया सम्पन्न कर रहा होता, तभी उसकी बड़ी-बड़ी हिरणी-सी आंखें उसे बेचैन कर डालतीं और वह उठकर उस मुंड-कक्ष में जा पहुंचता, जहां भैरवी मृगाक्षी साधना कर रही होती। वह उसके पास थोड़ा-सा हटकर बैठ जाता और उस ध्यानस्थ शिष्या को अपलक देखता रहता।

यही कोमल भाव उसके व्यक्तित्व पर छा गया था। उसकी इच्छा थी कि मैं इस भैरवी को अद्वितीय बना दूं। मेरे बाद इस सिद्ध पीठ की वह संचालिका बने और इन सभी भैरव-भैरवियों पर शासन करे। इसलिए वह उन गुप्त क्रियाओं और विद्याओं को भी सिखाने लगा, जो अपने-आप में अद्वितीय होती हैं। यहां तक कि उसने कृत्या प्रयोग भी सिद्ध करा दिया। जिससे महा प्रलय की स्थिति लाई जा सकती है।

पर आज अचानक सब-कुछ बदल गया। ये सारी घटनाएं वहां खड़ी भैरवी की आंखों के सामने घूम गईं। उसने देखा कि क्रोध से आग-भभूका बना हुआ औघड़ कपालनाथ यज्ञ-कुंड के सामने सिद्ध पीठ पर बैठा गया है, पात्र में से अधिकतर सुरा महाकाल को समर्पित कर चुका है और शेष सुरा अपने सिर पर डालकर भैरव बन चुका है। निश्चय ही अब यह संक्षोमिणी क्रिया सम्पन्न करेगा और यदि इसने यह प्रयोग सम्पन्न कर लिया तो निश्चय ही मेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े होकर शून्य में विलीन हो जाएंगे और सारा रक्त महाकाल के खप्पर में भरकर उसे समर्पित कर दिया जाएगा।

वह खुद भी समझ नहीं पा रही थी कि यह सब-कुछ क्यों और कैसे हो गया? जिसने उसे इतना सब-कुछ सिखाया, तन्त्र की गूढ़ क्रियाएं सिद्ध कराईं, उसके सामने ही वह तनकर खड़ी हो गई, एक प्रकार से वह शत्रुवत व्यवहार कर बैठी। इस मामूली से युवक को बचाने में उसने जीवन का एक बहुत बड़ा दांव समय की शिला पर खेल दिया है और जो भी परिणाम सामने आएगा, वह अपने-आप में विनाश से कम नहीं होगा।

उसने एक क्षण के लिए मेरी ओर देखा, मैं उससे दो क़दम दूर खड़ा हुआ औघड़ की क्रियाओं को देख रहा था। उसके नथुनों से क्रोध की लपटें निकल रही थीं। उसकी आंखों में महाविनाश के कण विद्यमान थे और यह

मेरी प्राण-रक्षिका भैरवी का सत्यानाश करने के लिए उतावला है। भैरवी ने दूसरे ही क्षण मुझसे नज़रें हटाकर औघड़ की तरफ़ देखा, वह एकाग्र चित्त वामचारी क्रिया में संलग्न था। उसके सामने न यज्ञ-कुंड था, न भैरवी और न मैं। उसके सामने तो केवल संक्षोमिणी क्रिया थी और भैरवी का विनाश।

तभी भैरवी दो क़दम आगे बढ़ी और अपने दाहिने पैर की ठोकर से चसक पात्र हवा में उछाल दिया। दूर खड़े भैरव-भैरवियां, योगी और योगिनियां सब-कुछ देख रहे थे। वे कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि क्या होगा। पर सोचते थे कि अगले कुछ ही क्षणों में यहां महाकाल का तांडव अवश्य ही प्रस्तुत होगा और उसमें सब-कुछ समाप्त हो जाएगा।

भैरवी ने पात्र को ज्योंही ठोकर मारी कि औघड़ की त्योरियां चढ़ गईं। इस छोकरी को यदि नहीं रोका गया, तो वह बहुत कुछ कर बैठेगी। यदि यह इसी प्रकार संक्षोमिणी क्रिया में व्याघात उपस्थित करती रहेगी, तो निश्चय ही उसकी एकाग्रता समाप्त होगी और जिस प्रकार से वह इस क्रिया को सम्पन्न करना चाहता है, उस प्रकार से सम्पन्न नहीं हो सकेगी।

तभी भैरवी दो क़दम और आगे बढ़ी और सामने रखे हुए पूजा-पात्र और चशक-पात्र उठाकर यज्ञ-कुंड में डाल दिए। उसने पास ही मानव-रक्त से भरा हुआ खप्पर ज़मीन पर उंडेल दिया और पैर की ठोकर से उस खप्पर को दूर हवा में उछाल दिया।

वह किसी-न-किसी प्रकार से औघड़ को क्रोधित करना चाहती थी। तन्त्र की यह मान्यता है कि विरोधी को क्रोधित कर उसे परास्त कर देना चाहिए, क्योंकि क्रोध के अतिरेक में वह जो कुछ बोलेगा, जो कुछ करेगा वह गोपनीय नहीं रह सकेगा और जब वह स्पष्ट हो जाएगा, तो सामने वाला उसकी काट तुरन्त मन में सोच लेगा और कार्यान्वित कर देगा।

औघड़ यह सब-कुछ समझ रहा था, इसलिए वह यथासम्भव अपने-आप को शान्त बनाए रखने का प्रयत्न कर रहा था। वह चाहता था कि विघ्न उपस्थित होने से पूर्व ही संक्षोमिणी क्रिया सम्पन्न हो जाए और मैं इसको बता दूं कि इसकी औकात क्या है।

भैरवी यहीं तक नहीं रुकी, अपितु उसने यज्ञ-कुंड के दक्षिण पार्श्व को ही लोहे की नुकीली कील से खंडित कर दिया। यह दक्षिण पार्श्व महाकाल का आह्वान होता है और इसी तरफ़ से काल से सम्बन्धित आहुतियां समर्पित की जाती हैं।

अब औघड़ अपने आपे में नहीं रहा और वह क्रोध से हुंकार भरता हुआ उठ खड़ा हुआ। उसने दोनों हाथ हवा में लहराए और 'मालय मालय क्षोमिणी क्षोमिणी हुं फट्' कहता हुआ अपने हाथों से सरसों, काली मिर्च और लौंग के कुछ दाने लेकर अपनी आंखों के सामने मुट्ठी खोलकर आगे मन्त्र बुदबुदाने लगा। इससे पहले ही भैरवी ने भी अपनी दाहिनी मुट्ठी में लौंग के कुछ दाने लिये और संक्षिप्त-सा मन्त्र उच्चारण करते हुए यज्ञ-कुंड में डाल दिए।

उन दानों का यज्ञ-कुंड में गिरना था कि आग की लपट तीव्र हो उठी, परन्तु उससे पहले ही औघड़ ने बायां हाथ आगे की ओर बढ़ाकर अग्नि को शान्त किया। ऐसा लगा, जैसे यज्ञ-कुंड की अग्नि औघड़ के इशारे पर प्रज्वलित हो रही हो। अपना वार ख़ाली होते देखकर भैरवी यज्ञ-कुंड के दक्षिण पार्श्व की ओर आसन पर बैठ गई तथा हाथ में महीदल पात्र लेकर उसमें से सफ़ेद-सफ़ेद से दाने निकाले और अपने सामने पंचकोण बना दिया। उन पंचकोणों में उसने पंच भैरव का स्थापन किया और मध्य में कंकालधारी भैरव को स्थापित करने जा रही थी कि औघड़ अपने स्थान से उठकर खड़ा हुआ और अपनी दोनों मुट्ठियों में रखी हुई लौंग ज़ोर से हुंकार भरकर यज्ञ-कुंड में डाल दी। लौंग, काली मिर्च और सरसों का यज्ञ-कुंड में गिरना था कि जैसे पूरा बड़वानल अग्नि-कुंड में धधक उठा। भैरवी को जैसे किसी ने उछालकर आठ-दस फ़ीट दूर फेंक दिया हो। आग की लपटें इतनी ऊंची उठीं कि जैसे आकाश को ही लील जाएंगी। उस समय कुछ दिखाई नहीं दे रहा था। चारों तरफ़ अजीब-सी गड़गड़ाहट और ध्वनियां सुनाई दे रही थीं। आगे की ओर पहाड़ से कुछ पत्थर लुढ़कने शुरू हो गए थे और पवन तेज़ी के साथ प्रवाहित होने लग गया था। प्रकृति में अचानक भूकम्प-सा आ गया था। ऐसा दृश्य, जो पहले नहीं देखा गया हो, आंखों के सामने साकार हो रहा था।

मैं वहीं पर खड़ा-खड़ा यह सब-कुछ देख रहा था। मेरे बस की कोई बात नहीं थी। मैं चाहते हुए भी कुछ कर पा नहीं रहा था, पर उस क्षण मैं

तुरन्त उस ओर लपका, जहां भैरवी छिटककर गिर गई थी। मैंने तुरन्त उसे उठाने के लिए सहारा दिया, तब तक वह अपने पैरों पर खड़ी हो गई थी। उसकी कुहनियां छिल गई थीं, घुटनों और पैरों पर भी खरोंच स्पष्ट दिखाई दे रही थीं। सिर के बाल खुलकर फैल गए थे और क्रोध के अतिरेक में वह सामने वाले दृश्य को देख रही थी।

तभी औघड़ की हुंकार सुनाई दी, "संभल-संभल, अब मैं जो कुछ करूंगा, वह तेरी मृत्यु ही होगी।" फिर मुझे सम्बोधित करते हुए बोला, "या तो इस कुतिया को लेकर कहीं भाग जा, नहीं तो इसके साथ मैं तुझे भी बरबाद कर दूंगा।"

तब तक पहाड़ों से पत्थर तेज़ी के साथ लुढ़कने लगे थे और वायु की गति काफ़ी तीव्र हो गई थी। कुछ ही क्षणों में छोटे-छोटे पेड़ जड़ सहित उखड़कर गिरने लगे। अब कुछ ही समय में यज्ञ-कुंड की लपटें निश्चय ही इस जंगल में आग लगा देंगी और चारों ओर प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित हो जाएगा। पत्थर लुढ़ककर सारी झोंपड़ियां और मकानों को तोड़ देंगे। पवन की तीव्र गति होने से कोई भी संभल नहीं पाएगा और इन सबमें भैरवी और यह सामने खड़ा हुआ युवक तो समाप्त होगा ही, साथ ही अन्य भैरव-भैरवियां भी समाप्त हो जाएंगी।

भैरवी शायद सोच रही थी कि मेरी तो इससे सीधी लड़ाई है, पर इस लड़ाई में इन छोटे-मोटे भैरव-भैरवियों का क्या दोष! मेरी वजह से इनका सर्वनाश हो, यह उचित नहीं। औघड़ तो अब अपने पर तुल गया है और क्रोध के अतिरेक में इसे कुछ होश नहीं रहा है। वह जो कुछ करने जा रहा है, उसमें इसका स्वयं का भी तो सर्वनाश निश्चित है। तब यहां श्मशान ही नहीं रहेगा, तब इसका स्वयं का अस्तित्व कहां रह जाएगा।

तुरन्त भैरवी ने अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठिका अंगुली में छोटा-सा घाव किया और उसमें से निकलती हुई रक्त की लाल बूंदों से महाकाल को सन्तुष्ट किया। उन बूंदों से भैरव को भोग दिया। क्षेत्रपाल मन्त्र के साथ ही कपाल माति की ओर हवन सामग्री में से सामग्री निकालकर कुछ विशेष मन्त्रों से आहुतियां देनी प्रारम्भ कीं।

मैंने देखा कि वातावरण साफ़ होता जा रहा है। पहाड़ों से पत्थर लुढ़कने बन्द हो गए थे। पृथ्वी का कम्पन, आकाश की गड़गड़ाहट और पवन का वेग स्वतः ही शान्त होता जा रहा था।

यज्ञ-कुंड के एक ओर औघड़ खड़ा था दूसरी ओर भैरवी तनकर खड़ी थी और मैं पास में ही खड़ा यह सब दृश्य देख रहा था। मैंने देखा कि औघड़ ने अपनी लम्बी-लम्बी जटाएं खोलकर बिखेर ली हैं और चसक पात्र में से सात अंजुरी भरकर सुरापान किया। तत्पश्चात हाथ में ही सुरा लेकर मारण संकल्प किया और जटा के मध्य में ब्रह्म शिखा ग्रन्थी को बांधकर पास रखी हुई लकड़ियां यज्ञ-कुंड में डाल दीं।

भैरवी समझ गई कि अब मृत्यु निश्चित है। इसने अपनी जटाएं खोल दी हैं, यह इस बात का परिचायक है कि अब यह मारण क्रिया सम्पन्न करेगा और अभिचार क्रिया के साथ संक्षोमिणी कृत्य सम्पन्न कर सकता है। हो सकता है, यह कृत्य का प्रयोग कर दे।

पर जो कुछ करेगा, देखा जाएगा जब मरना ही है, तो बहादुरी के साथ जूझती हुई मरूंगी। कायरता के साथ पलायन नहीं करूंगी। उसने अपने पिता को स्मरण किया, सीधा ध्यान विशालाक्षी के चरणों में एकाग्र किया और मुंडी पीठ आश्रम को प्रणाम कर अपने छितरे हुए लम्बे काले बालों में अंगुलियां फेरीं। पास ही रखे सुरा पात्र में से उसने मां भैरवी-संहार प्रयोग प्रारम्भ करने का निश्चय कर लिया। यदि एक तरफ़ कृत्या है तो दूसरी तरफ़ महाभैरव प्रयोग।

औघड़ बिना किसी तरफ़ ध्यान दिए अपने कार्य में संलग्न था, लकड़ियां डालने से यज्ञ-कुंड की अग्नि और ज़्यादा बढ़ गई थी। उसने शून्य में हाथ घुमाकर मानव-रक्त-पात्र प्राप्त किया, फिर उसने शूलपाणि को आवाज़ दी। शूलपाणि औघड़ का प्रिय शिष्य और दाहिना हाथ था।

शूलपाणि उपस्थित हुआ, तो संकेत से औघड़ ने कुछ कहा, शूलपाणि तुरन्त ताज़े मुर्दे की भस्म लेकर आ गया। औघड़ ने उस भस्म को अपने आसन के नीचे बिछा दिया और उस पर बैठ गया। शेष बची हुई भस्म से अपने शरीर के सोलह स्थानों पर तिलक किए तथा भस्म लगा दी। इससे उसका

रूप विकराल भैरव-सा हो गया था। उसकी आंखों में पैशाचिकता स्पष्ट दिखाई दे रही थी।

औघड़ ने शूलपाणि को वहीं बैठने के लिए कह दिया और शून्य में से ही एक विशेष पात्र में मानव-मांस प्राप्त किया। मैं देख रहा था कि एक बड़े से पात्र में मांस की बोटियां काटी हुई रखी थीं। जिसमें से अभी भी थोड़ा-थोड़ा रक्त टपक रहा था। हो सकता है, यह मानव का ही मांस हो। औघड़ ने व्योमचारी क्रिया सिद्ध कर रखी थी और शून्य में से पदार्थ प्राप्त कर सकता था। विशेष प्रेत और प्रेतनियां उनके इस कार्य में सहायक थीं, जो अदृश्य रहकर बराबर कार्य-सम्पन्न कर रही थीं।

भैरवी यह सब-कुछ देख रही थी और समझ रही थी। उसके पास अब जो भी प्रयोग है, उसका अन्तिम क्षणों में दांव पर लगा देना है या तो यह भैरव भाग जाएगा अथवा इसकी मृत्यु निश्चित है।

औघड़ ने गुरु का स्मरण कर आसन बद्ध किया फिर दिग्बन्ध कर भूतापसारण क्रिया सम्पन्न की और तुरन्त बाद भैरव को प्रणाम किया। महाकाय तीक्ष्णदंष्ट्र भैरव को आहुति समर्पित करते हुए उच्चारण किया—

यो भूतानामित्यस्य् कौण्डिन्य ऋषिरनुष्टुपछन्दो नारायणो देवता
भैरव नमस्कारे विनियोगः।
यो भूतानामधिपतिर्युर्यस्मिल्लोका अधिश्रिताः।
य ईशे महतो महांस्तेन गृहहृणामि त्वामहम्मीय गृहृणामि त्वामहम्।
ओम तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय, कल्पान्तदहनीपम।
भैरवाय नमस्तुश्य नुज्ञां दातुमर्हसि ॥

निश्चय ही भैरव को स्थापित कर यह कृत्या प्रयोग को ही सम्पन्न करने जा रहा है, भैरवी ने सोच लिया कि यह विराट कृत्या अत्यधिक तीक्ष्ण और संहार करने वाली है, इसकी काट है ही नहीं, कृत्या का सामना कृत्या से ही हो सकता है, परन्तु कुछ तो किया ही जाना चाहिए।

तभी औघड़ ने प्राण शक्ति का आह्वान उच्चारण कर लिया—

रक्ताम्भौधिस्थिपोतोल्ससदरुणसरोजाधिरूढ़ा कराब्वैः,
पाशं कोदण्डभिक्षुद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पंचबावाणान्।
बिभ्राणासृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाड्या
देवी बालार्कगर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः ॥

प्राण शक्ति क्रिया तभी सम्भव की जाती है, जब अपने प्राणों की रक्षा का विधान पूर्ण कर उसको सुरक्षित किया जाता है, जिससे कैसी भी परिस्थिति में अपने प्राणों पर कोई विशेष व्याघात न पहुंचे। इससे ख़तरा बहुत कम हो जाता है।

प्राण शक्ति आह्वान के बाद भैरव का संहार क्रम प्रारम्भ किया और प्रत्येक आह्वान के साथ मांस-पिंड समर्पित किया जाने लगा —

अभीरुभैरवनाथो भूतपो योगिनी पतिः।
शूलपाणि खड्गपाणिः कंकाली धूम्रलोचनः।
त्रिनेत्रो बहुनेत्रश्च तथा पिंगललोचनः।
कंकालः कालशमनः कलाकाष्ठातनुः कविः ॥
रक्पतः पानपः सिद्धः सिद्धिः सिद्धसेवितः ॥
श्मशानवासी मांसाशीर्खपराशी स्मरान्तकः ॥

औघड़ बोलता जा रहा था और मांस की बोटियां काट-काटकर यज्ञ में समर्पित करता जा रहा था। सुरा और मांस की मिली-जुली गन्ध से वातावरण कुछ अजीब-सा बन रहा था और चड़-चड़ की ध्वनि स्पष्ट सुनाई दे रही थी।

इधर योगिनी का पूजन सम्पन्न कर भैरवी ने छिन्नमस्ता का आह्वान किया और अपने सामने सप्तकोणात्मक व्यामूह रचकर उसके मध्य में भूतनाथ को स्थापित किया तत्पश्चात् सामने मानव-रक्त से स्थान धोकर उस पर छिन्नमस्ता को प्रत्यक्ष आबद्ध क्रिया सम्पन्न की। भैरवी के होंठों से निसृत था —

प्रत्यालीढ़पदां सदैव दधतीन्छिन्न शिरर्क्तृका।
न्दिगवस्त्रां स्वकबन्धशोणितसुधाधाराम्पिबन्तीम्मुदा।

नागाबद्धाशिरोमणिन्त्रिनयनां हृद्युत्पलालंकृतां
रत्यासवत्तमनांभवोपरिदृढ़ान्ध्यायेन्जवासन्निमाम् ॥

छिन्नमस्ता को आबद्ध कर डाकिनी भोक्तुम् रक्तप्रिया प्रलया तापसी कबन्धा और अष्टभुति को स्थापित किया तथा प्रत्येक को मांसपिंड समर्पित करते हुए मुंडमाला तथा दिगम्बरा का आह्वान किया।

दोनों तरफ़ विशेष क्रियाएं सम्पन्न हो रही थीं। दोनों ही शून्य से मानव-रक्त-पात्र और मानव-मांस खंड प्राप्त कर रहे थे। अग्नि को समर्पित कर रहे थे और तापसी क्रिया में संलग्न थे।

औघड़ बिना इधर-उधर देखे कुछ विशेष क्रियाओं में लीन हो गया था। भैरवी की एक नज़र अपनी क्रियाओं पर थी, तो दूसरी नज़र औघड़ के कार्यों पर। वह इस बात को समझ गई कि औघड़ कृत्या प्रयोग कर रहा है, पर चौसठ कृत्यों में से किस कृत्या को उपस्थित करेगा और कैसी स्थिति बनाएगा, यह स्पष्ट नहीं हो रहा था।

अब तक औघड़ कुछ वामचारी क्रियाएं सम्पन्न करने लग गया था। उसने पास में पड़ी हुई छुरी से बाएं हाथ की कनिष्ठिका में तेज़ धार से चीरा लगा दिया था और उनमें से रक्त यज्ञ-कुंड में समर्पित करने लग गया था। वह संहारिणी कृत्या को उपस्थित करना चाहता था। उसने निश्चय कर लिया था कि इस भैरवी के शरीर के एक-एक टुकड़े को हवा में उछाल देना है।

पर इसके लिए क्षेत्रपाल और भैरव दोनों को परस्पर संहार क्रम में उपस्थित करना होगा। दोनों का संहार क्रम ही कृत्या का प्रारम्भ होगा और इस संहार क्रम के प्रत्येक चरण पर अपने स्वयं के रक्त की आहुतियां देनी होंगी। औघड़ ने शायद ऐसा ही निर्णय किया था और उसे क्रियान्वित कर रहा था। वह क्षेत्रपाल भैरव के विशेष अर्चनाद्ध को उच्चरित कर रहा था और प्रत्येक अर्चनाद्ध के साथ स्वररक्त बूंद समर्पित करता जा रहा था —

यं यं यं यक्षरूपं दश दिशिवदनं भूमिकम्पायमानं,
सं सं संहारमूर्ति शुभमुकुटजटाशेखरं चन्द्रबिम्बम्।
दं दं दं दीर्घकार्य विकृतनखमुखं चौर्ध्वरोमं करालं,

पं पं पं पापनाशं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्र पालम् ॥

रं रं रं रक्तवर्ण कटकटिततनुं तीक्ष्णदंष्ट्राविशालं
घं घं घं घोरघोषं घघघघघटितं घर्घराघोरनादम्।
कं कं कं कालरूपं घगघगघगितं ज्वालितं कामदेहं,
दं दं दं दिव्यदेहं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

औघड़ बिना किसी की तरफ़ ध्यान दिए बराबर भैरव क्षेत्रपाल के बीज युक्त उच्चारण के साथ प्रत्येक बीच में स्वरक्त समर्पित कर रहा था और आदि तथा अन्त में मांस के टुकड़े समर्पित करता हुआ कृत्या आह्वान के लिए पथ प्रशस्त कर रहा था —

लं लं लं लम्बदन्तं लललललुलितं दीर्घजिह्वं करालं,
धूं धूं धूं धूम्रवर्ण स्फुटविकृतमुखं मासुरं भीमरूपम्।
रूं रूं रूं रुण्डमालं रुधिरभयमुखं ताम्रनेत्रं विशालं,
नं नं नं नग्नरूपं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

वं वं वं जंवायुवेगं प्रलुयपरिमितं ब्रह्मरूपं स्वरूपं
खं खं खं खड्गहस्तं त्रिभुवननिलयं भास्करं भीमरूपम्।
चं चं चं चालयन्तं चलचलचलितं चालितं भूतक चक्रं।
मं मं मं मायकायं प्रणमत सततं भैरवं क्षेत्रपालम् ॥

भैरवी पिछड़ती जा रही थी। उसकी आंखों में एक क्षण के लिए भय का संचार हुआ, परन्तु दूसरे ही क्षण वह संभल गई। उसने सोच लिया कि कृत्या प्रकट होते ही जो कुछ होगा, उससे मैंने अपने-आप को यथासम्भव तो आबद्ध कर ही लिया है, परन्तु लड़ाई रक्षात्मक नहीं, अपितु प्रहारात्मक होने की ज़रूरत है। जब तक इस औघड़ पर प्रहार नहीं होगा, तब तक वह कृत्या प्रकट करने के निकट तक पहुंच जाएगा और इस प्रहार के लिए छिन्नमस्ता से पूर्व प्रत्यंगिरा को प्रकट कर देना आवश्यक है।

यदि प्रत्यंगिरा स्पष्ट या प्रकट हो जाती है, तो सामने वाले शत्रु का नाश तो निश्चित है, पर इसके लिए आवश्यकता है, पहले प्रहार करने की। यदि

उसने अपने-आप को रक्षां आबद्ध कर लिया, तो प्रत्यंगिरा का प्रहार उसी भीषणता के साथ होगा, तो अवश्य, परन्तु उतनी क्षमता के साथ प्रहार शायद न हो पाए।

छिन्नमस्ता के तुरन्त बाद भैरवी के पास पड़ी छुरी से अपनी जंघा से थोड़ा-सा मांस निकाला और उसके टुकड़े-टुकड़े कर सामने रख दिए। मां विशालाक्षा का स्मरण कर उसने पास पड़े हुए नरमुंड को स्थापित किया और उस पर मुष्टिका प्रहार कर सिन्दूर से तिलक किया। स्वरक्त समर्पित किया, स्वमांस का प्रसाद दिया और प्रत्यंगिरा के उच्चारण के साथ-साथ रक्त एवं मांस की आहुतियां समर्पित करनी प्रारम्भ कर दीं —

ओऽम् नमः सहस्र-सूर्येक्षणाय श्रीकण्ठानादि-रूपाय पुरुषाय पुरु-हूताय ऐं महासुखाय व्यापिने महेश्वराय जगत्-सृष्टि-कारिणे ईशानाय सर्वव्यापिने महा-घोराति-घोराय ओऽम् ओऽम् ओऽम् प्रभावं दर्शय दर्शय। ओऽम् ओऽम् ओऽम् हिल हिल, ओऽम् ओऽम् ओऽम् विद्युज्जिह्वे बन्ध बन्ध, मथ मथ, प्रमथ प्रमथ, विध्वंसय विध्वंसय, ग्रस ग्रस, पिव पिव, नाशय नाशय, त्रासय त्रासय, विदारय विदारय, मम शत्रुन खाहि खाहि, मारय मारय, मां सपरिवारं रक्ष रक्ष करि कुम्भस्तनि सर्वोप्रदवैभ्यः। ओऽम् महा-मेघौघ राशि-सम्वर्तक-विद्युदन्त-कपर्दिनि दिव्य-कनकाम्भोरुहविकच माला-धारिणि, परमेश्वरि, प्रिय। छिन्धि 2, विद्राक्य 2, देवि! पिशाच नागासुरगरुड़-किन्नर-विद्या-घर-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-लोकपालान् स्तम्भय स्तम्भय, कीलय 2, घातय 2, विश्वमूर्ति-महा-त्तेजसे ओऽम् हं सः मम शत्रूणां पादौ स्तम्भय 2, ओऽम् हूं सः मम शत्रूणां गृहागत-कुटुम्ब-मुखानि स्तम्भय 2, स्थानं कीलय कीलय, ग्रामं कीलय 2, मण्डलं कीलय 2, देशं कीलय 2, सर्व-सिद्धि महाभागे। धारकस्य सपरिवारस्य शान्तिं कुरु 2, फट् स्वाहा, ओऽम् 5, अं 5, हुं 5, ख 5, फट् स्वाहा।

भैरवी बराबर मन्त्र उच्चारण कर रही थी, शत्रु का संहार क्रम प्रारम्भ हो रहा था। वह अपने रक्त की बूंदें यज्ञ-कुंड में बराबर समर्पित करती जा रही थी और उसके साथ ही स्वमांस समर्पित करती हुई सुरा की आहुतियों

के साथ ही उस क्रिया को प्रारम्भ कर दिया, जो शत्रु संहार प्रत्यंगिरा कहा गया है —

> **ओऽम् स्तम्भिनि! स्फ्रें मम शत्रून् स्तम्भय 2, स्वाहा। ओऽम् मोहिनी। स्फ्रें मम शत्रून् मोहय 2, स्वाहा। ओऽम् क्षोमिणि, स्फ्रें मम शत्रून् क्षोभय 2, स्वाहा। ओऽम् द्राविणि! स्फ्रें मम शत्रून् द्रावयं 2, स्वाहा। ओऽम् जृम्भिणि! स्फ्रें मम शत्रून् जुम्भय 2, स्वाहा। ओऽम् त्रासिन! स्फ्रें मम शत्रून् त्रासय-त्रासय स्वाहा। ओऽमूरौद्रि! स्फ्रें मम शत्रून् सन्तापय 2, स्वाहा। ओऽम् संहारिणी! स्फ्रें मम शत्रून् संहारय 2 स्वाहा।**

औघड़ भी ग़ाफिल नहीं था, पर उसे यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा था कि भैरवी कौन-सी क्रिया सम्पन्न कर रही है। यह क्रिया किससे सम्बन्धित है, कुछ निर्णय नहीं ले पा रहा था, पर यह समझ रहा था कि अवश्य ही कोई मारक क्रिया है और इसका उद्देश्य शत्रु का पूर्णतः संहार है।

औघड़ अब तक स्वमांस की आहुतियां दे चुका था और भैरव क्षेत्रपाल को अपने सामने पूर्ण प्रत्यक्ष कर चुका था। अब तो कृत्या को सामने लाना है, और एक साथ ही प्रलय का-सा दृश्य उपस्थित कर देना है।

भैरव ने अपनी खुली हुई जटा में से रुद्र जटा हाथ में ली और उस पर ताज़े मुर्दे की भस्म लगाकर उसका शृंगार किया, सिन्दूर का तिलक किया, उस लट को नैवेद्य समर्पित किया और कार्य सिद्धि के लिए उसे ज्योंही निचोड़ा त्योंही जल की एक बूंद ज़मीन पर गिरी और एक भैरवगण उपस्थित हो गया।

भैरवी यह कृत्य इससे पहले भी देख चुकी थी। जब वह विशालाक्षी मन्दिर से इसके साथ रवाना होने वाली थी, उस समय भी भैरव ने अपनी जटा से भैरवगण उपस्थित किया था, पर ये 108 भैरवगण होते हैं, निश्चय ही इस बार रौद्र भैरवगण उत्पन्न किया है। इस भैरवगण की विशाल रक्तिम आंखें, कठोर और भयानक चेहरा इस बात का परिचायक है कि संहार क्रम के लिए ही भैरव को उपस्थित किया है।

भैरवी ने विपरीत क़ाली क्रिया तत्क्षण सम्पन्न की और सफ़ेद सरसों

हाथ में लेकर ज्योंही 'बज्रैरोचनीये देहि देहि, एहि एहि, गृह्न, ग्रह्न, मम सिद्धिन्देहि देहि, मम शत्रून् मारय मारय, कराूलिके हुं फट' उच्चारण किया और सफ़ेद सरसों उस भैरवगण की ओर फेंके, त्योंही एक विशेष लपट के साथ भैरवगण वहीं शून्य में विलीन हो गया।

भैरवगण को शून्य में विलीन होते देख औघड़ एक क्षण के लिए ही हड़बड़ा गया। उसने खा जाने वाली नज़रों से भैरवी की तरफ़ देखा, पर भैरवी तुरन्त छिन्नमस्ता प्रयोग में लीन हो गई थी। वह उसी मन्त्र से अपनी रक्षा और प्रहारात्मक क्षमता दोनों प्राप्त कर रही थी। उसने मन में सोच लिया था कि युद्ध में और प्यार में जो पहल करता है, वही बाजी जीतता है। हां, इस बात का ध्यान अवश्य रखना है कि यदि औघड़ कुछ विशिष्ट क्रिया सम्पन्न करता है, तो उस क्रिया को तुरन्त समाप्त कर देना आवश्यक है। अब यह तो स्पष्ट हो चुका है कि यह संहार कृत्या प्रयोग करेगा और मेरे पास कृत्या प्रयोग का हल नहीं है। ऐसी स्थिति में प्रत्यंगिरा और छिन्नमस्ता का ही सहारा है और ये दोनों ही सिद्ध क्रियाएं हैं। कृत्या तो जब उपस्थित होगी तब होगी। जब संहार कृत्या उपस्थित हो ही जाएगी, तो फिर पीछे बचेगा ही क्या? न तो मैं बचूंगी और न यह हवन कुंड, न सामने खड़े भैरव, भैरवियां, न यह मकान, न झोंपड़ियां और न यह आश्रम। सब-कुछ जलकर ख़ाक़ हो जाएगा, शून्य में विलीन हो जाएगा। यह कृत्या प्रयोग करे, इससे पहले ही कोई उपाय कर लेना चाहिए, जिससे कि इन लोगों की हत्याओं से मुक्त हो सकें।

भैरवी ज्यों-की-त्यों आसन पर बैठी रही। जांघ से निकले हुए मांस के स्थान से रक्त की धारा बराबर प्रवाहित थी और रक्त की लम्बी लाइन काफ़ी दूर तक चली गई थी, पर इस सबसे बेख़बर भैरवी छिन्नमस्ता क्रिया में संलग्न थी। वह जल्दी-से-जल्दी प्रत्यंगिरा सम्पुट के साथ छिन्नमस्ता को सम्पन्न कर देना चाहती थी। उसका उद्देश्य औघड़ को मजबूर कर देना था। उसे इस बात का अहसास दिला देना था कि संहार जीवन की ख़ूबसूरती नहीं है।

भैरवी ने अपने सामने ही चार द्वारों से निर्मित छिन्नमस्ता यन्त्र बना दिया था। मध्य में ही संहारात्मिका स्थापित कर दी थी और उसके तीनों कोनों पर फट् भैरव असिधार लिये स्थापित कर मन्त्र के साथ-साथ आहुतियां समर्पित करने लगी थी। उसके होंठों से निकलते छिन्नमस्ता मन्त्र 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वज्र

वैरोचनीये हुं हुं फट् स्वाहा' के साथ बराबर आहुतियां समर्पित कर रही थी।

मैं देख रहा था भैरव रूप औघड़ जहां क्रोध में था वहीं भैरवी अपेक्षाकृत शान्त थी, यद्यपि इस समय वह जीवन और मृत्यु का खेल खेल रही थी, उसके सामने अपने-आप को बचाने के अलावा शत्रु को आबद्ध करना या मारना लक्ष्य रह गया था, परन्तु फिर भी शान्त थी। जब व्यक्ति यह सोच लेता है कि मृत्यु निश्चित है और यदि मृत्यु दो-चार हाथ ही दूर होती है, तो उसके मन में शान्ति-सी उपस्थित हो जाती है। कुछ ऐसी ही शान्ति उसके मन में थी, परन्तु फिर प्रतिशोध के साथ-साथ क्रोध की लालिमा भी उसकी आंखों में स्पष्ट दिखाई दे रही थी। बराबर अपने हाथों से मांसपिंड रक्त और सुरा में डुबो-डुबोकर अग्नि को हविश्यान समर्पित कर रही थी।

पर औघड़ क्रोधित अवस्था में था। ललाट पर सलवटें ऊंची उठ गई थीं, नासापुट फड़क रहे थे। भैरवगण को शून्य में विलीन होते देख वह थोड़ा-सा अवश्य घबरा गया था, परन्तु फिर भी मन में शायद निश्चिन्त था कि कृत्या की काट इसके पास हो ही नहीं सकती। इससे पूर्व यह आवश्यक है कि सशरीर आबद्ध कर लिया जाए। तन्त्र क्रिया में यह अत्यन्त आवश्यक क्रम है। अन्यथा सबसे पहले तो स्वयं का ही नाश हो जाता है। उसने गुरु बाबा बटुकनाथ को नमस्कार किया —

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधरूपम्।
योगीन्द्रमीड्यं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुं नित्यमहं नमामि ॥

तत्पश्चात् मूल कृत्या प्रयोग को प्रारम्भ करने से पूर्व बटुक भैरव को स्मरण किया —

प्रातः काले सदा हं भगणपतिधरं भालदेशे महेशं,
नागं पाशं कपालं डमरुमध शृणिं खड्गघण्टाभयानि।
दिग्वस्त्रं पिंगकेशं त्रिनयनसहितं मुण्डमालं करेषु, करेषु,
यो धत्ते भीमदंष्ट्रं मम विजयकरं भैरवं तं नमामि ॥

उसने भैरव के आगे सुरा पात्र स्थापित कर दिया और तुरन्त ही मूल

प्रयोग को हाथ में लिया। अपनी ब्रह्मशिखा को हाथों से खींचकर अग्नि में समर्पित कर दिया, यह इस बात का परिचायक था कि अब मुझे अन्तिम लड़ाई लड़नी ही है, चाहे इसमें मेरा स्वयं का भी सर्वनाश क्यों न हो जाए।

कृत्या प्रयोग से पूर्व ब्रह्मशिखा को हाथों से तोड़कर यज्ञ-कुंड में डालनी होती है, इसका तात्पर्य समस्त प्रकार के बन्धनों से मुक्त होकर अपने-आप को कृत्या के हवाले कर देना है और दोनों का परस्पर पूर्ण समन्वय बना देना है। स्वयं कृत्या-स्वरूप होकर ही कृत्या को प्रकट किया जा सकता है।

भैरवी यह सब देख रही थी। वह समझ गई थी कि अब औघड़ प्रयोग के अन्तिम स्थिति में पहुंचा है, अब यह वह कार्य करने जा रहा है, जो संसार का भीषणतम प्रयोग है। संहार कृत्या का प्रभाव एक साथ पचास अणु बमों के प्रहार से भी ज़्यादा होता है। उससे आसपास की ज़मीन टुकड़े-टुकड़े होकर फट जाती है और अन्दर से पानी बाहर निकल आता है। पर्वत शिलाएं उड़-उड़कर परस्पर टकराने लगती हैं और चूर्ण हो जाती हैं, बड़े-बड़े पेड़ जड़ों से उखड़कर गिर जाते हैं और अपने स्थान से दो-तीन सौ मीटर दूर पड़े हुए दिखाई देते हैं। पशु-पक्षी एक साथ जलकर ख़ाक़ हो जाते हैं और उस पूरे क्षेत्र में प्राणियों का अस्तित्व ख़त्म हो जाता है। ऐसी स्थिति में यदि आबद्ध क्रिया से सिप्त हो तो प्रयोग-कर्ता अवश्य बच जाता है। अन्य किसी के बचने की कोई उम्मीद नहीं रहती।

मैंने देखा कि औघड़ अपने स्थान पर उठ खड़ा हुआ है। उसकी आंखों में लपटें निकलती हुई साफ़-साफ़ दिखाई दे रही हैं! लम्बा-चौड़ा शरीर तप्त तवे की तरह लाल-सुर्ख़ हो रहा है और क्रोध के अतिरेक में यह सब-कुछ करने को आतुर है।

एक क्षण तो मैंने सोचा कि यह सब-कुछ मेरी वजह से हो रहा है। न मैं यहां आता, न भैरवी मुझे बचाती, न औघड़ क्रोधित होता, न परस्पर तकरार होती और न ऐसी स्थिति आती, जिसमें सबका सर्वनाश निश्चित है। यदि मेरी वजह से उसका सर्वनाश होता है, तो यह अत्यधिक दुखदायक है। क्यों न मैं अपनी बलि देकर इस झगड़े को समाप्त ही कर दूं। करना तो इतना ही है कि मुझे पास पड़ी हुई छुरी को अपने सीने में घोंप देना है या उछलकर

अपने-आप को यज्ञ-कुंड में गिरा देना है। दोनों ही स्थितियों में मेरा प्राणान्त निश्चित है और यों भी कृत्या प्रयोग के बाद मेरा प्राणान्त तो होगा ही, जब दो मिनट बाद मरना निश्चित है, तो फिर पहले ही क्यों न अपने-आप को समाप्त कर दूं?

मैंने एक क्षण अग्नि-कुंड की ओर देखा, साथ ही बाईं ओर पड़ी तेज़ धार वाली छुरी को आंखों-ही-आंखों में तोला, तभी मेरी नज़र भैरवी की नज़र से टकरा गई। मैंने देखा कि वह दत्त-चित्त होकर विशेष क्रिया में संलग्न है। उसी एक क्षण के लिए उसने मेरी आंखों में ताका। मुझे लगा, जैसे वह कह रही हो, तू यह क्या कर रहा है? तेरे लिए तो मैंने इतना बड़ा जोखिम उठाया है, तेरे लिए तो मैंने अपनी ज़िन्दगी को दांव पर लगा दिया है और तू ही अब कायरों की तरह अपने-आप को समाप्त करने पर तुला हुआ है?

मैं उसकी आंखों के भावों को समझकर घबरा गया। दूसरे ही क्षण संयत हुआ। यह मैं क्या कर रहा हूं? यह क्या ज़रूरी है कि औघड़ अपने उद्देश्य में सफल हो ही जाएगा और कृत्या प्रयोग कर सब-कुछ सर्वनाश कर ही देगा? मैंने तान्त्रिक ग्रन्थों में कृत्या और उसके प्रयोग के बारे में पढ़ा था। यह तो मैं समझ गया कि यह कृत्या प्रयोग ही कर रहा है, पर न तो इसकी मुझे कोई विधि ज्ञात थी और न कोई विशेष जानकारी ही थी। औघड़ अपने आसन पर खड़ा होकर विशेष आहुतियां यज्ञ में समर्पित करता जा रहा था। कैसा आश्चर्य है कि एक ही यज्ञ-कुंड में दो शत्रु एक दूसरे के विपरीत क्रियाएं सम्पन्न कर रहे हैं।

औघड़ ने कुछ विशेष आहुतियां सम्पन्न कीं, प्रत्येक आहुति के साथ वह 'हुं फट्' शब्द लगा रहा था। आहुति को सीधे समर्पित न करते हुए उसे ज़ोर से अग्नि-कुंड में मुट्ठी बांधकर फेंक रहा था, जैसे कि कोई व्यक्ति हाथ में पत्थर लेकर उसे ज़ोर से फेंकता हो! प्रत्येक आहुति के साथ उसके दांत भिंच जाते और जबड़ा सख़्त हो जाता।

इधर भैरवी अपनी छिन्नमस्ता क्रिया के अन्तिम चरण में थी। अब वह क्रिया सम्पन्न होनी थी, जिसमें या तो पूर्ण सिद्धि प्राप्त होती या फिर असफलता ही मिलती। यदि सिद्धि मिलेगी, तो सामने वाला शत्रु निश्चय ही

समाप्त हो जाएगा, पर यदि किसी कारणवश ऐसा नहीं होता है, तो प्रयोगकर्ता स्वयं समाप्त हो जाएगा।

भैरवी अपने आसन पर ही बैठी रही। सामने तीन नर-मुंड रख दिए। उन मुंडों के ललाट पर सिन्दूर का तिलक किया, सिर पर सिन्दूर से ही पंचवक्त्र बनाया और तीनों को ही मांस का भोग समर्पित किया। मध्य में जो नर-मुंड रखा हुआ था, उस पर उसने अपने रक्त से 'हुं फट्' लिखा, उसकी आंखों में दो कीलें ठोकीं, पत्थर के टुकड़ों से दोनों कर्ण द्वार बन्द किए, नासाप़ुटों में सिन्दूर भरा और इस प्रकार उसके दसों द्वार बन्द कर दिए।

इसके तुरन्त बाद उसने शून्य में हाथ लहराकर ताज़े मुर्दे की भस्म और हड्डियां प्राप्त कीं और उसके सिर पर मुर्दे की भस्म मल दी। मुंह में हड्डी का टुकड़ा ठूंस दिया और छिन्नमस्ता की अन्तिम क्रिया के लिए तैयार हो गई। औघड़ अपने मन्त्र का उच्चारण करते हुए इस क्रिया को भी देख रहा था। ये दोनों ही क्रियाएं उसके लिए अपेक्षाकृत नई थीं।

फिर भी औघड़ निश्चिन्त था, उसे यह पता था कि संसार की सर्वाधिक ख़तरनाक मारण क्रिया कृत्या प्रयोग ही होता है, उससे ऊंचा और तीक्ष्ण प्रयोग तो है ही नहीं, पर जब वह संहार कृत्या क्रिया ही सम्पन्न कर रहा है, तो फिर चिन्ता करने की ज़रूरत ही क्या है? वह भले ही कुछ भी करे, दो-चार मिनट भले ही उछल-कूद कर ले, इसका मरना तो निश्चित है ही।

उसने कृत्या का आह्वान किया और अपने सिर की रुद्र जटा को बाहर निकाला। उसके किनारे पर उसने बावन भैरव मन्त्रों को स्थापित किया, उन पर सिन्दूर लगाया और प्रत्येक भैरव की बलि समर्पित की। यह कृत्या प्रयोग का अन्तिम चरण सिद्ध हो रहा था। ज्यों ही इस रुद्र जटा का पूजन सम्पन्न होगा और उसे खींचकर अग्नि में समर्पित होते ही वीरभद्र उत्पन्न होगा और उसके साथ ही कृत्या रक्त-जिह्वायुक्त संहार प्रारम्भ कर देगी। वीरभद्र और कृत्या उस भीषण संहार की सृष्टि करेगी कि उसमें सब-कुछ पत्तों की तरह उड़ जाएंगे।

तभी भैरवी अपने स्थान से उठ खड़ी हुई। उसके हाथों में खप्पर था, जो मानव-रक्त से लबालब भरा हुआ था और उस रक्त पर वह मानव खोपड़ी

रखी हुई थी जिस पर सिन्दूर लगाकर 'हुं फट्' अंकित था। यह छिन्नमस्ता का अन्तिम प्रयोग था। यह वह विशिष्ट क्षण था, जब छिन्नमस्ता सम्पन्न होने जा रही थी।

और तभी भैरवी ने उस खप्पर को दाहिने हाथ में ले लिया, जिसमें मानव-रक्त भरा हुआ था। उस मध्य में रखे हुए नर-मुंड को उस रक्त में डुबो दिया और उसे भी रक्त-पात्र में ले लिया। और फिर, 'छिन्नमस्ता महाभीमा क्रोधिनी डाकिनी छिन्न मुंड धरा मम शत्रून् छिन्न-छिन्न रक्त पान परायणां हुं हुं हुं फट्' उच्चारण कर उस रक्त-युक्त नर-मुंड को ज्यों ही यज्ञ-कुंड में अग्नि की लपलपाती जिह्वाओं के बीच आहुति समर्पित की, त्योंही भयानक भीषण गर्जना-सी हुई और उस खोपड़ी के टुकड़े-टुकड़े होकर चारों तरफ़ छितर गए। ऐसा लगा जैसे यज्ञ में समर्पित वह रक्त लाखों बूंदों में विकीर्ण होकर चारों तरफ़ छितर गया और नरमुंड के हज़ार-हज़ार टुकड़े होकर हवा में विलीन हो गए।

तभी देखा कि सामने जो औघड़ खड़ा है, भय के मारे उसकी जीभ निकल गई है, आंखें फटी-की-फटी रह गई हैं और देखते-ही-देखते गर्दन से ऊपर का नरमुंड कटकर टुकड़े-टुकड़े होकर चारों तरफ़ छितर गया है। उसकी मृत देह धम्म से नीचे गिर पड़ी और गर्दन का शेष बचा हुआ भाग यज्ञ-कुंड पर आकर टिक गया। पूरे शरीर पर रक्त गर्दन में से निकल-निकलकर यज्ञ-कुंड में प्रवाहित हो रहा था और अग्नि की लपलपाती जीभें उस रक्त को लील रही थीं। ऐसा लग रहा था, जैसे छिन्नमस्ता स्वयं प्रत्यक्ष होकर उस औघड़ के शरीर का रक्तपान कर रही हो। उसके सिर के इतने अधिक टुकड़े हो गए थे कि जब वे हवा में उछलकर आवाज़ के साथ फटकर नीचे गिरने लगे थे, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे सर्दी में वर्षा के साथ-साथ बड़े-बड़े ओले चारों ओर गिर रहे हों।

इतनी ज़ोर की गर्जना और आवाज़ हुई थी कि मेरे मुंह से न चाहते हुए भी चीख़ निकल गई थी। और मैं भय से उछलकर भैरवी के पीछे उसके शरीर से थरथराता हुआ चिपककर खड़ा हो गया था।

चारों तरफ़ का दृश्य अत्यन्त भयानक हो गया था। यज्ञ-कुंड टूट रहा

था और चटक-चटककर हवन सामग्री, मानव-रक्त और पात्र बिखर रहे थे। धीरे-धीरे अग्नि सहस्र जिह्वा होकर उस औघड़ के शरीर के प्रवाहित सारे रक्त को धीरे-धीरे पी गई। चारों तरफ़ दूर-दूर तक घेरा बांधे हुए भैरव और भैरवियां थरथराते हुए खड़े थे। ऐसा लग रहा था, जैसे दो क्षण पहले भयंकर भूकम्प आया हो और सारी पृथ्वी थरथरा उठी हो।

चारों तरफ़ उस महाश्मशान में निवास करने वाले साधनारत योगी और योगिनियां भैरव और भैरवियां घेरे में खड़े हुए यह सब-कुछ देख रहे थे। उनकी टांगें लड़खड़ा रही थीं, आश्चर्य से आंखें फटी-की-फटी रह गई थीं। इतना समर्थ और सशक्त तन्त्र साधनाओं में निष्णान्त अजेय अघोरी का अन्त ऐसा होगा, यह तो किसी ने सोचा ही नहीं था। वह अपने-आप में तन्त्र का सिरमौर माना जाता था। उस महाश्मशान में ही नहीं अपितु दूर-दूर तक जिसके नाम की धाक थी। कपालनाथ का स्मरण करते ही अच्छे-से-अच्छे तान्त्रिक भी थरथराकर रह जाते थे। उसी कपालनाथ का सिर-विहीन धड़ यज्ञ-कुंड के किनारे पर टिका हुआ इस प्रकार पड़ा था, मानो महाकाली चामुंडा अपने भक्ष को पटककर उसके रक्त को सीधे ही मुंह से लगाकर पी रही हो। थोड़ी ही देर में सारे शरीर का ख़ून निचुड़कर यज्ञ-कुंड में समर्पित हो चुका था और बेजान सिकुड़ी हुई-सी लाश यज्ञ-कुंड के बाहर पड़ी हुई थी।

और इस भैरवी में इतना ग़ज़ब का आत्मविश्वास तथा तन्त्र के क्षेत्र में इतनी महत्त्वपूर्ण बन गई कि इसने कपालनाथ जैसे तान्त्रिक से टक्कर ले ली। वे सभी भैरव और भैरवियां आश्चर्य के साथ उस भैरवी को देख रहे थे। जो अभी भी आसन पर खड़ी अग्नि में समर्पित औघड़ से प्रवाहित रक्त को भयमिश्रित आश्चर्य से देख रही थी। वह पत्थर के बुत की तरह खड़ी थी। वह अपने-आप पर विश्वास नहीं कर पा रही थी कि यह सब उसके हाथों से हुआ है। कपालनाथ जैसे महान सिद्ध तान्त्रिक से उसने टक्कर ली और उसे परास्त किया है। उसने उस कपालनाथ का शिरच्छेदन किया है, जो कृत्या सिद्ध था, जिसके संकेत पर प्रकृति विचरण करती थी, जिसकी भृकुटी टेढ़ी होती, तो अच्छे-से-अच्छा तान्त्रिक दहल कर रह जाता। जिसके क्रोध के आगे यमराज को भी दो क्षण रुककर सोचना पड़ता।

वही महाप्रतापी तन्त्रज्ञ कपालनाथ उसके हाथों से इस प्रकार मर जाएगा, वह विश्वास नहीं कर पा रही थी। वह तो अपने अस्तित्व के लिए लड़ाई लड़ रही थी, अपने बचाव का प्रयत्न कर रही थी। औघड़ को समाप्त करना चाहती ही नहीं थी। उसकी तो इच्छा उसे परास्त करने की थी, परन्तु उसके अन्तिम प्रयोग से अभूतपूर्व घटित हो गया। उसके जीवन का यह पहला प्रयोग था, जो कि अनजाने में ही घटित हुआ।

मैं देख रहा था, भैरवी अपने आसन पर चित्रलिखित-सी खड़ी थी। ऐसा लग रहा था, जैसे उसके जिस्म में किसी प्रकार की कोई शक्ति नहीं रही हो। कहीं मस्तिष्क की शिराएं फट न जाएं। कभी-कभी अचानक गहरे आघात के फलस्वरूप मस्तिष्क की धमनियों में रक्त प्रवाह बढ़ जाता है और मूल धमनी फट जाती है। फलस्वरूप व्यक्ति का देहान्त हो जाता है और उस क्षण यही आशंका मेरे मन में व्याप्त हुई। मैंने भैरवी की तरफ़ देखा वह निश्चल, अपलक जड़वत खड़ी थी। उसके हाथ ज्यों के त्यों शून्य में उठे हुए थे, जैसे कि उसके दोनों हाथों में रक्त-पात्र हो और उसमें नरमुंड रखा हुआ हो, जैसे कि अभी-अभी यह अन्तिम आहुति देने के लिए सन्नद्ध हो।

यह स्थिति ठीक नहीं थी, इससे मृत्यु भी हो सकती है। यह भी हो सकता है कि वह पागल-सी हो जाए। उसने एक लड़ाई जीती है, पर प्रकृति की इस दूसरी लड़ाई में हार सकती है। उसकी विजय सब-कुछ दांव पर लगने के बाद व्यर्थ हो सकती है और मैंने तत्क्षण चार-छः क़दम आगे बढ़कर उसके दाहिने हाथ को पकड़कर हिलाया।

इसका प्रभाव तुरन्त हुआ। उसकी जड़ता समाप्त हुई। उसके शरीर में एक हलचल दिखाई दी और उसके मुंह से 'हुं' की ध्वनि-सी निकली। उसने अजीब-सी नज़रों से मुझे देखा और तुरन्त दोनों हाथ आंखों पर रखकर धम्म से उसी आसन पर बैठ गई। उसे औघड़ का वह स्वरूप दिखाई दिया, जब वह पहली-पहली बार उससे मिला था। उसे औघड़ का स्नेहपूर्ण व्यवहार स्मरण हो आया। उसने बताया कि औघड़ ने किसी प्रकार की तकलीफ़ भैरवी को नहीं होने दी थी। अन्य भैरव-भैरवियों से भी ज़्यादा उसे माना, उसे महत्त्व दिया और तन्त्र क्षेत्र में निष्णात किया।

इतने समय तक साथ रहने पर भी औघड़ ने कभी भी मर्यादा का उल्लंघन नहीं किया, ऐसा कोई काम नहीं किया जो उचित न हो! यहां तक कि उसके शरीर को भी काम-भावना से स्पर्श नहीं किया। उसमें संयम था। इसमें सन्देह नहीं। यदि औघड़ चाहता तो बल प्रयोग कर कुछ भी कर सकता था, पर उसने कभी भी ऐसी स्थिति नहीं आने दी, जब भी उससे मिला किसी भैरव या भैरवी के साथ ही मिला। एकान्त में भी यदि कभी दिन या रात को साधना की दृष्टि से मिलने की आवश्यकता पड़ी, तब भी उसने संयम और मर्यादा का पूरा-पूरा ध्यान रखा।

और आज उसने अपने ही गुरु का नाश कर दिया। उसके हाथों से गुरु-हत्या हो गई है। एक ऐसे पुरुष की हत्या हो गई, जो अपने-आप में अद्वितीय था, जिसके पास तन्त्र की विशिष्ट सिद्धियां और साधनाएं थीं। जिसने न मालूम कितने ही तान्त्रिक तैयार किए थे और जिसकी धाक गोरखपुर से नेपाल की दक्षिण काली तक थी। वह ऐसा नहीं चाहती थी, मगर जाने-अनजाने उससे जो कुछ हो गया, वह अत्यधिक दुःखदायी है। उसके द्वारा जघन्य कृत्य सम्पन्न हो गया है और इसका प्रायश्चित क्या होगा, कुछ नहीं कहा जा सकता।

यह सही है कि क्रोध के आवेश में वह अपने नियन्त्रण में नहीं रहा था और मरने-मारने पर उतारू हो गया था। यह भी सही है कि वह कृत्या प्रयोग कर रहा था और यदि पांच-सात मिनट की और देरी होती, तो जो हस्र औघड़ का हुआ, वही उसका होता। बिना चाहे भी उसके हाथों से गुरु-हत्या हो ही गई है। महाकाल कभी भी उसे क्षमा नहीं करेंगे, "मैं दुष्ट हूं, पातकी हूं, मेरे हाथों से बहुत ही अशुभ हुआ है।" कहते-कहते भैरवी आंखों पर दोनों हाथ रखे सिसक-सिसक कर रो पड़ी।

मैं आश्चर्य में पड़ गया था। जिस समय प्रसन्नता व्यक्त करने का क्षण है, उस समय यह रो रही है। इसने तो विजय प्राप्त की है। विजय उत्सव मनाने की अपेक्षा यह कमज़ोरी दिखा रही है। यदि इसे महाश्मशान के अन्य भैरव-भैरवियों पर शासन करना है, तो अपने-आप को संयमित करना पड़ेगा, कुछ कठोर होना पड़ेगा। पौरुष और दृढ़ता दिखानी पड़ेगी। इस प्रकार सामान्य स्त्रियों की तरह रुदन करना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है।

पर मेरी हिम्मत नहीं हो रही है कि उसे कुछ कहूं। मुझसे यह ज़्यादा समर्थ है। आयु में ये भले ही मुझसे छोटी हो, परन्तु ज्ञान और साहस में मुझसे निश्चित रूप से बढ़-चढ़कर है। इसे स्वयं समझना चाहिए कि औघड़ की मृत्यु के बाद यह यहां की शासिका है, गुरु की तरह है। यह सब भैरव-भैरवियां निश्चित रूप से इसे गुरु मान लेंगे और जिस प्रकार यहां से औघड़ का साम्राज्य था, उसी प्रकार यह यहां की साम्राज्ञी बनकर रह सकेगी।

दूर खड़े भैरव और भैरवियां धीरे-धीरे नज़दीक आने लगे। उन्होंने देख लिया था कि उनके गुरु कपालनाथ की बलि महाकाल ने ले ली है। उनके शरीर का सारा रक्त काली ने पी लिया है, और उसका मुंड गले में धारण कर लिया है। इसके पीछे अवश्य ही महाभैरव का अदृश्य संकेत है, यह भैरवी निश्चित रूप से स्वयंसिद्धा है।

गुरु तो ज्ञान होता है, उसके लिए शरीर का कोई विशेष महत्त्व नहीं होता। इस भैरवी के पास उसकी अपेक्षा कुछ उच्च कोटि का ही ज्ञान व क्रियाएं हैं, कुछ ऐसा अवश्य है, जो औघड़ के पास नहीं था, इसलिए उसे समाप्त होना पड़ा। अब यदि यह भैरवी हमारी गुरु बनती है, तो हमें क्या आपत्ति हो सकती है?

कुछ भय, कुछ हर्ष और कुछ आश्चर्य के साथ भैरव-भैरवियां निकट आने लगीं, जहां पर मृगाक्षी बैठी हुई थी। उसने उन लोगों को अपने पास आते हुए देखा। अचानक उसके चेहरे का भाव बदल गया। एक दृढ़ संकल्प था उसके चेहरे पर। उसने शायद यही निश्चय कर लिया कि जो कुछ हो गया है, वह तो हो ही गया है, फिर अब उस पर अफ़सोस करने से क्या होगा। अब तो आगे का निर्णय लेना है। इन भैरव-भैरवियों के सामने कमज़ोरी दिखाना ठीक नहीं। मौत और तान्त्रिक का कोई भरोसा नहीं होता। इनके सामने मैंने कमज़ोरी दिखाई और यदि इन्हें पता चल गया कि मैं अन्दर से पूरी तरह हिल गई हूं, तो अवश्य ही ये मुझ पर टूट पड़ेंगे। ये कुछ भी कर सकते हैं, मैं इस समय अकेली हूं और ये बहुत हैं। इस समय इन पर मनोवैज्ञानिक दबाव बनाए रखना है। वह दृढ़ता के साथ अपने आसन पर खड़ी हो गई, फिर पास आते हुए भैरव-भैरवियों को उंगली के इशारे से रोकते हुए कहा, "ख़बरदार! यदि एक भी क़दम आगे बढ़ाया तो। जैसा कपालनाथ का हश्र हुआ है, ठीक वैसा ही तुम्हारा भी कर दूंगी। महाकाल के ग्रास में तुम्हारे ग्रास भी लग जाएंगे।"

आगे आती हुई भीड़ जहां की तहां रुक गई।

भैरवी ने आज्ञा देते हुए कहा, "सभी अपने-अपने साधना कक्ष में चले जाएं। जैसे महानिशा में तुम लोगों की साधनाएं चल रही थीं, उसी प्रकार साधनाएं सम्पन्न करनी हैं। तुममें किसी प्रकार का गतिरोध या व्याघात मैं नहीं चाहती। मेरे बिना पूछे और बिना आज्ञा के कोई भी साधना कक्ष से न तो बाहर निकले और न परस्पर बातचीत करे। कल सुबह मैं स्वतः निर्णय लेकर तुम लोगों को बता दूंगी कि इस महाश्मशान को किस प्रकार से संचालित करना है।"

भैरवी की वाणी में पौरुष और कठोरता थी। आशा का प्रत्येक शब्द दृढ़ और स्थिर था। दो क्षण पहले जो भैरवी आंखों पर उंगलियां रखकर रो रही थी, वह शायद कोई और थी। सभी भैरव और भैरवियां यन्त्र-चालित से अपने-अपने साधना कक्ष में चले गए।

भैरवी की आवाज़ सुनाई दी, "उठो, इसको सहारा दो!"

वह औघड़ के निर्जीव शरीर को अपने दोनों हाथों से उठाने का असफल प्रयास कर रही थी। शायद उसका अन्तिम संस्कार करने का विचार हो। मैंने उससे कुछ भी पूछना उचित नहीं समझा और सहारा देकर औघड़ की उस सिरविहीन लाश को अपने हाथों में उठाने का प्रयास किया। लाश भारी थी। मरने के बाद और भी ज़्यादा भारी होकर अकड़ गई थी।

भैरवी ने कहा, "कपालनाथ को उठाकर नदी के किनारे तक ले जाना होगा और यथोचित अन्तिम संस्कार सम्पन्न करना होगा।" फिर भैरवी ने मुझे शूलपाणि को बुलाने के लिए कहा। वह औघड़ के संकेत पर यज्ञ-वेदी के पास आकर बैठा हुआ था, पर ज्योंही औघड़ का सिर टुकड़े-टुकड़े होकर शून्य में विलीन हुआ, त्योंही वह हताश, खिन्न-सा उठकर अन्य भैरव-भैरवियों के पास जाकर खड़ा हो गया था। वह औघड़ सम्प्रदाय का उत्तराधिकारी था और कपालनाथ को उस पर बहुत अधिक विश्वास था।

मैं शूलपाणि को बुलाकर भैरवी के पास ले आया। भैरवी ने उससे कहा, "इसे उठाना है और नदी तक लेकर चलना है। तुम्हारे ही हाथों इसका अन्तिम

संस्कार सम्पन्न होगा।" भैरवी इस प्रकार से आज्ञा दे रही थी, मानो उसे कई-कई वर्षों से शासन करने का ज्ञान हो।

शूलपाणि ने बिना नानुकुर किए औघड़ की लाश को अपने कन्धे पर डाला और भैरवी के संकेत करने पर आगे-आगे चल दिया। उसके पीछे यज्ञ-कुंड की अग्नि लेकर भैरवी थी और सबसे पीछे मैं चल रहा था।

श्मशान के पश्चिम किनारे पर ही तुंगद्रवा नदी बहती थी। शूलपाणि वहीं जाकर खड़ा हो गया। तब भैरवी ने नदी के किनारे की ज़मीन साफ़ की और उस पर औघड़ को लिटा दिया। औघड़ सम्प्रदाय में दाह-संस्कार नहीं होता। उसे जल-समाधि दे दी जाती है। उसी के अनुरूप पहले शूलपाणि ने अपने गुरु की लाश को नदी के जल से स्नान कराया, एक खप्पर उसके मस्तक के स्थान पर रखा, उस पर सिन्दूर का तिलक किया और मुंह में यज्ञ की अग्नि से मामूली-सा दाग़ दिया। तत्पश्चात शूलपाणि ने दोनों हाथों में अपने गुरु कपालनाथ की लाश उठाकर नदी के मध्य में धीरे से प्रवाहित कर दी। नदी के किनारे भैरवी खड़ी-खड़ी कपालनाथ का अन्तिम संस्कार देख रही थी। ज्योंही लाश नदी में विसर्जित हुई भैरवी की आंखों में आंसुओं की बंदें चू पड़ीं। फिर तीनों ने औघड़ कपालनाथ को अन्तिम प्रणाम किया। तीन-तीन अंजुलि जल का तर्पण किया और वापस लौट पड़े।

शूलपाणि अपने साधना कक्ष की ओर चला गया और भैरवी यज्ञ-कुंड से काफ़ी दूर एक तरफ़ पत्थर की एक चट्टान पर निढाल-सी होकर बैठ गई। उसे बैठा हुआ देखकर मैं भी थोड़ा-सा पीछे हटकर उसके पास ही बैठ गया। भैरवी न मालूम किन ख़्यालों में खो गई। मैंने कुछ क्षण तो उसके चेहरे की ओर देखा, जब अनुभव किया कि उसका ध्यान मेरी ओर नहीं है, तो मैं चुप रह गया। भैरवी ने दो क्षण शून्याकाश में देखा और सोचा कि विधाता भी उसके जीवन में क्या-क्या खेल रच रहा है।

मैंने सोचा, मेरी प्राण-रक्षिका इस भैरवी को छोड़कर वापस घर जाता हूं, तो मेरे जैसा कोई कृतघ्न नहीं होगा। इसने केवल मेरी वजह से इतना बड़ा दांव खेला, मुझे बचाने के लिए ही इसने कपालनाथ से टक्कर ली। आज यदि यह कठिनाई में है, तो इसका एकमात्र कारण मैं हूं। ऐसी स्थिति में अपनी

तरफ़ से इसे छोड़कर नहीं जा सकता। यदि यह मुझे चले जाने को कह देगी, तो भले ही चला जाऊंगा। इसके मन में यह नहीं आना चाहिए कि मैं इसके रूप या यौवन का प्यासा हूं या इन तुच्छ चीज़ों की वजह से इसके पीछे लगा हुआ हूं। मुझे तो इसकी बहादुरी पर नाज़ है।

यदि यह यहीं रहती है, तो मैं बराबर इसकी रक्षा के लिए सन्नद्ध रहूंगा। अन्य कामातुर भैरवों की नज़र से यथासम्भव इसे बचाने का प्रयत्न करूंगा। यदि यह चले जाने को भी कह देगी, तब भी मैं एक तरफ़ रहकर इसकी रक्षा करने का प्रयत्न करूंगा। मुझे इससे कुछ भी नहीं चाहिए। मैं तो केवल अहसानों का बदला चुकाने का प्रयास करूंगा।

भैरवी ने मेरी ओर देखा और किसी गहरी सोच में डूबी हुई-सी बोली, "क्या सोच रहे हो?"

मेरी तन्द्रा भंग हुई। चौंकता हुआ-सा बोला, "कुछ नहीं, कुछ भी तो नहीं सोच रहा।"

भैरवी ने कहा, "जो हो गया, सो हो गया। मैं तो तुम्हें जानती भी नहीं थी, तुमसे मेरा कोई परिचय ही नहीं था। मैं तो ख़ुद कपालनाथ के साथ तुम्हें भैरव की बलि देने वाली थी, पर अचानक मेरे मानस में क्यों और कैसे विचार आया और किस प्रकार से मेरे हाथों ने तुम्हें खींचकर बचा लिया, यह मैं कुछ भी नहीं जानती। यह सब किसी अदृश्य सत्ता के संकेत पर ही हुआ है। ज़रूर इसके पीछे महाप्रकृति का कोई विचार है। ज़रूर वह तुम्हें अभी बचाए रखना चाहती है। शायद नित्य लीला विहारिणी मां पराम्बा तुमसे कोई विशेष कार्य कराना चाहती हो। अब तुम्हारा आगे क्या विचार है?"

मैंने उत्तर दिया, "यह तो निश्चित है कि अब घर नहीं जाऊंगा। घर से मुझे किसी प्रकार का कोई विशेष मोह नहीं रहा है। मैं एक सामान्य गृहस्थ रहा हूं, और आजीविका से उदर पोषण करता रहा हूं। अत्यन्त ही निर्धन और मध्यम श्रेणी का व्यक्ति हूं, पर बचपन से ही तन्त्र के प्रति मेरी आस्था रही है और मन में यह आशा बराबर बलवती रही है कि जीवन में तन्त्र के क्षेत्र में कुछ ऐसा प्राप्त करूं, जो अपने-आप में अद्वितीय हो। उस स्थिति तक पहुंचूं, जहां अन्य सभी तान्त्रिक बौने से प्रतीत हों। प्रकृति के उन रहस्यों को उजागर

करूं, जो अभी तक अगम्य, अगोचर और अदृश्य रहे हैं।" कहते-कहते मैं रुक-सा गया।

भैरवी ने कहा, "कहो-कहो, रुक क्यों गए? तुम्हारे विचार निश्चित रूप से सही हैं। यदि तुमने तन्त्र के क्षेत्र में उतरने का निश्चय कर ही लिया है, तो फिर मन में किसी प्रकार का मोह रखने की ज़रूरत नहीं। जब अपने जीवन की नाव तन्त्र के महासागर में उतार ही ली है, तो फिर तूफ़ानों से घबराकर किनारे पर मुर्दे की तरह बैठना उचित नहीं। जो कुछ करना है, अपने दम-खम के साथ करना है, पूर्णता के साथ करना है।"

मैंने जवाब दिया, "आपकी बात सोलह आने सही है। मैं न तो कायर हूं और न पीछे हटने वाला हूं। यद्यपि मैंने जो कुछ देखा है, वह अपने-आप में रोमांचक है, परन्तु इस क्षेत्र में यह सब तो होगा ही, अगर कायरों की तरह ही जीना है, तो फिर घर की चारदीवारी कौन-सी कम है। तन्त्र तो भगवान शंकर का साक्षात स्वरूप है, जो शिव की तरह ही श्मशान में आनन्द ले सकते हैं, जो सही अर्थों में शिवमय हो सकते हैं, वही तन्त्र के क्षेत्र में सफलता पा सकता है।"

"और फिर जीवन का मूल्य और महत्त्व ही क्या, यदि किसी विशिष्ट क्षेत्र में कुछ विशिष्टता प्राप्त न की जाए। वह जीवन तो पशुओं की तरह है, जो भूख लगने पर खाना लेते हैं, और नींद आने पर सो जाते हैं। यह मनुष्यता नहीं है, यह जीवन की श्रेष्ठता और पूर्णता नहीं है, यह तो कायरता है, जीवन से पलायन है, टुकड़ों-टुकड़ों में जीवन जीने का उपक्रम है।"

"मैंने भले ही स्वेच्छा से इस पथ पर बढ़ने का निर्णय न लिया हो, पर जिस प्रकार से पिछले कुछ दिनों से घटनाएं घटित हो रही हैं, वे इस बात का संकेत अवश्य कर रही हैं कि मेरा जीवन केवल तन्त्र के लिए ही है, और तन्त्र के द्वारा ही मेरे जीवन में पूर्णता आ सकती है।"

"मैं आपके साथ हूं, चाहे आप मुझे किसी भी ढंग से आजमा लें, सुख-दुख में, विपत्ति में मैं छाया की तरह आपके साथ रहूंगा, समय पड़ने पर आपके लिए प्राणों की बाज़ी लगा दूंगा। यदि आपके लिए यह शरीर, यह प्राण, यह ज़िन्दगी काम आ सके, तो मैं अपने-आप को धन्य समझूंगा। इसलिए नहीं

कि मुझे कोई स्वार्थ है, पर इसलिए कि आपमें मानवीयता है। मारने की अपेक्षा जीवन को आपने महत्त्व दिया है। आपमें ममत्व है, नारी सुलभ कोमलता है, तो वीरता की पराकाष्ठा भी।"

भैरवी मुस्कुराकर रह गई, बोली, "समय आने पर सब-कुछ पता चल जाएगा, परन्तु मेरा विचार अब इस जगह रहने का नहीं है। मुझे विशालाक्षी मन्दिर में इस औघड़ के मुंह से अनायास निकले शब्द स्मरण हैं कि समय के कुछ विशेष खंड तक मैं तुम्हारा गुरु रहूंगा और पथ-प्रदर्शन करूंगा। मैं सोचती हूं कि समय का वह खंड समाप्त हो गया, पर इसके साथ ही यह बात भी स्पष्ट है कि कोई-न-कोई गुरु अवश्य है, जिसको मुझे ढूंढ़ना है। वह कहां है, कौन है, इसके बारे में मैं अभी कुछ नहीं कह सकती। मैं तो केवल अदृश्य सत्ता के संकेत को समझने का प्रयास कर सकती हूं और मेरी आत्मा यह कह रही है कि ठहरना मृत्यु है, गति ही जीवन है। तन्त्र के क्षेत्र में तो निरन्तर अग्रसर होना ही चाहिए, नई-नई दिशाओं और नए-नए आयामों को ढूंढ़ना चाहिए। मेरी खोज तब तक जारी रहेगी, जब तक कि मेरे वास्तविक गुरु मुझे नहीं मिल जाते।

फिर कुछ रुककर मृगाक्षी बोली, "मुझे अपने पिता जी का कथन स्मरण आ रहा है, एक दिन उन्होंने विशालाक्षी के मन्दिर के प्रांगण में बैठे हुए मुझे कहा था बेटी, तुम्हारा भविष्य तन्त्र के क्षेत्र में अत्यधिक उज्ज्वल है, तन्त्र ही तुम्हारा पथ है, मंज़िल है और अन्तिम पड़ाव है। निश्चित रूप से बाईसवें साल के अन्त में तुझे तेरा वास्तविक गुरु प्राप्त होगा, जो कई जन्मों से तेरा गुरु रहा है। या तो तू उसे ढूंढ़ लेगी या वह तुझे बुला लेगा। इस समय मेरा बाईसवां साल उतर रहा है, और मुझे लग रहा है कि मेरे पिताश्री का कथन सत्य होने जा रहा है।"

"यह बात तो निश्चित है कि मेरे जो भी गुरु होंगे, वे तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय और भगवान शिव के साक्षात स्वरूप होंगे। मुझे स्वप्न में एक बार उनकी झलक मिल गई है। मैंने देखा था कि मैं मां विशालाक्षी के चरणों में बैठी हुई हूं और उनसे प्रार्थना कर रही हूं कि मुझे दीक्षा दें, पूर्णता दें, सफलता दें।"

"तभी जगत जननी मां विशालाक्षी मुझे खींचकर अपने पास बिठा लेती हैं और सिर पर हाथ फेरती हुई कहती हैं, जब तू तन्त्र मार्ग पर क़दम बढ़ाएगी, तब प्रारम्भिक गतिरोध के बाद एक अद्वितीय संन्यासी के द्वारा तुझे दीक्षा मिलेगी और यही तेरे तन्त्र-गुरु होंगे। ये सामान्य संन्यासी नहीं अपितु भगवान शिव के साक्षात स्वरूप होंगे और ऐसा कहते-कहते मां ने, एक तरफ़ संकेत कर दिया।"

"मैंने देखा, पीछे की ओर श्वेत हिम से ढका हुआ पहाड़ है, उसकी तलहटी से कुछ ऊपर एक भव्य आश्रम है, आश्रम के मध्य में एक विशाल पेड़ के नीचे श्वेत शिला पर संन्यासी बैठे हुए हैं। अद्वितीय तेजस्वी रूप, प्रखर और चुम्बकीय व्यक्तित्व, भव्य आकृति और बलिष्ठ-सुगठित शरीर। लम्बी-काली जटाएं पीठ तक फैली हुई थीं, ललाट पर कुंकुम का सुन्दर तिलक लगा हुआ था, कमलवत नेत्र बन्द थे, व्याघ्र-चर्म पर बैठे हुए वे शंकर का साक्षात स्वरूप नज़र आ रहे थे। उनके बाएं पार्श्व की तरफ़ बहुत ऊंचाई से एक झरना गिरता हुआ अत्यधिक सुन्दर आकर्षक दिखाई दे रहा था, संन्यासी के दाहिनी ओर एक छोटा-सा मृग-छौना बैठा हुआ टुकुर-टुकुर संन्यासी के तेजस्वी चेहरे की ओर देख रहा था। आश्रम के मुख्य द्वार के आगे भव्य नदी बह रही थी और आश्रम में शिष्य-शिष्याएं आते-जाते दिखाई दे रहे थे। सभी के चेहरे देदीप्यमान थे, उनके मुंह पर एक अपूर्व आभा और ज्ञान की चमक दिखाई देती थी, ऐसा लग रहा था कि वे सभी सन्तुष्ट हैं।"

मृगाक्षी ने कहा, "यह स्वप्न मेरे मानस में स्पष्ट है, मैंने उस संन्यासी की ओर देखकर भक्ति-भाव से प्रणाम किया, मेरा सिर स्वतः ही उनके चरणों में झुक गया। ऐसा लगा जैसे मैंने अपना लक्ष्य प्राप्त कर लिया हो, मुझे उस समय ऐसा अनुभव हुआ कि जो कुछ जीवन में प्राप्त करना चाहती हूं, इन्हीं संन्यासी से प्राप्त हो सकता है। मेरे जीवन का लक्ष्य, मेरे जीवन की गति और मेरे जीवन की पूर्णता इसी में समाहित है। निश्चय ही ये मेरे जन्म-जन्म के गुरु हैं और इनके चरणों में बैठने पर ही शीतलता का आभास हो सकता है।"

"मैं उठकर संन्यासी के पास चली गई। मेरा हृदय गद्‌गद हो गया। प्रेम से मेरा गला अवरुद्ध हो गया और मैं प्रणिपात-सी होकर उनके चरणों में झुक

गई। जब मैंने अपना सिर उठाया, तो मैंने देखा कि वे मन्द-मन्द मुस्कुरा रहे हैं और अपना दाहिना हाथ ऊपर उठाकर मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं, मैं अपने-आप में ही धन्य हो गई। यहां से उठकर मैं मां के पास पहुंची, तो मां विशालाक्षी मुस्कुरा रही थी। मुझे कहा यही तेरे गुरु हैं, इनके चरणों में ही तू तन्त्र के क्षेत्र में सफलता प्राप्त करेगी। जीवन का लक्ष्य पहचान सकेगी और वह सब-कुछ प्राप्त कर सकेगी, जो तेरा अभीप्सित है।"

"तभी मेरी अचानक आंख खुल गई, मैंने देखा कि मेरा सिर पिता जी की गोदी में रखा हुआ है और वे करुणा से मेरे सिर पर हाथ फेर रहे हैं।"

"मैंने जो स्वप्न आया था, वह उन्हें सुना दिया। पिता जी ने कहा, यह स्वप्न नहीं यथार्थ है। तुम्हारे जीवन में ऐसा ही होगा और जिस दिन ऐसा होगा, वह दिन तुम्हारी दीक्षा का होगा, सफलता का होगा, पूर्णता का होगा।"

मृगाक्षी ने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, "अरविन्द, मैं उस क्षण की प्रतीक्षा में हूं। वह स्वप्न अयथार्थ नहीं हो सकता। निश्चय ही कोई गुरु अवश्य हैं, जो मुझे आवाज़ दे रहे हैं, अदृश्य सत्ता संकेत कर रही है कि अब वह समय आ गया है जब मुझे गुरु-चरणों में पहुंच जाना चाहिए।"

मुझे निश्चित रूप से यहां से चले जाना चाहिए। जब मैंने इस पथ पर पांव बढ़ा ही दिया है, तो फिर सोचना-विचारना क्या, और फिर गुरु तो अप्रत्यक्ष रूप से मेरे आसपास ही विचरण कर रहे होंगे। वे अपने नेत्रों से सब-कुछ देख रहे होंगे। वे अवश्य ही कोई ऐसा संकेत देंगे, जिससे कि मैं उन तक पहुंच सकूं, उनके चरणों में समर्पित हो सकूं, उन पर सब-कुछ न्योछावर कर सकूं।

"अरविन्द, न तो मैं तुझे साथ चलने के लिए कहती हूं और न तुझे रोकती हूं। इस सारी क्रिया में तेरी कोई ग़लती नहीं है। तेरी वजह से ही कोई घटना घटित हुई हो ऐसा तेरा सोचना व्यर्थ है। जो कुछ होता है, उस लीला विहारिणी मां पराम्बा के संकेत से ही होता है। हम तो उसके हाथों की कठपुतलियां हैं। हमारी डोर उसके हाथों में है, वह इस विश्वलीला स्थल पर जिस प्रकार से हमें नचाती है, उसी प्रकार से नाच लेते हैं।"

मैंने एक क्षण के लिए भैरवी की ओर देखा और बोला, "जीवन का

उद्देश्य पूर्णता है, कायर लोग ही अपूर्ण जीवन के साथ समाप्त हो जाते हैं। किसी भी विशिष्ट क्षेत्र में अन्तिम लक्ष्य तक पहुंच जाना ही पूर्णता है और मैं निश्चित रूप से इस पूर्णता के तट पर तुम्हारे साथ हूं, जो तुम्हारा उद्देश्य है वही मेरा उद्देश्य है। जो तुम्हारा लक्ष्य है, वही मेरा लक्ष्य है और मैं ऐसा अनुभव कर रहा हूं कि जो तुम्हारे गुरुदेव हैं, सम्भवतः वे ही मेरे गुरुदेव हैं। इस बात की वास्तविकता तो गुरुदेव ही बता सकेंगे, पर मुझे आभास हो रहा है कि तुम्हारे और मेरे सूत्र कहीं-न-कहीं थोड़े बहुत जुड़े हुए अवश्य हैं।

उषाकाल प्रारम्भ हो गया था। ऐसा लग रहा था जैसे दसों दिशाओं में प्रकृति ने गुलाल बिखेर दी हो। पक्षियों की चहचहाहट सुनाई देने लगी थी, धीरे-धीरे रात्रि समाप्त हो रही थी, और उषा पूर्ण सजधज के साथ पृथ्वी पर उतर रही थी।

थोड़ी ही देर में पूर्व क्षितिज से सूर्य ने झांककर हम सबको देखा। मैं और भैरवी तब तक नदी में स्नान कर कपड़े बदल चुके थे। सूर्य को अर्घ्य दिया और नवीन जीवन प्रारम्भ करने का आशीर्वाद प्राप्त किया।

भैरवी ने कहा, "पहले महाश्मशान चलना है, कायरों की तरह छुपकर चले जाना किसी प्रकार से ठीक नहीं। 'न दैन्यं पलायनं'।"

हम दोनों महाश्मशान में आधार कक्ष के बाहर आकर खड़े हो गए। तब तक समस्त भैरव-भैरवियां अपने-अपने स्थान पर बैठ गई थीं। भैरवी ने बताया था कि पिछले कई वर्षों से यह परम्परा थी कि प्रातःकाल सूर्योदय के समय स्नान आदि से निवृत्त होकर कपालनाथ आधार कक्ष के बाहर अपने-अपने स्थान पर बैठ जाते थे, और सभी भैरव-भैरवियां महानिशा के अपने प्रयोगों, प्रयासों और सफलताओं के बारे में उनको बताते थे। तब कपालनाथ उन्हें उस दिन की क्रिया-पद्धति समझाते, जिससे कि वे सभी अपनी-अपनी साधनाओं में रत हो सकें।

मेरे आगे-आगे भैरवी थी और मैं किंचित पीछे चल रहा था। मेरे मन में किसी प्रकार का भय या लघुता का भाव नहीं था। मेरे पैरों में दृढ़ता और मन में कठोरता थी। भैरवी व्यास पीठ के पास आकर खड़ी हो गई, जो पूर्णतः

नर-मुंडों से ही निर्मित था और मानव अंतड़ियों से परस्पर गुंथा हुआ था। आसन के स्थान पर मानव-चर्म बिछा हुआ था, जिस पर कपालनाथ बैठकर साधना संकेत समझाते, पथ-प्रदर्शन करते और प्रत्येक बात ध्यान से सुनते।

भैरवी ने एक सेकेंड के लिए उपस्थित सभी भैरव-भैरवियों पर दृष्टि डाली और फिर बोली, "आप सभी मेरे भाई-बहन की तरह हैं। यह मेरा सौभाग्य था कि कुछ समय आपके बीच बिताने का अवसर मिला और इस अवधि में आप लोगों से बहुत अधिक प्यार, स्नेह और अपनत्व पाया। यही नहीं, अपितु साधना के क्षेत्र में भी आप सबने थोड़े-बहुत रूप में मेरा मार्गदर्शन किया ही था।"

"पर पिछले दिन जो कुछ घटित हुआ, वह महाभैरव का संकेत ही रहा होगा, ऐसा मैं अनुभव कर रही हूं। निश्चय ही औघड़ कपालनाथ मेरे गुरुवत थे और तन्त्र के क्षेत्र में उनसे मैंने बहुत कुछ प्राप्त किया था, परन्तु उनकी आंखों में धीरे-धीरे कामातुरता व्याप्त हो रही थी और कामेच्छा महाकालेश्वर भैरव का अपमान कहा जाता है। यह मृत्यु का निमन्त्रण है और इस कामातुरता ने ही सम्भवतः औघड़ कपालनाथ के प्राण लिये हों।"

"मैं किसी भी प्रकार से उनका अन्त नहीं चाहती थी। मैं तो इस युवक की मृत्यु भी नहीं चाहती थी। नर-बलि मेरी दृष्टि में तुच्छ है, हेय है और यही भावना अप्रत्यक्ष रूप से उस समय मेरे ऊपर हावी हो गई, और जिस समय औघड़ खड्ग प्रहार करने जा रहा था कि मैंने इसे एक तरफ़ खींचकर बचा लिया। इसके पीछे न तो कोई मेरा स्वार्थ था और न किसी प्रकार की कोई इच्छा ही। मैं मृत्यु की अपेक्षा जीवन को ज़्यादा महत्त्व देती हूं।"

औघड़ कपालनाथ के साथ जो कुछ घटित हुआ उसके पीछे अवश्य कोई अदृश्य सत्ता रही होगी, अवश्य ही महाकाल की ऐसी इच्छा रही होगी, तभी वे भगवान भैरव में लीन हो गए। इसका जितना दुःख आपको है, शायद उससे भी ज़्यादा दुःख मुझे है। पर अब मैं यहां और नहीं रहना चाहती, मेरा गन्तव्य कहीं और है, मेरा पथ कुछ अलग है, इसलिए इस महाश्मशान के सारे अधिकार शूलपाणि के हाथों में सौंप रही हूं। भविष्य में वही तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करेगा, वही तुम्हारा नियन्ता होगा।" और ऐसा कहते-कहते भैरवी ने शूलपाणि को

संकेत से अपने पास बुलाकर खड़ा कर दिया।

ऐसा कहते-कहते भैरवी ने शूलपाणि को उस व्यास पीठ पर बिठा दिया तथा मुझे संकेत किया कि मैं हाथ के अंगूठे को चीरकर रक्त से उसका तिलक करूं।

मैं आगे बढ़ा। एक तरफ़ रखी हुई छुरी से दाहिने अंगूठे को थोड़ा-सा चीरा और छलछलाते हुए रक्त से उसके मस्तक पर तिलक कर संकेत दिया कि अब शूलपाणि ही इस व्यास पीठ के अधिकारी हैं।

भैरवी आगे बढ़ी, उसने वहां से किसी प्रकार का कोई साधन या वस्तु अपने हाथ में नहीं ली। तान्त्रिक के तो दसों दिशाएं ही वस्त्र होते हैं, पृथ्वी ही बिछौना और आकाश ही ओढ़ने का कम्बल होता है, प्रकृति उसकी पूरक होती है, फिर इन लौकिक पदार्थों की तान्त्रिक के लिए क्या उपयोगिता?

आगे-आगे भैरवी दृढ़ क़दमों से अज्ञात दिशा की ओर बढ़ रही थी और मैं उसके पीछे-पीछे छाया की तरह गतिशील था। कोई रास्ता स्पष्ट नहीं था, कोई विद्या निर्धारित नहीं थी, कोई संकेत पास में नहीं था। फिर भी भैरवी इस प्रकार से आगे बढ़ रही थी मानो सारा रास्ता उसे ज्ञात हो।

मैंने एक-दो बार मार्ग में पूछा भी, "मृगाक्षी, तुम किधर जा रही हो, कोई भी यात्रा करने से पूर्व एक दिशा-निर्धारण तो होता ही है। एक निश्चित लक्ष्य तो होता ही है कि वहां तक पहुंचना है। तुमने अपने मन में कोई तो लक्ष्य बनाया ही होगा। कुछ तो सोचा ही होगा कि किस स्थान पर पहुंचना है।"

मैं देख रहा था कि फूल की तरह कोमल मृगाक्षी का चेहरा मुरझा गया है, पांवों में गठनें पड़ गई हैं, चलते समय गति में शिथिलता स्पष्ट दिखाई देने लगी है।

प्रातः हुआ, दोपहर हुई और अब तो दिन ढलने लगा है, न तो कहीं विश्राम किया है और न अन्न का एक दाना ही मुंह में गया है।

मैंने एक-दो बार दबी ज़बान से प्रतिवाद भी किया, "मृगाक्षी, विश्राम भी तो करना आवश्यक है। तू थक गई होगी, थोड़ी देर सुस्ता लें, फिर तरो-ताज़ा हो जाएंगे और आगे बढ़ सकेंगे।"

सूर्य अस्ताचल की ओर ढल रहा था, अब कहीं-न-कहीं विश्राम करना आवश्यक था। पास में ही एक छोटा-सा गांव दिखाई देने लगा था, किसी-किसी घर में दीया जल गया था। हम गांव के पास पहुंचे। एक ग्रामीण को रोककर पूछा, "यह कौन-सा गांव है, यह रास्ता किधर जाता है?"

ग्रामीण ने उत्तर दिया, "यह रास्ता तो उत्तराखंड की ओर जाता है। आप लोगों को यह भी पता नहीं कि आप किस रास्ते से जा रहे हैं, और यह पणमा गांव है। आप कौन हैं?"

मैंने उत्तर दिया, "हम तो राहगीर हैं और रास्ता भूल गए हैं, इसीलिए पूछ रहे थे। क्या इस गांव में कोई ब्राह्मण का घर है?"

उसने संकेत से एक घर की ओर इंगित कर दिया, हम दोनों उस तरफ़ ही बढ़ गए।

छोटा-सा गांव था, और किनारे पर वह छोटा-सा घर था। गोबर से लिपी हुई कच्ची दीवार और बाहर दरवाज़े से दोनों ओर सफ़ेद रंग से मांडणे मड़े हुए। निश्चय ही यह कोई ब्राह्मण का ही घर होना चाहिए। मैंने दरवाज़े पर खड़े होकर अलख लगाई — अलख निरंजन!

ब्राह्मण बाहर आया। चालीस-पैंतालीस वर्ष का प्रौढ़ हम दोनों को देखकर थोड़ा-सा अचकचा गया, फिर बोला, "आइए महाराज, अन्दर आइए।"

हम दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, तो किंचित हंस दिए। दोनों ही धूल से अटे हुए थे, चलते-चलते शरीर थक गया था, चेहरे पर थकावट साफ़ दिखाई दे रही थी, हम दोनों अन्दर आंगन में आ गए, देखा कि दो कमरों का छोटा-सा मकान है, जिस पर मिट्टी के कोल्हू पड़े हुए हैं। बड़ा-सा आंगन है, जिसके एक तरफ़ वृद्धा मां और शायद ब्राह्मण की पत्नी बैठी हुई थी। एक अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की कन्या बाहर बैठी खाना पका रही थी और आंगन के दूसरी ओर दो बालक खेल रहे थे। शायद यही उसका परिवार था।

"बैठिए महाराज, काफ़ी दूर से चलकर आए हो?"

मैंने कहा, "हां भाई, चलते-चलते काफ़ी देर हो गई, तो हमने सोचा किसी ब्राह्मण के घर पर ही रात काट लें। हम किसी ब्राह्मण के अलावा और किसी

का अन्न स्वीकार करते नहीं, अगर तुम्हारी इच्छा हो तो हम आज की रात यहां विश्राम कर लें।"

"मेहमान और परमेश्वर तो एक समान होते हैं। फिर आपने तो साधु वेश पहन रखा है। मैं तो अचरज कर रहा था कि आप दोनों की इतनी छोटी उमर और भगवे कपड़े धारण करना क्या कोई ख़ास मजबूरी थी?"

मैंने कहा, "कोई ख़ास कारण नहीं। ईश्वर ने चाहा और हमने धारण कर लिया। हम तो उत्तराखंड की ओर जा रहे थे कि बीच में तुम्हारा गांव आ गया, इसलिए रुक गए।"

मैंने घर के मुखिया से पूछा, "क्या करते हो? क्या नाम है तुम्हारा? उसने उत्तर दिया, 'मैं तो दो-तीन पीढ़ियों से इसी गांव में हूं और ब्राह्मण वृत्ति से आजीविका निर्वाह करता हूं। मेरा नाम पूर्णानन्द है, यह मेरी मां है, वह बहुरिया है, यह बिटिया पारो और ये दो छोटे-छोटे बच्चे हैं, जो उधर खेल रहे हैं। इतना ही मेरा परिवार है।"

फिर बात को आगे बढ़ाता हुआ बोला, "मैं तो खुद संन्यास लेने की सोच रहा था, परन्तु मां ने लेने ही नहीं दिया। मेरी तो इच्छा वेद-शास्त्र में पारंगत होने की थी, पर ऐसा तो मौक़ा ही नहीं मिला। ख़ैर, अपने-अपने करम। अपने-अपने भाग। आज आप घर आए हैं, तो कुछ ज्ञान-चर्चा आपसे ही हो जाएगी, आपसे ही दो आखर सीख लेंगे।"

तब तक पारो ने चूल्हे पर गर्म पानी रख दिया था, पर पूर्णानन्द वह गर्म पानी बाल्टी में लाकर रखते हुए बोला, "आप दोनों स्नान कर लो, धूल से अट गए हो। स्नान करने से ताजगी आ जाएगी। वह उस तरफ़ मड़ैया है, वहां बाई जी स्नान कर लें और आप तो उस तरफ़ पत्थर पर बैठकर ही स्नान कर सकते हो।"

हम दोनों के पास अतिरिक्त वस्त्र भी नहीं थे, हम तो जब महाश्मशान से निकले थे, तो ख़ाली हाथ ही निकल पड़े थे। ब्राह्मण ने सम्भवतः ताड़ लिया, बोले, "पास में तो कपड़े-लत्ते भी नहीं हैं। ऐसे कैसे संन्यासी हो? स्नान करके क्या बदलोगे?"

फिर उसने पत्नी को एक-दो मिनट समझाया और मेरे लिए एक धोती और एक सिला हुआ कुरता ले आया, जो शायद उसे यजमान वृत्ति से कहीं से मिला होगा। मृगाक्षी के लिए उसकी पत्नी ने कपड़े लाकर दे दिए, जो सर्वथा नए थे।

पानी गर्म होने से सारे शरीर की थकावट एकबारगी ही समाप्त हो गई। साबुन से पूरे शरीर को दो बार धोया, तब जाकर जड़ता समाप्त हुई। ब्राह्मण के दिए हुए कपड़े मैंने पहन लिये धोती और कुर्ता, और इस वेश में अच्छा जच रहा था। कुर्ता तो ऐसा मिला हुआ था, मानो मेरे लिए ही सिया गया हो।

तब तक मृगाक्षी भी आ गई थी। शायद उसने बालों को दो-तीन बार साबुन से धोया था, इसीलिए वे बाल चमकीले पीठ पर पड़े हुए अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे।

तब तक पारो ने खाना बना लिया था, हम दोनों ज़मीन पर बिछे आसन पर बैठ गए और ब्राह्मण की पत्नी ने आग्रह कर पूरा भोजन करा दिया।

भोजन के बाद पूर्णानन्द पास में आकर बैठ गए, परिवार के अन्य सदस्य भी घर के काम-काज से निवृत होकर खाट के चारों ओर बैठ गए थे, यद्यपि मैं खाट पर सोना नहीं चाहता था, परन्तु उन्होंने ज़बरदस्ती मेरे लिए खाट बिछा दी थी और उसी पर बैठने का आग्रह किया था।

पूर्णानन्द ने पूछा, "महाराज किधर से आए हो, किधर को जा रहे हो, ये आपकी बहन है या शिष्या? इस छोटी-सी उम्र में आप दोनों ने संन्यास धारण किया है तो ज़रूर कोई कारण होगा। मुझे लगता है कि आप लोगों ने कोई विद्या ज़रूर प्राप्त की होगी। मुझे भी एक-दो चीज़ें सिखा दो, तो इस गांव में मेरी भी कुछ इज़्ज़त-आबरू बढ़ जाए।"

वह शायद बातूनी था। मुझे तो ऐसा ही लग रहा था। फिर अपनी बात आगे बढ़ाता हुआ बोला, "मैं तो तीन पीढ़ी से यहां पर हूं और हमारे परिवार ने तो तीन पीढ़ियों से ग़रीबी ही देखी। आपके पास ऐसा कोई टोना-टोटका हो, जिससे घर में लक्ष्मी स्थायी रूप से आकर टिक जाए, तो बड़ी कृपा होगी।

बिटिया भी विवाह के लायक हो गई और इसके लिए भी कोई ढंग का वर ढूंढ़ना मुश्किल हो रहा है। कुछ तो घर में होगा तभी तो विवाह करेंगे।"

मैं चुपचाप उसकी बातें सुन रहा था, अपनी तरफ़ से हां-हूं करता हुआ कुछ जवाब देता रहा। पूर्णानन्द ने आगे कहा, "आप कहें तो मैं साल-दो साल के लिए संन्यास धारण कर लूं। शायद आपसे कुछ सीखने को मिल जाए। जब ऐसी बिटिया आपकी शिष्या बनी है, तो ज़रूर आपके पास कोई ऊंची विद्या है।"

मैंने जवाब दिया, "पंडित जी अभी तो कोई ऊंची विद्या हम नहीं सीख पाए हैं, परन्तु भरोसा है कि ज़रूर कुछ-न-कुछ प्राप्त हो ही जाएगा। जब हमें कोई विद्या मिलेगी, तो आपके गांव की तरफ़ ज़रूर आएंगे और आपको सिखाएंगे। अब मेरे सोने का समय हो गया है, और आप कहें तो मैं सो जाना चाहता हूं।"

घर वाले सभी बेमन से उठ खड़े हुए, जहां पर पारो का बिछौना बिछा था, उसके पास ही मृगाक्षी का बिछौना भी बिछा दिया गया था। मैं सोच रहा था मृगाक्षी के साहस और जीवट शक्ति की। एक सुकुमार युवती होने के बावजूद उसमें जो दृढ़ता और हिम्मत है।

यद्यपि मैं इसके जीवन से परिचित नहीं था, मुझे पता नहीं था कि यह किसकी लड़की है, किस घराने से सम्बन्धित है, पर यह बात निश्चित थी कि किसी ऊंचे घराने से ही इसका सम्बन्ध होगा। इसमें जो गरिमा है, हिम्मत और साहस है, बातचीत का जो सलीका है, वह इसका प्रमाण है कि यह घटिया और ओछे खानदान से सम्बन्धित नहीं हो सकती।

इन्हीं ख़्यालों में खोया हुआ कब मुझे नींद आ गई कुछ पता ही नहीं चला। जब आंख खुली तो थोड़ा-थोड़ा अंधेरा छंटने लगा था, पक्षी चहचहाने लगे थे। मैं उठा और गांव के बाहर नदी के किनारे स्नान किया, सन्ध्यादि से निवृत्त होकर उगते हुए सूर्य को अर्घ्य दिया और अपने इष्ट भगवान पाशुपतिनाथ की प्रार्थना की।

कल के पहने हुए कपड़े मैंने रात को धोकर सुखा दिए थे, उन्हें आज पहन लिया और ब्राह्मण के दिए हुए वस्त्र धोकर फैला दिए थे। जब तक मैं सन्ध्यादि से निवृत्त हुआ, तब तक वे भी सूख गए थे। जब मैं कपड़े समेट कर घर लौटा, तब तक मृगाक्षी भी स्नान आदि से निवृत्त होकर तैयार हो गई थी और आगे चलने के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रही थी।

मृगाक्षी ने मुझे चलने का संकेत किया और हम दोनों गांव से बाहर निकल गए। मैंने पूछा, "मृगाक्षी हम जिस रास्ते पर चल रहे हैं, क्या यह रास्ता सही है? और हम किस जगह जा रहे हैं? उसका कोई अता-पता ज्ञात है? अंधेरे में चलते रहने की क्या तुक है? इससे तो हम वाराणसी चले जाएं वहीं पर गंगा के किनारे आश्रम बना लेंगे और साधना सम्पन्न करेंगे।"

मृगाक्षी ने किंचित रोष से मेरी ओर देखा, बोली, "यदि तुम्हें वाराणसी जाना है, तो यहीं से मुड़ सकते हो। मैं समझती हूं कि तुम्हारे घर का मोह तुमसे छूटा नहीं है और मोहग्रस्त संन्यासी निश्चय ही पतन के खड्ड में गिरता ही है। संन्यासी को न तो किसी से लाग-लपेट होनी चाहिए और न किसी से मोह। स्वप्न में भी उसके द्वारा असत्य भाषण नहीं होना चाहिए। कल भी ब्राह्मण के यहां तुमने थोड़े-बहुत रूप में असत्य भाषण किया, मुझे यह ज़्यादा अच्छा नहीं लगा।"

"मेरी बात तुम्हें बुरी लगी होगी, परन्तु है सही। मैंने जो कुछ सोचा है, जो कुछ करना है, वह करूंगी ही। जल्दी ही हमें सही दिशा-निर्देश मिल जाएगा और यह लक्ष्य भी प्राप्त हो जाएगा जो कि मेरे मन में स्पष्ट है।"

उसने फिर कहा, "इसी रास्ते पर शायद सात या आठ किलोमीटर के अनन्तर, रास्ते से थोड़ा-सा हटकर कोई कुआं है उसके बाईं ओर तीन शालवल पेड़ हैं। वहां पर कुछ क्षण रुकने से संकेत मिल जाएंगे, ऐसा मुझे अनुमान हो रहा है।"

"तुम्हें यह अनुमान कैसे हो गया? क्या किसी ने कहा?"

मृगाक्षी मुस्कुराकर चुप रह गई। मैं तो अपने जीवन में पहली बार इस रास्ते पर आई हूं, और इस रास्ते का कुछ भी तो मुझे ज्ञात नहीं है, पर यदि

जैसा मैंने बताया है, वैसा ही मार्ग में मिल जाता है, तो मैं समझूंगी कि जो कुछ मुझे संकेत मिला है, वह सही है और सही रास्ते पर हम चल रहे हैं।

हम दोनों मौन भाव से बराबर आगे बढ़ रहे थे। मैंने अनुभव किया कि मृगाक्षी अत्यन्त शान्त और बहुत ही कम बोलने वाली लड़की है। जब तक बहुत ज़रूरी न हो, वह नहीं बोलती, व्यर्थ में बातचीत करना उसे पसन्द नहीं है। मैं बराबर उसके साथ उस पगडंडी पर आगे की ओर बढ़ रहा था।

अब शायद पहाड़ी क्षेत्र थोड़ा-थोड़ा प्रारम्भ हो गया था। बहुत दूर ऊंचे पर्वत दिखाई दे रहे थे। रास्ते के दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे पेड़ झूमते हुए पौधे और फूलों से लदे हुए पादप मन को प्रसन्न कर रहे थे। ठंडी हवा इस बात की परिचायक थी कि यह पहाड़ों को छूकर इस तरफ़ आ रही है, तभी इसमें इतनी ठंडक, इतनी ताज़गी और इतनी मस्ती है।

दिन के लगभग ग्यारह बज गए होंगे, और जैसा मृगाक्षी ने बताया था ठीक वैसा ही दृश्य आंखों के सामने प्रकट हुआ। पगडंडी से थोड़ा-सा हटकर कुआं था, जिसकी जगत पर खड़ी ग्रामीण स्त्रियां पानी भर रही थीं। कुएं से कुछ हटकर आठ-दस ग्रामीण एक बड़े से पेड़ के नीचे बैठे वार्तालाप में संलग्न थे, इधर-उधर कुछ बच्चे दौड़ते थे। कुल मिलाकर मन को अच्छा लगने वाला दृश्य था।

कुएं से हटकर बाईं ओर तीन शालवल पेड़ खड़े थे, केवल तीन ही, और तीनों एक-दूसरे की सीध में एक ही पंक्ति में। जैसा मृगाक्षी ने बताया था, ठीक वही दृश्य मेरी आंखों के सामने था। इसका तात्पर्य मृगाक्षी को कोई विशेष सिद्धि प्राप्त है, जिसके द्वारा रास्ते का ज्ञान पहले से ही हो जाता है। अभी तक तो उसने इसकी कभी चर्चा की नहीं। और चर्चा भी कब? अभी तो इसका मेरा परिचय ही कितना है, पर यह बात निश्चित है कि यह मृगाक्षी जितना बाहर दिखाई दे रही है, उससे कई गुना ज़्यादा अन्दर है।

मृगाक्षी उन शालवल पेड़ों की ओर बढ़ गई। इससे पहले वह कुएं के पास गई, बहते हुए पानी से अपने हाथ-पैर धोए और पानी पिया। ग्रामीण स्त्रियां अचकचाकर हम दोनों को देख रही थीं। उन्होंने यह तो अनुमान लगा लिया था कि हम दोनों संन्यासी हैं, पर इतनी कम उम्र में संन्यासी होकर विचरण

कर रहे हैं, यह उनके लिए आश्चर्य था।

बीच वाले पेड़ के नीचे मैंने अपनी धोती फटककर बिछाई और इस पर एक किनारे हटकर मृगाक्षी बैठ गई। मैं भी दूसरी ओर बैठ गया। मृगाक्षी ने कहा, मुझे सही संकेत मिला था। जब मैं सुबह स्नान कर पूजा के लिए बैठी, तो मैंने अपने अदृष्ट गुरु को स्मरण करते हुए कहा, आप सर्वज्ञ हैं। मैं तो कई-कई जन्मों से आपकी शिष्या हूं, मैं बीच रास्ते में भटक रही हूं, आप मुझे संकेत दें, मुझे किस तरफ़ आना है।

"तभी मेरे शरीर को करेंट-सा लगा, ऐसा लगा जैसे कि पूरे शरीर में विद्युत-प्रवाह हो गया हो और इसी विद्युत-प्रवाह में मुझे यह दृश्य दिखाई दिया। यह दृश्य ज्यों का त्यों मेरी आंखों के सामने था। तिल-भर भी इसमें अन्तर नहीं है और एक मधुर आवाज़ मेरे कानों में गुंजरित हो रही थी। मृगाक्षी, तुम्हें इसी रास्ते पर आगे बढ़ना है, तुम सही पगडंडी पर चल रही हो, अगला संकेत तुम्हें इसी कुएं के किनारे मध्य में खड़े शालवल पेड़ के नीचे बैठने पर मिलेगा। मैं तुझे आवाज़ दे रहा हूं। तू किसी बात की चिन्ता मत कर।"

"सच कहूं, अरविन्द, मुझे लगा कि मैंने अपने जीवन में पहली बार यह मधुर आवाज़ सुनी है, पर इसके साथ-ही-साथ मुझे ऐसा भी लगा कि यह आवाज़ तो मेरे सारे शरीर में, तन-मन में रची-पची है। सारा शरीर इस आवाज़ से आपूरित है। यह आवाज़ मुझे परिचित-सी लगी जैसे कि मैंने हज़ारों बार इस आवाज़ को सुना है, और ज़रूर यह आवाज़ मेरे गुरु की थी, वही गुरु जो मेरे सर्वस्व हैं, मेरे प्राण, मेरी चेतना और मेरी धड़कन हैं।" और कहते-कहते भाव-विभोर होकर उसने आंखें मूंद ली, फिर एक क्षण के बाद चैतन्य होकर बोली, "अरविन्द, गुरुदेव ने मुझे तू कहकर पुकारा जैसे कि कोई अत्यधिक प्यार से अपने स्वजन को पुकारता है। उन्होंने कहा, मृगाक्षी, तू सही पगडंडी पर है। मैं तुझे आवाज़ दे रहा हूं।"

मैं चुपचाप बैठा हुआ उसकी बातें सुन रहा था। इसमें गुरुदेव के प्रति कितनी अधिक भक्ति और अनन्यता है, कितनी अधिक श्रद्धा और सम्मान है, उनके प्रति कितनी अधिक बेचैनी और तड़प है। यदि इसके शरीर पर पंख लगे होते, तो निश्चित ही यह एक क्षण में ही उड़कर उनके पास पहुंच जाती।

ऐसी ही अनन्यता तो शिष्य में होनी चाहिए।

तभी मृगाक्षी उठ खड़ी हुई, ऐसा लगा कि जैसे उसे कोई संकेत मिल गया हो। वह बिल्कुल सीधी खड़ी हो गई। अपने दोनों हाथ अपने सीने के समानान्तर खड़े कर दिए जैसे कि कई विद्युत-प्रवाह ग्रहण कर रही हो। वह धीरे-धीरे कभी बाएं और कभी दाएं घूम रही थी। वह बोली, "अरविन्द, मुझे स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं। यही रास्ता है, इसी रास्ते पर जब हम आगे बढ़ेंगे, तो बाईं ओर एक रास्ता मिलेगा। उस रास्ते पर हमें आगे बढ़ना है। जब मैं अपने हाथ बाईं ओर घुमाती हूं, तो मुझे आवाज़ स्पष्ट सुनाई देती है, पर ज्यों ही मैं दाहिनी ओर घुमाती हूं, तो वह आवाज़ बहुत धीरे हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि गुरुदेव का आश्रम बाईं ओर है; जहां से उनके संकेत बराबर मेरी उंगलियों को स्पर्श कर रहे हैं, ज्योंही मैं बाईं ओर उंगलियां घुमाती हूं, तो उनमें विद्युत-प्रवाह बढ़ जाता है। झनझनाहट शुरू हो जाती है, निश्चय ही उसी ओर पहाड़ों के मध्य में कहीं पर गुरुदेव बैठे हुए हैं और मुझे संकेत दे रहे हैं।

मैं स्वयं भी उठ खड़ा हुआ और बाईं ओर मुड़कर अपने हाथ फैला दिए, पर मेरे हाथों में तो किसी प्रकार की कोई झनझनाहट नहीं हुई, मेरे हाथों में तो किसी प्रकार विद्युत-प्रवाह अनुभव नहीं हुआ, क्या मुझे गुरुदेव की तरफ़ से कोई अनुभूति नहीं होती, क्या मैं किसी योग्य नहीं हूं कि गुरुदेव मुझे संकेत दें? मैं एक तरफ़ खड़ा हो गया।

मृगाक्षी उस बिछी धोती पर ही बाईं ओर को मुंह कर पद्मासन में बैठ गई। उसके नेत्रों से ऐसा लग रहा था जैसे वह गहरी समाधि में चली गई है, ज़रूर वह कोई विशेष साधना के माध्यम से सम्पर्क स्थापित कर रही है। मैं चुपचाप बैठा हुआ उसके चेहरे की ओर देख रहा था।

मृगाक्षी का शरीर थोड़ा-सा कम्पित हुआ। ऐसा लगा कि बराबर विद्युत-प्रवाह उसके शरीर को स्पर्श कर रहा है। बीच-बीच में रह-रहकर उसका शरीर थिरक जाता। उसकी आंखों से ऐसा लग रहा था जैसे वह कुछ दृश्य, कुछ घटना देख रही है।

उसने आंखें खोल दीं। पास पड़े हुए वस्त्र से अपनी आंखें पोंछी और बोली, "गुरुदेव ने साक्षात उपस्थित होकर दर्शन दिए हैं। मैं तो धन्य हो गई,

कितना सुन्दर बलिष्ठ और आकर्षक शरीर है उनका, कितने सुन्दर और तेजस्वी नेत्र हैं उनके, चेहरे पर कितनी अधिक ज्ञान की गरिमा और प्रभामंडल है उनके। वास्तव में वे अद्वितीय हैं, युग पुरुष हैं, सर्वश्रेष्ठ हैं, मैं तो अपने पास उन्हें खड़े हुए देखकर कृतकृत्य हो गई।

"अरविन्द, वे मुझे बुला रहे हैं, हम दोनों को बुला रहे हैं। मेरे साथ तुझे भी आने के लिए कहा है। उन्होंने स्पष्ट संकेत दिया है कि हमें किस रास्ते से चलना है, किस तरफ़ जाना है और कहां रुकना है। अभी शायद तीन-चार दिन लग जाएंगे, उनके आश्रम तक पहुंचने में। पर मेरी आंखों के सामने सब कुछ स्पष्ट है। रास्ता पूरी तरह से मुझे ज्ञात हो गया है। हिमालय के मध्य में स्थित उनका आश्रम अत्यन्त भव्य और अद्वितीय है। जैसा मैंने दो-तीन दिन पहले उनका आश्रम देखा था वही आश्रम है, वैसा ही आश्रम है।

"अरविन्द, तुझे तो प्रसन्नता से नाच उठना चाहिए। गुरुदेव ने आग्रह करके कहा है कि अरविन्द को भी कह देना कि वह यहां आवे। मैं उसे कई जन्मों से प्यार करता रहा हूं। सच अरविन्द, तेरे नाम से तुझे पुकारा है। तुझे बुलाया है। वास्तव में ही गुरुदेव की हम दोनों पर असीम कृपा है, वे यहां स्वयं उपस्थित हुए हैं।"

मृगाक्षी चलने के लिए तैयार हो गई। मेरे मन में एक क्षण के लिए प्रसन्नता की हिलोर उठी कि गुरुदेव ने मेरे नाम से मुझे पुकारा, मुझे अपने पास बुलाया, उन्होंने कहा कि मैं तो उसे कई वर्षों से प्यार करता आ रहा हूं, तो ज़रूर पिछले जन्म में उनका सम्बन्ध रहा होगा। पर फिर मुझे उनकी आवाज़ क्यों नहीं सुनाई देती? जिस प्रकार से मृगाक्षी को संकेत मिल रहे हैं, उसी प्रकार से मुझे संकेत क्यों नहीं मिल पाते? जिस प्रकार से ध्यान में मृगाक्षी को दर्शन दिए हैं, उसी प्रकार से मेरी आंखों के सामने साकार क्यों नहीं हो जाते? मैंने पिछले जीवन में कोई बहुत बड़ा पाप किया होगा। तभी तो उनकी आवाज़ सुनाई नहीं पड़ रही है, उनके संकेत नहीं मिल रहे हैं।

मृगाक्षी ने कहा, "तू बेकार चिन्ता कर रहा है, न तो तूने कोई पाप किया है और न गुरु के प्रति कोई विश्वासघात ही। गुरुदेव तो अथाह-सागर की तरह होते हैं। वे शिष्य की ग़लती को भी अपने-आप में पचा लेते हैं, तू किसी

भी प्रकार से अपने दिल को छोटा मत कर। जब गुरुदेव ने तेरा नाम लेकर आने को कहा है, तो ज़रूर उनके मन में तेरे प्रति बहुत अधिक स्नेह है।"

मैं आश्चर्यचकित रह गया। मृगाक्षी को मेरे मन के भावों का कैसे पता चला? मैं तो होंठों से कुछ बोला ही नहीं था। मेरे मन में कुछ ज़रूर भाव उठ रहे थे कि शायद गुरु के प्रति कोई विश्वासघात तो नहीं हो गया, पर इन विचारों का ज्ञान भैरवी को कैसे हो गया? ज़रूर इसके पास कोई विशिष्ट सिद्धि है, जिसके बल पर मन के भावों को पढ़ लेती है।

मृगाक्षी बोली, "चलो विलम्ब न करें। धूप बढ़ रही है, और हमें जल्दी-से-जल्दी रास्ता पार करना है। यहां से दो मील आगे ही बाईं ओर को रास्ता पहाड़ों की ओर जाएगा। हमें उसी रास्ते पर आगे बढ़ना है और शाम होते-होते पुनाचा गांव पहुंच जाना है।"

पुनाचा गांव? तुम्हें इस गांव के नाम का कैसे पता चला? और फिर मैं मन-ही-मन अपने कथन पर लज्जित हो गया, जिसे गुरुदेव की तरफ़ से संकेत मिल रहे हों, रास्ता निर्धारित हो रहा हो, उसे गांव का पता तो चल ही गया होगा। जो मेरे मन के भावों को पढ़ सकती है, वह रास्ते के बारे में या गांव के बारे में नहीं जान सकती?" और मैं मृगाक्षी के पीछे-पीछे चल पड़ा।

कुएं के पास से होकर हम उस रास्ते पर गांव से बाहर हो गए। यह सारा क्षेत्र प्रकृति की दृष्टि से अत्यधिक समृद्ध और वैभवशाली था। हरे-भरे आकाश को छूते हुए पेड़ अत्यन्त ही सुन्दर लग रहे थे। छोटी-छोटी वनस्पतियां और फूलों से लदे हुए पौधे मन को सम्मोहित कर रहे थे। हम दोनों अपने-आप को कल की अपेक्षा आज ज़्यादा तरो-ताज़ा अनुभव कर रहे थे। गुरुदेव ने स्पष्ट संकेत दे दिया था, इसका मतलब है कि हमारा लक्ष्य निर्धारित है, हमारा रास्ता स्पष्ट है और फिर गुरुदेव की आज्ञा मिल चुकी है कि मैं मृगाक्षी के साथ ही उनके चरणों में पहुंचूं। ज़रूर इसके पीछे अदृष्ट संकेत है, जो अभी नहीं खुल रहा है, पर अवश्य ही वह होगा ही, जो मेरे मन में है।

हम दोनों बराबर आगे बढ़ रहे थे। कभी मैं किलककर आगे हो जाता, तो कभी वह दौड़कर मुझसे आगे निकल जाती। ऐसा लगता कि जैसे हम दोनों बचपन की ओर लौट गए हों। लगभग दो-तीन मील ही गए होंगे कि

दाहिनी ओर से एक नदी बहती हुई मिली। नदी का पानी इतना अधिक स्वच्छ था कि हम उसके किनारे जा बैठे।

फिर उसने नदी के तट पर उसके पानी में घुटनों-घुटनों तक पांव डाल, एक बहुत ही सुन्दर कविता सुनाई, जिसका भाव पूरी तरह से तो मेरी समझ में नहीं आया, पर शायद उसमें प्रकृति की सराहना की गई थी और यह इच्छा व्यक्त की गई थी कि मैं प्रकृति में ही एकाकार हो जाऊं। उसमें लीन हो जाऊं। एक प्रकार से उसमें अपने-आप को विसर्जित कर दूं।

यह गीत शायद नेपाली भाषा में था और मैंने अनुमान लगाया कि मृगाक्षी अवश्य ही नेपाल परिवार से सम्बन्धित होगी। परन्तु नेपाली लोगों का जो नैन-नक्श होता है वह इसका नहीं है। उनकी आंखें छोटी-छोटी और पीला-सा चेहरा होता है। वैसा तो कुछ भी इसके चेहरे पर नहीं है। शायद नेपाल की न हो और कोई नेपाली गीत ही याद हो या हो सकता है कि यह भारत और नेपाल की सीमा पर रहने वाले किसी परिवार से सम्बन्धित हो। कुछ भी हो, पर जिस लोच, जिस अदा और जिस माधुर्य के साथ गीत गाया था, वह अपने-आप में लाजवाब था। भैरवी इतना सुन्दर गा भी सकती है, ऐसा मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।

मृगाक्षी ने कहा, "अरविन्द, वह देखो, बाईं ओर रास्ता बदल गया है। हमें उसी रास्ते पर आगे बढ़ना है। मुझे जो दिशा-संकेत मिले थे, वे इसी रास्ते से सम्बन्धित थे।"

हम दोनों लगभग एक घंटा तक उस नदी के किनारे बैठे रहे। समय तो पंख लगाकर उड़ गया, पता ही नहीं चला कि इतना अधिक समय हो गया है। मैं उठ खड़ा हुआ और आगे की ओर उस नवीन रास्ते की तरफ़ बढ़ गया।

लगभग पांच-छः मील ही गए होंगे कि पहाड़ी क्षेत्र प्रारम्भ हो गया था। अब रास्ता स्पष्ट नहीं था। कभी पहले की अपेक्षा पर्वत श्रृंखलाएं कुछ बढ़ गई थीं। कभी हमें पतली-सी पगडंडी पर, पहाड़ की ऊंचाई पर चढ़ना होता तो कभी एक-एक क़दम जमाकर वापिस नीचे की ओर उतरना होता। चढ़ना जितना दुष्कर और कठिन प्रतीत नहीं होता, उससे ज़्यादा उतरना ख़तरनाक लगता। दाहिनी ओर एक पतली-सी पगडंडी ज़रूर थी, पर यह तो बहुत पतली

और अस्पष्ट-सी पगडंडी है, पीछे जो हम रास्ता छोड़ आए थे, वह तो साफ़ था, यह पगडंडी तो इस रास्ते से सम्बन्धित नहीं हो सकती। फिर रास्ता कौन-सा है? हो सकता है, यह पगडंडी ही हो, क्योंकि पहाड़ों पर एक समान रास्ता तो रहता नहीं, कहीं रास्ता चौड़ा और स्पष्ट हो जाता है, तो कहीं वह अत्यन्त संकरा और अस्पष्ट भी।

हम पगडंडी पर बराबर आगे बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे सांझ उतरने लगी, प्रकाश कम होने लगा, यों ही पहाड़ों में अंधेरा जल्दी ही घिरता है, थोड़ी देर में अंधेरा घिर जाएगा फिर क्या होगा? कुछ कहा नहीं जा सकता।

तभी वह पगडंडी थोड़ी चौड़ी हो गई। हमें कुछ आशा बंधी कि शायद यह सही रास्ता हो, दिन का प्रकाश बहुत कम हो गया था और आंखें फाड़ने पर ही आगे कुछ दिखाई देता था। हम उस रास्ते पर मुश्किल से फर्लांग ही चले होंगे कि वह एकदम से रुक गया था। सामने ही बहुत बड़ा गहरा खड्ड था और बहुत नीचे लहराती हुई नदी बह रही थी। यह पगडंडी तो उस खड्ड में नीचे की ओर उतर रही है।

हम दोनों रुक गए तब तक अंधेरा घना हो गया था। अब इस रात्रि में किससे रास्ता पूछें, किस तरफ़ जाएं, कहीं ऐसा न हो कि किसी और संकट से घिर जाएं। अगर असावधानी से किसी खड्ड में गिर गए, तो हड्डियों-पसलियों का भी पता नहीं चलेगा। क्या वापस इस रास्ते पर लौट चलें। पर बीच में तो कोई गांव भी नहीं आया था। रात्रि विश्राम कहां करेंगे?

दूर से, शायद बहुत दूर से किसी व्याघ्र के हुंकारने की आवाज़ सुनाई दी। यह पहाड़ी व्याघ्र इसी प्रकार से हुंकारते हैं और रात्रि को अपने शिकार की टोह में निकलते हैं। शिकार कर, पानी पीने के लिए ऐसी ही किसी नदी के किनारे पर पहुंच जाते हैं, फिर उनकी तो घ्राण-शक्ति बहुत तेज़ होती है। यदि उन्होंने मनुष्य की गन्ध सूंघ ली, तो हम दोनों की मृत्यु निश्चित है। उसकी हुंकार सुनकर मैं अज्ञात आशंका से पीपल के पत्ते की तरह कांप उठा। शायद मृगाक्षी भी मन के किसी कोने में कांप गई थी।

तभी वहां थोड़ी ही दूरी पर एक साया-सा आता हुआ दिखाई दिया। यह साया बिल्कुल नज़दीक आ गया, तो हमने देखा एक अत्यन्त वृद्ध पहाड़ी

व्यक्ति लाठी लिये हमारे सामने खड़ा था। उम्र होगी लगभग अस्सी-पचासी के आसपास। कमर थोड़ी झुक गई थी और लाठी के सहारे चल रहा था।

वह आकर मेरे सामने खड़ा हो गया। सिर के बाल सफ़ेद हो गए थे और तारों के प्रकाश में ये चांद की तरह चमक रहे थे। लम्बी दाढ़ी भी साफ़-साफ़ दिखाई दे रही थी। बोला, "तुम लोग रास्ता भटक गए हो क्या?"

मृगाक्षी ने कहा, "हां बाबा, यह रास्ता हमारे लिए अपरिचित था और हम भटककर इधर आ गए हैं।"

उस बूढ़े ने जवाब दिया, "चलो, मैं तुम्हें रास्ता बता देता हूं।" और यह कहते-कहते वह मुड़कर आगे-आगे चलने लगा।

न तो मुझे कुछ बोलने का अवसर दिया और न ठीक ढंग से मृगाक्षी ही कुछ पूछ सकी। वह बूढ़ा लाठी टेकता हुआ बराबर तेज़-तेज़ क़दमों से आगे-आगे चल रहा था और हम दोनों उसका अनुसरण करते हुए बढ़ते जा रहे थे।

वह बिल्कुल ऐसे रास्ते से हमें ले गया, जो किसी पगडंडी से या रास्ते से सम्बन्धित ही नहीं था। पैरों के नीचे केवल पथरीली ज़मीन थी और अज्ञात दिशा।

लगभग डेढ़ घंटे तक हम इसी प्रकार से चलते रहे। इस पूरे समय में परस्पर कोई बात करने का अवसर ही नहीं मिला। वह बराबर दूरी बनाए हुए चला जा रहा था और मैं तथा मृगाक्षी भी उसका अनुसरण करते हुए बराबर बढ़ रहे थे।

तभी हमें बहुत दूर जलती-बुझती रोशनियां दिखाई दीं। ज़रूर यह कोई गांव है और इसी गांव की ओर यह बुड्ढा ले जा रहा था। लगभग आधा घंटा और चलने के बाद गांव नज़दीक आ गया था। कुत्तों के भौंकने की आवाज़ें साफ़-साफ़ सुनाई पड़ रही थीं। जब गांव बिल्कुल नज़दीक आ गया, तो बुड्ढे ने पूछा, "तुम लोग पुनाचा गांव ही पहुंचना चाहते थे न?"

मृगाक्षी ने कहा, "हां बाबा, आज का हमारा गन्तव्य स्थल पुनाचा गांव ही था। यदि रास्ता नहीं भटकते तो रात होते-होते हम अवश्य ही पुनाचा

गांव पहुंच जाते।"

"यह पुनाचा गांव ही है, और तुम लोग इस सामने वाले मकान में जाओ। मैंने व्यवस्था कर दी है," और देखते-देखते बुड्ढा पास वाली गली में अदृश्य हो गया।

मैंने व्यवस्था कर दी है? क्या तात्पर्य है? क्या इस बुड्ढे को हमारे बारे में पहले से ही सब-कुछ पता था या कोई योजनाबद्ध षड्यन्त्र तो नहीं? हो सकता है इसने मृगाक्षी को लूटने का षड्यन्त्र पहले से ही कर रखा हो, और इस घर में ही कोई ऐसी व्यवस्था हो।

मृगाक्षी ने कहा, "चले चलो। रात के लगभग बारह बज रहे हैं, पूरा गांव सोया हुआ होगा। जो भी होगा देखा जाएगा।"

मैंने हिम्मत कर दरवाज़ा खटखटाया, तो मामूली धक्के से ही दरवाज़ा खुल गया। आंगन में कोई प्रौढ़-सा व्यक्ति एक स्त्री के साथ खड़ा था। उसने कहा, "आइए, बाहर क्यों खड़े हैं। हम तो तीन-चार घंटे से आप लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"हमारी प्रतीक्षा! क्या आप लोगों को पता था कि हम लोग आ रहे हैं?"

"हां, एक कोई वृद्ध-से व्यक्ति आए थे। मैं तो उनको जानता नहीं। शायद कहीं दूर के रहने वाले थे। बोले, दो व्यक्ति रास्ता भूल गए हैं और मैं उन्हें लेकर आ रहा हूं। आज की रात तुम्हारे यहीं पर ठहरेंगे। उन्होंने तुम्हारे लिए भोजन बनाकर रखने के लिए भी कहा था।"

हम दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा! आश्चर्य! बुड्ढा कौन था, उनको कैसे पता चल गया कि हम दोनों रास्ता भूल गए हैं और इनको पहले ही यह बता दिया था कि वे दोनों भटक गए हैं और मैं उन्हें लेने के लिए जा रहा हूं। फिर भोजन भी बनाकर रखने के लिए कह दिया था।

घर के मुखिया सत्यदेव पंडित ने पानी की बाल्टी लाकर रख दी थी। मैंने स्नान किया, कपड़े बदले और आंगन में बिछे आसन पर बैठ गया। तब तक मृगाक्षी भी स्नान कर आसन पर बैठ गई थी। हमारे बैठते ही गृहिणी ने दो थालियों में स्वादिष्ट भोजन लाकर सामने रख दिया। हम दोनों ने भोजन

किया, पर यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आ रहा था। भोजन करने के बाद मैंने सत्यदेव जी से पूछा, "आप उस बुड्ढे बाबा से बिल्कुल परिचित नहीं थे।"

उन दोनों ने एक साथ उत्तर दिया, "हमने तो अपने जीवन में पहली बार उन्हें देखा था, पर उन्हें देखने पर ऐसे लगा जैसे वे सही कह रहे हों, और तुम लोगों से उन्हें बहुत लगाव हो।"

मृगाक्षी एक क्षण में ही सब-कुछ समझ गई। मुझसे कहा, "अब मैं जान गई हूं। वे और कोई नहीं परम पूज्य गुरुदेव ही होंगे। हम दोनों रास्ता भटक गए थे, यह उन्होंने सिद्धि बल से देख लिया होगा। वे तो प्रतिक्षण हम लोगों के साथ हैं। वे हमें तकलीफ़ में कैसे देख सकते हैं?"

मृगाक्षी का गला रुंध गया, आंखों से प्रेम के आंसू छलछला पड़े, वहीं पर आंगन में ही वह घुटने टेककर सुबक पड़ी। बोली, "गुरुदेव, आपको हमारे लिए इतना कष्ट उठाना पड़ा, हम किस प्रकार से आपका यह ऋण उतारेंगे? अंधेरी रात में यदि आप न होते तो आज क्या होता?"

थोड़ी देर इधर-उधर की बातें होती रहीं, भैरवी ख़्यालों में खोई हुई थी। हम दोनों सो गए। सोते ही नींद आ गई।

दूसरे दिन जब मैं उठा तो लगभग सूर्योदय हो चुका था। आज वास्तव में ही मेरी आंख कुछ देरी से ही खुली। मैं उठा तब तक तो मृगाक्षी स्नान आदि से निवृत्त होकर गुरु की पूजा कर रही थी। आज मैंने पहली बार उसे पूजा करते हुए देखा। मैंने देखा कि अपने सामने उसने एक प्रतीक चिह्न रखा है, और उसकी पूजा कर वह गुरु स्तुति उच्चारण कर रही है।

मैं उसके पास पालथी मारकर धीरे से बैठ गया। उसने थोड़ी देर में ध्यान लगा लिया और फिर कोई विशेष लोक में खो गई। लगभग एक घंटे तक वह इसी प्रकार बैठी रही। न उसे अपने शरीर का भान था और न आगे चलने की उतावली। धीरे-धीरे धूप बढ़ रही थी और मैं सोच रहा था कि यदि जल्दी ही रवाना हो जाएं तो ठीक रहेगा।

योगिनी की आंखें खुलीं। उसने मेरी ओर देखा और मुस्कुरा दी। उठते ही उसने सबको प्रणाम किया और आगे चलने को उद्यत हो गई।

जब हम गांव से बाहर निकले, तो पहली बार उसने मुंह खोला, बोली, "अरविन्द, हम कितने सौभाग्यशाली हैं। गुरुदेव प्रत्येक क्षण हमारे साथ हैं। आज सुबह जब मैं ध्यान लगा रही थी, तो मैं गहन समाधि में चली गई। मैंने देखा कि गुरु कह रहे थे, तुम लोग रास्ता भूल जाते हो और फिर मुझे परेशान होना पड़ता है।"

फिर उसने थोड़ा-सा रुककर कहा, "वास्तव में ही गुरुदेव को कल परेशानी उठानी पड़ी होगी। आज ध्यान में उनका स्पष्ट निर्देश था कि इसी रास्ते पर चलना है, और रात को तुंगवा नदी के किनारे ही लेट जाना है। वहीं पर एक कुटिया है, जहां कोई वृद्ध संन्यासी मिलेंगे। आज की रात उस कुटिया में ही हमें विश्राम करना है। सुबह वे संन्यासी ही हमें गुरु आश्रम तक ले जाएंगे।"

मैं कुछ बोला नहीं बराबर पीछे चलता रहा।

भैरवी ने कहा, "मैंने ध्यान में तो गुरुदेव का अत्यधिक सौम्य और तेजस्वी चेहरा देखा है, पर वास्तविक जीवन में कितने अधिक उदात्त, कितने अधिक सौम्य प्रभावयुक्त होंगे। जितनी जल्दी हो सके, हमें गुरु चरणों में पहुंच जाना चाहिए। उनकी हम पर महती कृपा है।"

भैरवी आज उत्साह के साथ आगे-आगे बढ़ रही थी। अब उसे पूरा भरोसा हो गया था कि जल्दी ही गुरुदेव मिल जाएंगे। यही नहीं, गुरुदेव उसके साथ हैं, उसके प्रत्येक कार्य पर गुरुदेव की नज़र है, गुरुदेव ने उसे अपना लिया है, तो ज़रूर वह गुरुदेव के चरणों में बैठकर वह सब-कुछ प्राप्त कर सकेगी जो वह करना चाहती है।

आगे पहाड़ की चढ़ाई शुरू हो गई थी। पहाड़ बिल्कुल सीधा और सपाट था, चढ़ाई अत्यन्त ही कठिन थी और एक-एक पग जमाकर ऊपर चढ़ना पड़ रहा था। मार्ग में कुछ देर सुस्ताने के लिए भैरवी रुककर बोली, "अरविन्द, मेरी इच्छा जीवन में तन्त्र की पूर्णता तो है ही, पर साथ-ही-साथ गुरुदेव के साथ सिद्धाश्रम जाने की भी है। मेरे गुरुदेव अवश्य ही सिद्धाश्रम संस्पर्शित योगी होंगे?"

दोपहर का समय हो गया था। एक जगह घनी छाया देखकर वह कुछ

देर के लिए रुक गई। उसने अपने हाथ लम्बे कर चारों तरफ़ धीरे-धीरे घूमना प्रारम्भ किया। उसे यह ज्ञात हुआ कि निश्चय ही गुरुदेव से उसका सम्पर्क बराबर बना हुआ है, उसके हाथों में एक विशेष दिशा से बराबर विद्युत-तरंगें अनुभव हो रही थीं। ज़रूर यह पूज्य गुरुदेव की तरफ़ से संकेत है, यह इस बात का संकेत है कि हम सही रास्ते पर हैं।

थोड़ी देर सुस्ताने के बाद मृगाक्षी ने पूछा, "तुम बहुत चुप-चुप से चल रहे हो, क्या बात है, तुम्हें कुछ अच्छा नहीं लग रहा है क्या?'

मैंने कहा, "तुम्हारी प्रसन्नता में ही मेरी प्रसन्नता है, जिस कार्य से तुम खुश हो वह कार्य मेरे लिए भी श्रेयस्कर है। मेरे जीवन का उद्देश्य भी तन्त्र के क्षेत्र में पूर्ण सफलता प्राप्त करना है, पर तन्त्र सम्पूर्ण जीवन का एक भाग है। अपने-आप में सम्पूर्णता नहीं। मैं केवल तन्त्र के क्षेत्र में ही नहीं अपितु योग, दर्शन, आयुर्वेद, मन्त्र, कर्मकांड आदि सभी विधाओं में सफलता पाना चाहता हूं। मैं अपने-आप में कुछ अद्वितीय बनना चाहता हूं।"

भैरवी ने ताली बजाकर प्रसन्नता व्यक्त की, "वाह-वाह महाराज, आपके विचार जानकर तो और अधिक प्रसन्नता हुई। मैं तो केवल तन्त्र के क्षेत्र में ही बहुत कुछ जानना चाहती थी, पर आप तो सभी विधाओं में सम्पूर्णता चाहते हैं। यह तो समय ही उत्तर देगा कि कौन कितना आगे बढ़ता है।"

मैंने कहा, "मैंने अपने जीवन में गुरुदेव को देखा नहीं, पर एक कल्पना अवश्य ही की है, और मुझे विश्वास है कि मेरी कल्पना पर गुरुदेव पूरे उतरेंगे। वे केवल तन्त्र के क्षेत्र में ही सम्पूर्ण नहीं होंगे, अपितु सारी विधाओं में वे पूर्ण होंगे। मुझे ऐसा ही अनुभव हो रहा है।

"मेरा जीवन संयोगों से निर्मित हैं। जीवन में जो भी घटना घटी, अचानक और अप्रत्याशित रूप से ही घटी। घर से निकला तो था गोरखनाथ के मन्दिर के दर्शन करने, और फंस गया औघड़ों के चक्कर में। वे तो निश्चित रूप से मेरी बलि देना चाहते थे और बचा लिया तूने। मैं तो वहां से छूटकर घर जाना चाहता था और चल पड़ा तेरे साथ-साथ। यह सब-कुछ अदृश्य संकेत से हो रहा है। पर यह निश्चित है कि जो कुछ हो रहा है, वह सही हो रहा है, जो कुछ होगा वह भी सही होगा, क्योंकि मेरा मन यह कह रहा है कि हम जिस

अद्वितीय व्यक्तित्व के पास जा रहे हैं, वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है।"

मैंने अपने सारे जीवन की कथा-व्यथा भैरवी के सामने खोल दी। मैं कहां पैदा हुआ, किस प्रकार से बड़ा हुआ, जीवन में क्या बनना चाहता था, किस प्रकार से विवाह हो गया, यह सब-कुछ मैंने चलते-चलते विस्तार से भैरवी को बता दिया। जिस प्रकार से कोई व्यक्ति अपने स्वजन को सब-कुछ बताकर हल्का हो जाता है, उस समय कुछ ऐसा ही मैंने अनुभव किया।

भैरवी ने कहा, "निश्चय ही तुम्हारा जीवन अत्यधिक संघर्षों से युक्त रहा है। पर यह भी सही है कि केवल सन्तान उत्पन्न करना और जीविकोपार्जन कर अपना और परिवार का पेट पालना ही तुम्हारे जीवन का लक्ष्य नहीं हो सकता। तुम्हारा निर्माण भगवान भैरवनाथ ने किसी विशेष उद्देश्य के लिए किया है, और तुम उसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आगे बढ़ रहे हो। मुझे विश्वास है कि तुम जहां जा रहे हो, निश्चित रूप से पूर्णता है, जीवन का लक्ष्य है और शान्ति का स्थल है।"

बातचीत में कब दोपहर ढल गई, कब सांझ हो गई, कुछ पता ही नहीं चला और जब सूर्य अस्ताचल की ओर जा रहा था, तो हमने देखा कि हम एक नदी के किनारे खड़े हैं, अत्यन्त ही वेगवती नदी, पहाड़ों से उतरकर जिस तेज़ी के साथ वह बह रही थी, उससे उसका रूप शतगुना हो गया था।

हम दोनों नदी के किनारे एक पड़े हुए पत्थर पर बैठ गए। अपने दोनों पांव नदी में डाल दिए और काफ़ी समय तक नदी के सौन्दर्य को, उसके वेग और प्रभा को देखते रहे। तभी एक तरफ़ से एक संन्यासी आते हुए दिखाई दिए। उम्र लगभग पैंतालीस वर्ष, नीचे धोती पहनी हुई, बाक़ी सारा शरीर अनावृत, माथे पर भव्य त्रिपुंड, सिर की लम्बी जटाएं पीठ को छूती हुई, विशाल वक्षस्थल और प्रभावपूर्ण चेहरा। ऐसा लगा कि कोई सौम्य देवदूत ही उस नदी के किनारे प्रकट हुआ हो। बोला, "मृगाक्षी बहन, आज रात आपको और अरविन्द भाई को यहीं झोंपड़ी में विश्राम करना है।"

मैं नदी से पैर निकालकर एकदम से उठ खड़ा हुआ। मेरा और भैरवी का नाम इसे किस प्रकार से मालूम है? मैंने पूछा, "आप कौन हैं, आपको मैंने पहचाना नहीं।"

उसने उत्तर दिया, "संन्यासी का न तो कोई नाम होता है और न कोई परिचय। मृत्तिका के एक पिंड को कुछ भी नाम दिया जा सकता है, मैं गुरुदेव की आज्ञा से आपको लेने के लिए उपस्थित हुआ हूं। आज की रात आपको यहीं पर विश्राम करना है, कल सुबह ब्रह्म बेला में हम यहां से प्रस्थान करेंगे और मध्याह्न होते-होते आश्रम पहुंच जाएंगे।"

भैरवी ने अत्यन्त श्रद्धा से प्रणाम कर पूछा, "गुरुदेव ने आपको हमें लेने के लिए भेजा है। आप जिनके शिष्य हैं, क्या उनका नाम मैं जान सकती हूं?"

संन्यासी ने उत्तर दिया, "जब तक गुरुदेव की आज्ञा नहीं होगी, तब तक मैं कुछ कहने में असमर्थ हूं। अभी तक मुझे जो आदेश प्राप्त हुआ है, मैं उसका पालन करने के लिए उपस्थित हुआ हूं। आप बिना संकोच के मेरे साथ चलें, वहां सब-कुछ व्यवस्था है।"

हम दोनों उसके साथ-साथ चल पड़े, वह तेजस्वी संन्यासी आगे-आगे चल रहा था। हम दोनों निश्चिन्त भाव से उसके पीछे चल रहे थे। क़रीब एक मील चले होंगे कि हमें आठ-दस कुटिया नदी के किनारे ही दृष्टिगोचर हुईं। पांच-छः संन्यासी कुटिया के बाहर बैठे हुए थे। दो-तीन संन्यासी नदी तट पर विचरण करते हुए दिखाई दे रहे थे। पांच-सात संन्यासिनियां भी इधर-उधर घूमती हुई दिखाई दे रही थीं।

हम दोनों पास पहुंचे, तो किसी ने कोई विशेष प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्हें कुछ पता ही नहीं था कि कोई आया है या कोई जा रहा है। सभी अपने-अपने में मग्न थे।

एक ख़ाली कुटिया की ओर संकेत करते हुए संन्यासी ने कहा, "यह कुटिया आपके लिए है। आप यहां रात्रि विश्राम करें, नदी तट पर स्नान आदि से निवृत्त हो जाएं। कुटिया में ही भोजन रखा हुआ है, प्रसाद ग्रहण कर लें।" यह कहकर संन्यासी एक तरफ़ चला गया।

हम दोनों नदी तट पर पहुंचे और जी भरकर स्नान किया। लगभग आधे घंटे तक मैं स्नान करता रहा, फिर बाहर निकलकर कपड़े बदले और जब कुटिया में आया, तो भैरवी ने जंगल के बड़े-बड़े पत्तों पर खाना परोस कर रख दिया।

बोली, "मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा कर रही थी। भोजन कर लो, सुबह से कुछ खाया ही नहीं है।"

मुझे उसका उलाहना और मनुहार दोनों ही प्रिय लगे। मैंने शान्त चित्त से भोजन किया। हाथ धोकर मैं मृगाछी के साथ ही नदी तट पर घूमने के लिए निकल पड़ा। मैंने अनुभव किया कि सभी संन्यासी पूर्णतः निस्पृह हैं, किसी से कोई लगाव नहीं, किसी प्रकार का छल या दुराव नहीं। जो कुछ है, वह स्पष्ट है, सबके सामने है, न तो हमारे खाने का किसी ने ध्यान दिया और न इस बात की चिन्ता की कि हम कौन हैं, कहां से आए हैं, कहां जा रहे हैं।

नदी तट पर चलते-चलते भैरवी ने कहा, "कितना अच्छा दृश्य है! कितना रमणीय स्थान है! जी चाहता है, यहीं बैठ जाऊं। चार-छः महीने यहीं पर रहकर उन साधनाओं और सिद्धियों का पुनः अभ्यास करूं, जो मैंने सीखी है। प्रकृति के बीच पूरी तरह से प्रकृतिमय बनकर रहूं।"

"पर मैं जल्दी-से-जल्दी गुरुदेव के पास पहुंच जाना चाहती हूं। ज़रूर यह स्थान भी गुरुदेव के आश्रम का ही एक भाग होगा, ये संन्यासी यहां किसी विशिष्ट साधना में रत होंगे। यह क्या रहस्य है, ये कौन हैं? यहां क्या साधना कर रहे हैं? कुछ पता नहीं चल रहा है। न तो कोई साधना-स्थल दिखाई दे रहा है और न कोई यज्ञ-कुंड ही। मुझे तो यहां आए तीन-चार घंटे हो गए हैं।" आज भैरवी कुछ ज़्यादा ही अधीर-सी लग रही थी। यदि उसका बस चलता तो रात को ही चलकर गुरुदेव के पास पहुंच जाती।

हम दोनों घूमकर वापस कुटिया तक पहुंच गए थे। सभी संन्यासी-सन्यासिनियां कहीं अन्यत्र चली गई थीं। भैरवी उस कुटिया के अन्दर जाकर सो गई। मैं भी कुटिया के बाहर एक स्वच्छ शिला पर वस्त्र बिछाकर सो गया। ऊपर चन्द्रमा खिल गया था। मेरी आंखों में नींद नहीं थी। मैं अब सही अर्थों में संन्यासी था। संन्यासी के तो 'धैर्य पिता, दयाच जननी भ्राता मनः संयम।' यह आकाश ही मेरे ओढ़ने का वस्त्र है, यह पृथ्वी ही मेरा बिछौना है, यह सारा वातावरण ही मेरे वस्त्र हैं, यह सारा परिवार मेरा है। ये वृक्ष, यह नदी, ये पत्थर, ये सब-कुछ मेरे ही परिवार के हैं, फिर मैं अकेलापन कैसे महसूस कर सकता हूं?

कल दोपहर तक निश्चय ही गुरुदेव के आश्रम तक पहुंच जाएंगे। गुरुदेव अत्यन्त समर्थ एवं उच्चस्तरीय हैं, उन्होंने पग-पग पर हमारा ध्यान रखा है। आगे का रास्ता बड़ा बीहड़ और पहाड़ों के मध्य में होगा, तभी इन संन्यासियों को लाने के लिए भेजा है। न तो हमने गुरुदेव को देखा है और न परिचय ही हुआ है, फिर भी उन्होंने जिस प्रकार से हमारा ध्यान रखा है, वैसा तो पिता ही अपनी सन्तान का ध्यान रख सकता है।

पर क्या वे मुझे अपनाएंगे? भैरवी को तो बराबर उनके संकेत मिल रहे हैं। उनके ध्यान में भी वे बराबर आ रहे हैं, पर अभी तक मेरे ध्यान में तो आए ही नहीं। तो क्या वे मुझसे नाराज़ हैं? क्या उन्होंने मुझे नहीं बुलाया है? तो क्या वे मुझे स्वीकार नहीं करेंगे? भैरवी ने तो कहा था कि गुरुदेव ने तुम्हें भी बुलाया है। तुम्हारा नाम लेकर उन्होंने कहा है कि उसको भी साथ लेती आना। भैरवी असत्य नहीं बोल सकती। वह छल-छद्म से पूर्णतः दूर है।

मुझे कब नींद आ गई और कब आंख खुली, कुछ पता नहीं। जब मेरी आंखें खुलीं, तो सूर्य उग आया था। भैरवी नदी में स्नान कर कुटिया में आ गई थी। यह मुझे हो क्या गया है? मैं तो नित्य ब्रह्म मुहूर्त में उठकर स्नान-सन्ध्यादि से निवृत्त होता था। अब तो सूर्य निकलने के बाद उठना होता है, यह जड़ता मेरे शरीर में क्यों व्याप्त हो रही है? मैं लज्जित भाव से उठा और तेजी से नदी की ओर चला गया।

शौच, स्नान, सन्ध्यादि से निवृत्त होकर जब मैं कुटिया पर आया तो भैरवी तैयार खड़ी थी। उसके चेहरे पर एक अपूर्व रौनक थी। आज वह अपने गुरुदेव के दर्शन करेगी। उमंग और उल्लास उसकी आंखों से छलक रहा था। उसने किंचित उलाहने के स्वर में कहा, "आलसी महोदय, जल्दी करो, संन्यासी जी हम लोगों की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

मैंने देखा कि कल जिस संन्यासी ने हमें यह कुटिया दिखाई थी और जो नदी तट पर मिले थे, वे किंचित दूरी पर खड़े हमारी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। मैंने तुरन्त कपड़े पहने और कुटिया के बाहर आया, तो संन्यासी जी ने चलने का संकेत दिया और हम दोनों पीछे-पीछे चल पड़े।

वह लगभग दो-ढाई मील तक तो नदी के किनारे-किनारे चला और फिर

एक पुल से होकर नदी पार कर गया। हमने देखा कि नदी के ऊपर लकड़ी का एक मोटा-सा लट्ठा पड़ा है और उसी पर पांव रखकर वह पार उतर गया है, जिस प्रकार कोई नट रस्सी पर अपनी बाज़ीगरी दिखाकर आगे बढ़ता है।

उस लट्ठे पर से नदी पार करना मेरे लिए तो कुछ कठिन-सा था ही, पर यह भैरवी किस प्रकार से इस नदी को पार करेगी? यह विचारणीय विषय था। मैंने नीचे देखा, तो बहुत गहराई में नदी तेज़ी के साथ बह रही थी। हम काफ़ी ऊंचाई पर थे और जहां दोनों पहाड़ी के बीच की दूरी थोड़ी-सी थी, वहीं पर किसी ने लकड़ी का लट्ठा रखकर उसे पुल का स्वरूप दे दिया था।

भैरवी ने मेरी ओर देखा! मैं एक तरफ़ खड़ा था। संन्यासी हाथ के संकेत से उस तरफ़ आने को कह रहे थे। उसने कहा, "घबराने की ज़रूरत नहीं। लट्ठे पर पांव रखकर दौड़ते हुए आ जाओ। लट्ठा काफ़ी मोटा है।"

मैं लट्ठे की ओर ध्यान दिया उसकी मोटाई मुश्किल से नौ-दस इंच थी। यदि बीच-धार में जाने पर लट्ठा टूट गया, तो मृत्यु निश्चित है। इतनी ऊंचाई से नदी में गिरने पर तो हड्डियों का भी पता नहीं चलेगा।

मैंने देखा कि मृगाक्षी ने लट्ठे पर अपने पांव बढ़ा दिए हैं। मैं जब तक रोकता तब तक वह लट्ठे पर आगे बढ़ चुकी थी। मैं सांस रोके उसे जाते हुए देख रहा था। भगवान से प्रार्थना कर रहा था कि वह सकुशल नदी पार कर ले। उसने सन्तुलन के लिए अपने दोनों हाथ फैला दिए थे। कभी वह थोड़ा-सा बाईं या दाहिनी ओर झुकती, तो मेरा कलेजा मुंह को आ जाता। मैंने एक क्षण के लिए सोचा कि मैं इसके प्रति इतना लगाव क्यों अनुभव कर रहा हूं? यह मेरी क्या लगती है? इसने मेरी प्राणरक्षा ही तो की है। वह तो एक ऋण है, जिसे वापस और किसी भी तरीक़े से उतारा जा सकता है, पर इस प्रकार इसके प्रति अपनत्व अनुभव करना क्या मायने रखता है? कहीं मेरे मन में कोई कमज़ोरी तो व्याप्त नहीं हो रही है? कहीं मेरा हृदय इसे किसी और रूप में चाहने तो नहीं लगा है?

वह नदी के बीच चली गई थी। मैंने अचकचाकर देखा, उसका सन्तुलन एक तरफ़ बढ़ गया है। मेरा कलेजा मुंह को आ गया। मैं इस समय कुछ भी करने में असमर्थ था। उस पार संन्यासी खड़ा था और इस पार मैं। बीच में

मृगाक्षी थी। मेरा मन तो अत्यधिक सशंकित हो रहा था, पर संन्यासी को तो कोई फिक्र नहीं। उसके चेहरे पर कोई तनाव नहीं, उसको तनाव होगा भी क्यों? यह मृगाक्षी उसकी लगती ही क्या है?

तभी उसका सन्तुलन बिगड़ा, वह एक तरफ़ झुकी और ऐसा लगा जैसे नदी में अब गिरी, अब गिरी, और वह नीचे की ओर फिसली। मेरे मुंह से चीख़-सी निकल गई। उसने अपने दोनों हाथों से लट्ठा पकड़ लिया और उसका सारा शरीर लट्ठे के नीचे हवा में झूल रहा था। मैं क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आ रहा था। यदि मैं लट्ठे पर पांव रखता हूं, तो इस पर और वज़न बढ़ जाएगा और ज़्यादा वज़न होने से इसके टूटने का भी ख़तरा है। ऐसी स्थिति में तो हम दोनों की मृत्यु निश्चित है।

हे प्रभु, तू चाहे मुझे मार दे, पर मृगाक्षी को बचा ले। यह क्या हो रहा है? मेरी आंखें फटी-की-फटी रह गईं। मैं देख रहा था कि वह जीवन और मृत्यु के संघर्ष में जूझ रही थी, उसका सारा शरीर दोनों हाथों पर टिका था, सैकड़ों लोगों के चलने से लट्ठा चिकना हो गया था और किसी भी समय हाथ फिसल सकते हैं।

उस पार संन्यासी युवक खड़ा था। उसे जैसे इस बात की कोई चिन्ता ही नहीं थी। मुझे आवाज़ देता हुआ बोला, "आप क्यों रुके हुए हैं? इधर क्यों नहीं आ जाते?"

एक बार तो इच्छा हुई कि पत्थर उठाकर इसका सिर फोड़ दूं। तुझे दिखाई नहीं दे रहा है! वह तो ज़िन्दगी और मौत के बीच झूल रही है और तू मुझे उधर आने के लिए कह रहा है?

मैंने निश्चय कर लिया कि मुझे लट्ठे पर आगे बढ़ना चाहिए, यदि उसके हाथ फिसलते हैं और नदी में गिर जाती है, तो मैं स्वयं नदी में छलांग लगाकर आत्महत्या कर लूंगा। इसके न रहने पर मेरा जीवित रहना और सांस लेना व्यर्थ है। तभी मैंने देखा कि भैरवी ने अपने शरीर को झूला-सा बनाकर दाहिने पांव से लट्ठे पर सन्तुलन स्थापित किया और फिर दोनों पांव लट्ठे पर टिकाकर धीरे-धीरे उठ खड़ी हुई। उसने एक क्षण के लिए मेरी ओर देखा, पर मैं तो संज्ञाशून्य-सा था।

वह धीरे-धीरे क़दम भरती हुई लट्ठे पर आगे की ओर बढ़ती गई और उसको पार कर लिया। निश्चय ही भगवान दयालु है, वह समर्थ है, सच्चे मन से यदि उसे पुकारा जाए, तो अवश्य ही सुनता है। तभी मेरे कानों में आवाज़ आई, "वहां क्या कर रहे हो? इस पार क्यों नहीं आ जाते?"

मैंने लट्ठे पर पांव रखा और धीरे-धीरे आगे की ओर बढ़ता चला गया। नीचे की ओर देखना सन्तुलन समाप्त करना है। सामने की ओर देखता हुआ मैंने लट्ठे को पार कर लिया। ज्यों ही मृगाक्षी के पास पहुंचा, त्यों ही अनजाने में उसका शरीर मैंने बांहों में भर लिया। एक क्षण का यह हज़ारवां हिस्सा ही होगा। मैं तुरन्त छिटक गया। यह क्या कर दिया मैंने? ऐसा क्यों हो गया? पर मैं इतना अधिक भाव-विह्वल हो गया था कि मैं अपने-आप को क़ाबू में नहीं रख सका था।

भैरवी ने कहा, "अरविन्द भाई, क्या बात है? बहुत ज़्यादा विह्वल हो गए हो क्या? अरे, यह तो मिट्टी का शरीर है। यदि इस नदी में विलीन हो जाती, तो क्या अन्तर पड़ जाता? पर ऐसा हो ही नहीं सकता था, क्योंकि गुरुदेव ने जब मुझे बुलाया है। बिना उनसे मिले मैं मर ही नहीं सकती थी।"

संन्यासी को तो जैसे कुछ हुआ ही नहीं था। ज्यों ही मुझे नदी के इस ओर आते हुए देखा, तो उसने निस्पृह भाव से आगे क़दम बढ़ा दिए। हम दोनों उसके पीछे-पीछे चल पड़े। ऐसा लग रहा था कि मुझसे कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया हो। जी करता था कि वापस लौट पड़ूं और उस लट्ठे पर से नदी में छलांग लगा दूं। मृगाक्षी पीछे मुड़ी। मुझे पीछे आते हुए देख वह रुक गई, बोली, "अरविन्द, क्या बात है? इतने मरे-मरे से क्यों चल रहे हो? हो क्या गया है तुझे? तू तो मेरा भाई है और बहन की रक्षा करना तो भाई का कर्तव्य होता है।" पास खड़ी हुई बेल को तोड़कर मेरे दाहिने हाथ में राखी बांधती हुई बोली, "इस बहन की रक्षा करना और साथ रहना तेरा धर्म है।"

मैं एक और उलझन में फंस गया था। जितना ही ज़्यादा मैं सुलझना चाहता था, उतना ही ज़्यादा उलझता जा रहा था। यह नियन्ता क्या-क्या खेल करा रहा है, मुझसे? इसने तो मेरी दाहिनी कलाई पर राखी ही बांध दी है, अब तो और अधिक ज़िम्मेदारी मेरे सिर पर आ गई है। मैं देख रहा था कि

संन्यासी बहुत तेज़ी से आगे-आगे चल रहा था। सही कहा जाए, तो हम लगभग दौड़-से रहे थे, फिर भी उसकी चाल के बराबर अपने-आप को गतिशील नहीं कर पा रहे थे। न तो वह कहीं विश्राम ले रहा था और न मुंह से कुछ बोल रहा था।

हम एक विशेष पहाड़ की ओर बढ़ गए थे। बर्फ़ से आच्छादित यह पहाड़ अत्यन्त सुन्दर लग रहा था। पहाड़ के नीचे ही नदी बहती हुई दृष्टिगोचर हो रही थी। संन्यासी ने एक क्षण के लिए विश्राम किया। बोला, "थक गए हो तो थोड़ी देर सुस्ता लो। जल्दी ही हमें चलना है। यह गन्धमादन पर्वत है। इसकी चढ़ाई थोड़ी कठिन है, पर ऐसी कोई बात नहीं है कि हम चढ़ न सकें।"

संन्यासी मुश्किल से दो-तीन मिनट रुका होगा। उसने हम दोनों की ओर देखा और फिर आगे की ओर बढ़ गया। हम दोनों उसके पीछे-पीछे चल पड़े। वास्तव में यह पहाड़ अत्यन्त ही बेढब और सीधी चढ़ाई वाला था। एक-एक क़दम जमा-जमा कर ऊपर चढ़ना पड़ता था। वह संन्यासी तो उस पर ऐसे चढ़ रहा था, जैसे कोई घर की सीढ़ियां चढ़ रहा हो, पर हमारे लिए तो वह चढ़ाई निश्चय ही कठिन थी। प्रत्येक क़दम पर सांस फूल जाता और रुककर सांस लेने के लिए बाध्य होना पड़ता।

बड़ी कठिनाई से हम पहाड़ पर चढ़ पाए। यद्यपि छोटी-सी पगडंडी अवश्य थी, पर वह नहीं के बराबर थी। उस तरफ़ के चरवाहे ही पगडंडी पर तेज़ी से बढ़ जाते होंगे, पर हमें तो प्रत्येक क़दम को संभल-संभल कर उठाना पड़ा और आगे बढ़ना पड़ा। जब वह संन्यासी पहाड़ की चोटी पर था, तब हम आधे रास्ते को ही पार कर पाए थे।

जब ऊपर चढ़े, तो देखा कि वह अत्यधिक समतल मैदान है। हरा-भरा प्रकृति द्वारा शोभित अत्यन्त ही आकर्षक स्थल था वह। पहाड़ पर ऐसा मैदान मिल जाना भी अपने-आप में सौभाग्य ही कहा जाता है। यहां से ढलान प्रारम्भ हो गई थी। आगे-आगे संन्यासी उतर रहा था और उसके पीछे मृगाक्षी संभल-संभल कर। मैं उसे सावधान करता हुआ पीछे था।

अचानक मेरा पैर फिसला। शायद मेरा ध्यान मृगाक्षी को सावधान करने की ओर रहा होगा, या और कोई कारण रहा हो। फिसलकर मैं पहाड़ से लुढ़कने

लगा। मैंने कहीं पढ़ा था कि यदि पहाड़ पर लुढ़क जाओ, तो अपने दोनों हाथ और पांव फैला देना चाहिए, जिससे कि लुढ़कने की गति कम हो जाए और शरीर को ज़्यादा चोट न पहुंचे। मैंने यथासम्भव ऐसा ही करने का प्रयत्न किया। मुश्किल से आठ-दस कुलाटें खाई होंगी कि संन्यासी ने लपककर मेरा हाथ पकड़ लिया। मुझे उठाते हुए बोले, "क्या कर रहे हो, देखकर चलना चाहिए न।"

मृगाक्षी की तो चीख़ निकलते-निकलते रह गई थी। बोली, "शायद मुझे सावधान करने के चक्कर में तुम लुढ़क गए।"

मैं मृगाक्षी के व्यंग्य को समझ गया। मेरी कोहनियां और घुटने छिल गए थे और एक जगह से धोती थोड़ी-सी फट गई थी। मैं अपने-आप को संयत कर नीचे उतरने लगा। थोड़ी देर में हम नीचे उतर आए। आगे समतल रास्ता था, परन्तु अभी तक कोई भी आश्रम आदि के चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे।

उस मैदान को पार किया। थोड़ा-सा आगे बढ़ने पर छोटा-सा नाला मिला, पर फिर भी उसमें पानी का वेग ज़्यादा ही था। तो उसे चलकर ही पार करना था। आगे-आगे संन्यासी अपनी भगवा धोती को थोड़ी-सी ऊपर उठाकर नाला पार कर गया। मैंने देखा कि नाले में पानी चार-पांच फुट से ज़्यादा गहरा नहीं था। नाला पार करने के बाद एक पहाड़ी और दिखाई दी, संन्यासी दौड़ता हुआ उस पर चढ़ने लगा।

संन्यासी की चाल देखकर मैं समझ गया कि आश्रम कहीं निकट ही है। जब घर नज़दीक आता है, तो चाल अपने-आप बढ़ जाती है। शायद यह पहाड़ी पार करने पर आश्रम दिखाई देगा या यह भी हो सकता है कि अभी आश्रम बहुत दूर हो और जल्दी पहुंचने के उद्देश्य से संन्यासी तेज़ी से बढ़ रहा हो।

जो भी हो। चलना ही जीवन है, और तब तक चलते रहना है, जब तक लक्ष्य न मिल जाए। मैंने देखा कि भैरवी बराबर मेरे आगे-आगे जा रही थी। इस लड़की में भी ग़ज़ब की हिम्मत है, पता नहीं कितनी ऊर्जस्विता है इसमें! जब भी मैंने देखा है, इसे आगे ही बढ़ते हुए देखा है, थकने का तो नाम ही नहीं है। आत्म-नियन्त्रण भी इसमें ज़रूरत से ज़्यादा है।

थोड़ी-सी चढ़ाई प्रारम्भ हो गई थी। पैर चढ़ाई के थोड़े-थोड़े अभ्यस्त हो गए थे। बड़ी कठिन चढ़ाई थी यह भी। एक-दो स्थानों पर तो मुश्किल से छः इंच जगह थी, जहां पार होना था। एक तरफ़ पहाड़ था और दूसरी तरफ़ बहुत बड़ा खड्ड।

मुश्किल से छः इंच स्थान पर एक पांव ही मुश्किल से टिक पाता है, पर उस स्थान से संन्यासी तो ऐसे निकल गया था, जैसे कि रात-दिन उस पर से आता-जाता हो। मृगाक्षी के बाद मैंने भी उस स्थान को पार किया वह स्थल एक ही नहीं था। थोड़ी-थोड़ी दूरी पर ऐसे ही और भी स्थल थे। जब पहाड़ के ऊपर चढ़े, तब जान में जान आई। हमने देखा कि प्रकृति यहां बहुत घनी हो गई है। देवदार के पेड़ देवताओं की तरह खड़े हुए हमारा अभिवादन कर रहे थे। हमने उस पहाड़ को पार किया और नीचे उतरने लगे। बहुत दूर कोई आश्रम-सा दिखाई दिया। मैदान में एक ही स्थान पर पेड़ों को घना झुरमुट था और कुछ-कुछ आश्रम की तरह दृश्य नज़र आ रहा था।

पहाड़ से उतरकर हम लगभग डेढ़ या दो मील चले होंगे कि संन्यासी रुक गया और बोला, "यह सामने ही आश्रम है, चारों तरफ़ पर्वतमालाओं से घिरा हुआ अत्यधिक सुन्दर। हम सही समय पर पहुंच गए हैं। गुरुदेव भी प्रातःकालीन पूजा कर बाहर आ गए होंगे और ब्रह्म शिला पर बैठे हुए होंगे।"

हम दोनों के शरीर में रोमांच हो आया, जिसकी कई वर्षों से कामना थी, वह आज मिलने जा रहा है। जिस स्थल को देखने की लालसा थी, वह सामने ही है। जिस गुरुदेव से मिलने की उतावली थी, वे कुछ ही दूर बैठे हुए हैं। कितना महान क्षण होगा वह, जब हम उनके चरणों में उपस्थित होंगे, हमारे सिर उनके कमलवत चरणों में झुके होंगे और उनका वरदहस्त सिर पर फिर रहा होगा।

दाहिनी ओर भी बहुत ऊंचाई से एक झरना बड़ी तेज़ी के साथ गिर रहा था। जब उसका पानी नीचे गिरता, तो धुआं-सा निकलता हुआ दिखाई देता। हम झरने के पास आकर खड़े हो गए। मैंने पांच-सात मिनट सुस्ता कर स्नान किया। शरीर धूल से अट गया था। गुरुदेव के चरणों में शुद्ध काया को ही ले जाएं, तो ज़्यादा उचित रहेगा। भैरवी ने भी स्नान करने का निर्णय

लिया और एक तरफ़ पेड़ों के झुरमुट में उसने स्नान कर कपड़े बदल लिये। मैंने भी अपने कपड़े बदल लिये थे।

संन्यासी ने कहा, "मेरा नाम विज्ञानानन्द है। यह आश्रम परम पूज्य योगीराज निखिलेश्वरानन्द जी का है, जो योगियों में सर्वश्रेष्ठ और अद्वितीय साधक हैं। लगभग छः मील में फैला हुआ यह आश्रम 'दिव्य आश्रम' कहलाता है और इसका कण-कण उनकी तपस्या से आपूरित है। यहां प्रकृति स्वयं सेवा के लिए प्रतिक्षण प्रस्तुत है। आश्रम में उच्च कोटि के झरने, ऊपर से गिरते हुए आंखों को बरबस बांध लेते हैं। आश्रम के बिल्कुल पास ही भद्रशीला नदी वेग के साथ बहती हुई ऐसी प्रतीत होती है, मानो शिव की जटा में से निकलकर गंगा तेज़ी के साथ बह रही हो। यहां पर छः हज़ार संन्यासी-संन्यासिनियां, योगी-योगिनियां, साधक-साधिकाएं हैं। प्रत्येक अपनी-अपनी साधनाओं में रत हैं, कई-कई वर्षों से वे यहां हैं और प्रत्येक अपने-आप में प्रसन्न हैं।

"यह आश्रम सिद्धाश्रम का ही एक दूसरा रूप है। पूज्य गुरुदेव का सिद्धाश्रम से निकट सम्पर्क है। वे नित्य शून्य मार्ग से सिद्धाश्रम जाते हैं और वहां के ऋषियों का मार्गदर्शन कर यहां लौट आते हैं। यह आश्रम विश्व का अन्यतम आश्रम है।"

भैरवी सुनकर भाव-विभोर हो गई। उसने कहा, "जैसा मैंने ध्यान में देखा था, लगभग वैसा ही वर्णन संन्यासी कर रहे हैं। यही नाम मेरे कानों में झंकृत हुआ था। योगीराज निखिलेश्वरानन्द जी तो विश्वविख्यात संन्यासी हैं, जिनका नाम ही अपने-आप में पवित्र, दिव्य और उदात्त है। जिनका शिष्य होना अपने-आप में गौरवमय माना जाता है। उच्च कोटि के संन्यासी और योगी मन में यह हसरत पाले रहते हैं कि किसी प्रकार जीवन में एक बार, बस एक बार इनके दर्शन हो जाएं। उनका शिष्य बनना तो कई-कई जन्मों के पुण्यों का उदय ही माना जाता है। तो क्या परम हंस योगीराज सच्चिदानन्द जी के प्रधान शिष्य निखिलेश्वरानन्द जी मेरे गुरु हैं। क्या मेरा सौभाग्य इतना महान है कि मैं उस गुरु का सान्निध्य प्राप्त कर सकूंगी। क्या मेरे जीवन का पुण्योदय हो गया है कि मैं उनके पास पहुंच सकूंगी। उनकी शिष्या कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकूंगी?"

उसने नज़रें ऊपर उठाईं, तो संन्यासी स्थिरचित्त से एक तरफ़ खड़ा था। भैरवी ने सोचा निखिलेश्वरानन्द जी का नाम तो हज़ार बार सुना है, औघड़ कपालनाथ भी कह रहा था कि ऐसे मेरे भाग्य कहां कि मैं अपने जीवन में उनके दर्शन कर सकूं। उनका दर्शन ही जीवन की पूर्णता है। जो अपने जीवन में एक बार उनके दर्शन कर लेता है, उसका जीवन तो स्वयं ही धन्य हो जाता है। वे तो साक्षात शिव के स्वरूप हैं।

फिर कुछ सोचता हुआ औघड़ कपालनाथ बोला था, "मेरे गुरु बाबा बटुकनाथ को एक बार अपने जीवन में बहुत दूर से स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन हुए थे और दर्शन होते ही उनके सारे शरीर में एक अजीब प्रकार का विद्युत-संचार हो गया था। स्वतः ऐसा शक्तिपात हुआ था कि वे तीन दिन तक अर्द्ध जाग्रतावस्था में पड़े रहे। उनका जीवन तो निश्चय ही सौभाग्यशाली होगा, तभी तो उन्हें स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन हुए थे।"

तो क्या उसका सौभाग्य बाबा बटुकनाथ और औघड़ कपालनाथ से भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है? क्या वास्तव में ही मैं कुछ ही क्षणों बाद शंकरस्वरूप निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन कर सकूंगी। क्या यह गन्दा, अपवित्र शरीर उनके योग्य है? क्या मैं ऐसे शरीर को उनके चरणों में रख सकूंगी? क्या यह उचित है कि मैं इन हाथों से ऐसे दिव्य विभूति के चरण स्पर्श कर सकूं?

निश्चय ही योगीराज अद्वितीय हैं, अप्रतिभ हैं, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में वे पूर्णता प्राप्त हैं। अन्नपूर्णा स्वयं उनके पास खड़ी रहती है। जितने भी शिष्य उनके आसपास होते हैं, उन्हें भिक्षा की ज़रूरत नहीं होती। वे कहीं याचना नहीं करते। किसी से मांगना अभीष्ट नहीं, स्वयं अन्नपूर्णा उनका पालन-पोषण करती है।

केवल अन्नपूर्णा ही नहीं सारी प्रकृति उनके नियन्त्रण में है। उनके संकेत पर प्रकृति नर्तन करती रहती है। वे सशरीर समस्त ब्रह्मांड में विचरण करने में सक्षम हैं। पृथ्वी लोक ही नहीं अपितु अन्य लोकों में भी उनकी अबाध गति है। वे जहां भी जाना चाहें कुछ ही क्षणों में सशरीर पहुंच जाते हैं। काल और दूरी उनके लिए मायने नहीं रखते।

मैं स्वयं इतने महान योगी का नाम सुनकर भाव-विभोर ही उठा था।

एक प्रकार से मुझे अपने कानों पर विश्वास नहीं हो रहा था कि कभी स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन हो सकेंगे। मैंने बंगला भाषा में प्रकाशित उनकी जीवनी पढ़ी थी। बंगाली मोशाय ने वह जीवनी मुझे पढ़ने के लिए दी थी और कहा था, ऐसे युग-पुरुष निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन तो जीवन में सम्भव नहीं, पर उनकी यह जीवनी भी उतनी ही पवित्र और उदात्त है। इसको स्पर्श करने पर भी सारे शरीर में विद्युत-प्रवाह-सा अनुभव करने लगता है।

उस पुस्तक में मैंने पढ़ा था कि परमहंस स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी मन्त्र-द्रष्टा एवं मन्त्र-स्रष्टा हैं। उन्होंने नवीन मन्त्रों की रचना कर कुछ विशिष्ट साधना पद्धतियों को विकसित किया था, जो कि सर्वथा गोपनीय दुर्लभ और अप्राप्य थीं। सिद्धाश्रम के वे नियन्ता हैं। ऊंचे-से-ऊंचे योगी भी इन्हें देखकर अभ्यर्थना के लिए उठकर खड़ा हो जाता है। सिद्धाश्रम के योगियों में भी इनका बहुत बड़ा सम्मान है। उन्होंने सिद्धाश्रम में जो परिवर्तन किए, वे अपने-आप में अद्वितीय हैं। यज्ञ के क्षेत्र में और विशेष साधना-पद्धतियों के क्षेत्र में इनका नाम साधनात्मक इतिहास में अमिट रहेगा।

मैंने पढ़ा था कि वे अधिकतर या तो सिद्धाश्रम में रहते हैं या फिर अन्य अपने आश्रमों में। उस पुस्तक में दिव्य आश्रम का भी वर्णन है। तो क्या यही वह दिव्य आश्रम है, जहां हम जा रहे हैं? वह बंगाली लेखक स्वयं उच्च कोटि के संन्यासी योगी थे। वे स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी के शिष्य रहे थे और तन्त्र के क्षेत्र में विशिष्ट साधनाएं सम्पन्न की थीं। उन्होंने भावविभोर होकर प्रामाणिक दृष्टि से उनकी जीवनी लिखने का प्रयास किया था, फिर भी उन्होंने अन्त में लिखा था कि मैंने यद्यपि छः सौ पृष्ठों में बहुत कुछ समेटने का प्रयत्न किया है, परन्तु उनके जीवन का करोड़वां हिस्सा भी मैं इस पुस्तक में व्यक्त नहीं कर सका हूं। उनके जीवन को शब्दों में बांधना सम्भव नहीं है। पूरे समुद्र को गठरी में नहीं बांधा जा सकता। उनका व्यक्तित्व भी हिमालय से महान और समुद्र से भी ज़्यादा अगाध है। वे सही शब्दों में युग-पुरुष हैं।

भैरवी ने स्वामी जी की ओर मुख़ातिब होकर कहा, "विज्ञानानन्द जी वास्तव में हम अपने-आपको रोमांचित अनुभव कर रहे हैं। हम ऐसी महान विभूति और युग पुरुष के सामने जा रहे हैं, जो हज़ारों-हज़ार सूर्यों से भी ज़्यादा प्रखर और अद्वितीय हैं। जिनकी साधनात्मक थाह पाना सम्भव नहीं है। निश्चय

ही सिद्धाश्रम के वे अद्वितीय योगी हैं और मैंने कहीं पढ़ा था कि सिद्धाश्रम में सबसे ज़्यादा शिष्य उनके ही हैं।"

स्वामी जी ने जवाब दिया, "आप सही कह रही हैं। यद्यपि मुझे उनके साथ सिद्धाश्रम जाने का तो सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, परन्तु जो मेरे अग्रज गुरु भाई सिद्धाश्रम गए हैं, वे अपने-आप को धन्य अनुभव कर रहे हैं। उन्होंने वहां से वापस दिव्य आश्रम आकर बताया था कि वहां पर दो हज़ार वर्ष की आयु प्राप्त योगी और संन्यासी भी दिखाई देते हैं। यहां का सारा वातावरण अपने-आप में अत्यधिक चुम्बकीय और मोहक है। जहां पर काल का कोई प्रभाव व्याप्त नहीं होता। वहां पर किसी की मृत्यु नहीं हो सकती। किसी पर बुढ़ापा अपना अधिकार नहीं जता सकता, किसी व्यक्ति को रोग नहीं हो सकता। वह इन सांसारिक प्रपंचों से सर्वथा दूर साधनात्मक ऐसा भूभाग है, जो पूरे ब्रह्मांड में अन्यतम है। जहां पर मनुष्य तो क्या देवता भी आने के लिए तरसते हैं।

"उन अग्रज गुरु भाइयों ने गुरुदेव के बारे में बताया कि सामान्य योगी या साधक ही नहीं, दो हज़ार वर्ष आयु प्राप्त संन्यासी भी स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी को देखकर सम्मान प्रदर्शित करने के लिए उठ खड़े होते हैं, जब तक वे पास में से निकल नहीं जाते, तब तक विनीत भाव से खड़े रहकर अभ्यर्थना करते हैं। उन ऋषियों की यह चाह होती है कि इस अद्वितीय युग-पुरुष के चरणों में बैठने को कुछ क्षण मिल जाएं। साधना की कोई विशेष पद्धति प्राप्त हो जाए, कुछ ऐसा हो जिससे कि जीवन में अद्वितीयता प्राप्त हो।

"स्वामी जी का व्यवहार सभी के प्रति अत्यधिक मधुर और हृदयस्पर्शी है। वे सामान्य साधक को भी उतना ही महत्त्व और स्नेह देते हैं, जितना कई सौ वर्ष प्राप्त योगी को। उनके पास कोई भी, किसी भी समय जा सकता है। उनके द्वार किसी के लिए बन्द नहीं हैं। जो भी उनसे कुछ प्राप्त करना चाहता है, प्राप्त करता है।"

भैरवी स्वामी जी के शब्दों को सुन नहीं रही थी, अपितु एक प्रकार से पी रही थी। अपने पूरे शरीर में आत्मसात कर रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे वह कई-कई जन्मों की प्यासी हो और निरन्तर अमृतपान कर रही हो।

वह जितना पीती जाती, लगता उतनी ही उसकी प्यास बढ़ती जाती है।

भैरवी ने कहा, "वास्तव में आप लोग धन्य हैं, और धन्य है यह दिव्य आश्रम जहां इतने महान योगी सशरीर विद्यमान हैं। सिद्धाश्रम एक उच्चस्तरीय साधना-स्थल है, जहां सामान्य आदमी का प्रवेश या संचरण सम्भव नहीं, पर यह दिव्य आश्रम भारतवर्ष में ही है। और यहां तो कोई भी आ सकता है, पूज्य गुरुदेव के चरणस्पर्श कर सकता है और अपना जीवन ही नहीं अपनी कई-कई पीढ़ियों का जीवन धन्य कर सकता है।"

संन्यासी ने कहा, "हां, बहन, यह दिव्य आश्रम पूज्य गुरुदेव की तपस्या से ही आपूरित है। छः मील लम्बा-चौड़ा यह आश्रम अपने-आप में अद्वितीय है। इसमें दिव्य निर्झर प्रवाहित है। सैकड़ों संन्यासी इसके उद्गम स्थान को ढूंढ़ने में प्रयत्नशील रहे, पर किसी को पता नहीं चला। जो भी इसमें स्नान करता है, वह सब रोगों से मुक्त हो जाता है। उसका शरीर सही अर्थों में दिव्य बन जाता है।"

"यही नहीं, अपितु यह जल कायाकल्प का जल कहलाता है। यहां पर आपको कोई वृद्ध, अपाहिज या दुर्बल दिखाई नहीं देगा। इस निर्झर के तले स्नान करने से स्वयं वृद्धता और जड़ता समाप्त हो जाती है। शरीर में नवीन रक्त संचरण हो जाता है। ऊपर की झुर्रीदार त्वचा सांप के केंचुल की तरह उतर जाती है और स्वतः नई-ताज़ी रक्तिम त्वचा आ जाती है।"

"गुरुदेव के प्रयत्नों से ही यहां कई कल्पवृक्ष हैं, जिनके तले बैठकर जो भी इच्छा प्रकट की जाए, वह स्वतः पूरित हो जाती है। इसीलिए यहां साधकों को किसी प्रकार की कोई अपूर्णता नहीं रहती। वे जो भी चाहते हैं, वह स्वतः उन्हें प्राप्त हो जाता है।"

"यहां नन्दिनी तथा कामधेनु वंश की गायें हैं, जिनके थनों से दूध कम ही नहीं होता। पूरे आश्रम को ये गायें दुग्ध प्रदान करती हैं। आश्रम का प्रत्येक कण अपने-आप में जाग्रत है, चैतन्य है, प्राणवान है।"

"सबसे बड़ी बात यह है कि यह आश्रम कालजयी है। इस पर काल का कोई प्रभाव व्याप्त नहीं होता। यहां कभी भी पुष्प मुरझाते नहीं,

वनस्पति शिथिल नहीं होती। इस आश्रम की स्थापना पूज्य गुरुदेव के प्रयत्न से ही सम्भव हो सकी है।"

भैरवी ही नहीं, संन्यासी के मुंह से निकले शब्द मैं भी अमृत की तरह कानों से हृदय में उतार रहा था। इस आश्रम की महत्ता मैंने कई स्थानों पर पढ़ी थी।

हम दोनों रोमांचित थे। हमने कल्पना भी नहीं की थी कि हमारे जीवन में ऐसा क्षण उपस्थित हो जाएगा कि अनायास परम पूज्य गुरुदेव निखिलेश्वरानन्द जी का सान्निध्य प्राप्त हो जाएगा और अचानक दिव्य आश्रम आने का अवसर मिलेगा। मैंने अपने जीवन में तो इतने बड़े पुण्य नहीं किए थे कि दिव्य आश्रम तक आ सकूं या योगीराज निखिलेश्वरानन्द जी के दर्शन कर सकूं, ज़रूर मेरे पूर्वजों ने कोई विशेष पुण्य किए होंगे।

संन्यासी ने कहा, "चलें, विलम्ब हो रहा है। पूज्य गुरुदेव ब्रह्मशिला पर विराजमान होंगे। मुझे इस समय पुनः आने की आज्ञा दी थी। मेरी राय में अब हमें चलना चाहिए और ऐसा कहते-कहते संन्यासी आगे बढ़ गया।"

थोड़ी ही दूरी पर एक बहुत बड़ा द्वार दिखाई दिया, जो कि वनस्पतियों से आच्छादित था। संन्यासी ने उस द्वार में प्रवेश किया। संन्यासी के पीछे-पीछे हम दोनों भी अन्दर पहुंच गए।

हज़ारों संन्यासी-संन्यासिनियां श्रेणीबद्ध बैठे हुए थे। बाईं ओर संन्यासी भगवे वस्त्रों में बैठे हुए थे और दाहिनी ओर संन्यासिनियां, हम बाएं पार्श्व से निकलकर आगे बढ़े और ब्रह्म पीठ के पास आकर वह युवक संन्यासी खड़ा हो गया। उसने ज़मीन पर साष्टांग लेटकर ब्रह्म मंच पर बैठे तेजस्वी संन्यासी को प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एक तरफ़ खड़ा हो गया।

मैं और मृगाक्षी मंच के पास ही खड़े आनन्दातिरेक में उस भव्य और अद्वितीय व्यक्तित्व को सामने साकार देख रहे थे। एक ऐसा व्यक्तित्व जो पूरे विश्व में व्याप्त है, जिसकी सुगन्ध से पूरा हिमालय सुवासित है।

हम दोनों ने एक साथ ही भूमि पर प्रणिपात होकर उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़कर एक तरफ़ खड़े हो गए। उन्होंने आशीर्वाद दिया, "आयुष्मान हो।"

उन्होंने फिर कहा, "मृगाक्षी बैठो, अरविन्द तुम भी बैठो, सायंकाल मुझे मिलना।"

हम दोनों एक तरफ़ बैठ गए, गुरुदेव ने अपना प्रवचन जारी रखा। वे ब्रह्म की व्याख्या कर रहे थे। बता रहे थे कि ब्रह्म एक शाश्वत सार्वकालीन सत्ता है, जिसके माध्यम से समस्त जड़, चेतन, जंगम स्थित हैं। परन्तु इस ब्रह्म का साक्षात्कार अन्तर चक्रों में एवं बाह्य रूप में कर सकते हैं। प्रकृति के माध्यम से इस ब्रह्म को अपनी आंखों से देख सकते हैं, उसे आज्ञा दे सकते हैं, उसकी आज्ञा का पालन कर सकते हैं। इसी प्रकार अन्तर चक्रों के जागरण से अन्तस्थल में ब्रह्म को भलीभांति पहचान सकते हैं और देख सकते हैं।

जो कुछ बाह्य जीवन में है, वही आन्तरिक जीवन में भी है। आज से हज़ारों वर्ष पहले सिन्धु नदी के पावन तट पर ऋषि वेद की ऋचाओं के माध्यम से प्रकृति को समझ रहे थे। उनकी कालजयी वाणी शाश्वत बनती जा रही थी और यह बाहरी दृश्य आन्तरिक जीवन में भी बराबर घटित रहता था।

व्यक्ति बार-बार जन्म लेता है, कुछ योगी ही काल पर विजय प्राप्त कर पूर्ण अमृतमय बन जाते हैं। मोक्ष जीवन की पूर्णता नहीं अपितु विसर्जन है। इसलिए योगियों में मोक्ष जैसा शब्द है ही नहीं। या तो योगी, या साधक बार-बार जन्म लेकर साधनाओं में पूर्णता प्राप्त करना चाहता है, तपस्या करना चाहता है, प्रकृति से आपूर्य होना चाहता है या फिर कालजयी होकर अमृतमय बन जाता है। न उसे वृद्धता व्याप्त होती है और न मृत्यु ही।

प्रवचन समाप्ति पर सभी शिष्य-शिष्याएं अत्यन्त विनीत भाव से खड़े हो गए और गुरुदेव को प्रणाम कर पूर्ण अनुशासनबद्ध तरीक़े से अपने-अपने स्थान पर लौट गए। गुरुदेव भी एक तरफ़ बढ़ गए।

कुछ ही क्षणों में वह प्रांगण ख़ाली हो गया, सभी अपने-अपने स्थानों पर विशिष्ट साधनाओं के लिए निकल गए, तभी वह संन्यासी हमारे सामने आया जो हमें लेने के लिए आया था।

वह आगे-आगे चल पड़ा। हम दोनों उसके पीछे-पीछे चल रहे थे, थोड़ी ही दूरी पर बाईं ओर वह निर्झर दिखाई दिया, जिसे कल संन्यासी युवक ने दिव्य निर्झर कहा था।

हम दोनों एक शिला पर बैठ गए। मेरी आंखों के सामने बार-बार गुरुदेव का दिव्य चेहरा खिल उठता।

वहां बैठे-बैठे कितना समय बीत गया कुछ कहा नहीं जा सकता। लगभग दिन ढलने लगा था। तब तक संन्यासी युवक कहीं अन्यत्र चला गया था। मुझे दूर से वह आता हुआ दिखाई दिया।

बोला, "सन्ध्याकाल हो रहा है, थोड़ी ही देर में गुरुदेव के आवास के द्वार खुल जाएंगे। आपको मिलने के लिए आज्ञा दी थी, आप चलें तो उचित रहेगा।"

अब हम श्वेत शिलाओं से निर्मित एक भवन की ओर आ गए थे। पूरा भवन मरकतमणियों से जड़ा था। इन मणियों से विशेष प्रकार का प्रकाश निकल रहा था, जो कि पूरे आश्रम को देदीप्यमान कर रहा था। दीवारें श्वेत पत्थर से निर्मित थीं और उनसे एक विशेष प्रकार का प्रकाश निकल रहा था। हम दोनों मुख्य द्वार के समीप जाकर संन्यासी युवक के साथ खड़े हो गए।

कुछ ही समय बीता होगा कि प्रधान द्वार खुला। हम अन्दर पहुंचे, तो बाईं ओर एक विशेष आसन पर गुरुदेव बैठे हुए थे, नीचे व्याघ्र-चर्म बिछा हुआ था और चारों ओर अपूर्व सुगन्ध व्याप्त थी।

गुरुदेव ने संन्यासी युवक को चले जाने का संकेत किया। वह नम्र भाव से मुख्य द्वार से निकल गया। हम दोनों को गुरुदेव ने बैठने का इशारा किया। गुरुदेव के सामने ही एक तरफ़ हटकर हम दोनों बैठ गए।

गुरुदेव ने कहा, "मृगाक्षी, मां विशालाक्षी की तुम पर कृपा है, और उसके आशीर्वाद से ही तू यहां तक पहुंच सकी है। पिछले दिनों तूने औघड़ कपालनाथ के साथ जो कुछ किया वह सही हो सकता है; परन्तु फिर भी तुम्हें थोड़ा और संयम से काम लेना चाहिए था।"

"तुम सही अर्थों में भैरवी हो और तन्त्र क्षेत्र में तुम्हें विशेष सफलता प्राप्त करनी है, पर यह क्षेत्र अत्यधिक कठिन और तलवार की धार पर चलने के समान है। इसमें थोड़ी-सी भी असावधानी होने पर स्वयं का भी विनाश हो सकता है। तुम्हारे पास समय बहुत कम बचा है और इस समय तुम्हें निरन्तर

साधनारत रहते हुए तन्त्र की उच्च क्रियाएं सीखनी हैं। साथ-ही-साथ उन विद्याओं में सिद्धहस्त होना है, जो कि दुर्लभ और असम्भव कही जाती हैं।"

"तन्त्र जीवन का महत्त्वपूर्ण और आवश्यक बिन्दु है। बिना तन्त्र के किसी का भी जीवन व्यवस्थित और सन्तुलित नहीं हो सकता। उच्च कोटि की साधनाएं सम्पन्न करने के लिए तन्त्र का माध्यम आवश्यक है।"

"मैं इससे पूर्व भी तुम्हारा गुरु रह चुका हूं। पिछले जीवन में भी तुम भैरवी थीं और कुछ कारणों से तुम्हें साधना अधूरी छोड़कर पुनः जन्म लेना पड़ा। पर मैं चाहता हूं कि अब किसी प्रकार की शिथिलता या न्यूनता नहीं रहे। इस जीवन में ही तुम्हें सब-कुछ प्राप्त कर लेना है, जो कि तुम्हारा अभीष्ट है।"

"यह अरविन्द भी योग भ्रष्ट साधक है। पिछले जीवन में योग में पूर्णता प्राप्त करते-करते स्खलित हो गया और इसे मृत्यु का वरण करना पड़ा। इसका पथ भी समस्त साधनाओं के साथ-साथ तन्त्र भी है, और तन्त्र के माध्यम से ही यह विशिष्ट सफलता प्राप्त कर अन्य साधनाओं में पूर्णता प्राप्त कर सकता है।"

"तुम्हें कुछ दिन कालत्रयानन्द के साथ रहना होगा और तन्त्र की कुछ विशिष्ट साधनाएं सीखनी होंगी। इस आश्रम के पास ही सिद्ध पीठ है, वहीं उसके साथ साधना में निरन्तर रत रहते हुए सफलता प्राप्त करनी है। बीच-बीच में, तुम जब भी चाहो, इस आश्रम में आ-जा सकती हो। परन्तु किसी प्रकार की कमज़ोरी, शिथिलता या न्यूनता न हो।"

"अरविन्द भी कुछ समय तक तुम्हारे साथ ही रहेगा। तन्त्र की चार-छः क्रियाएं सीखने के बाद इस आश्रम में रहकर इसे योग की विशिष्ट सिद्धियां प्राप्त करनी हैं।"

तभी एक संन्यासी उपस्थित हुए। गुरुदेव ने कहा, "इन दोनों को कालत्रयानन्द के पास ले जाओ।"

हम दोनों उठ खड़े हुए। पूज्य गुरुदेव को श्रद्धायुक्त प्रणाम किया और उस संन्यासी के साथ कक्ष से बाहर आ गए।

हम मुख्यद्वार से आगे बाईं ओर बढ़ रहे थे, रास्ता बिल्कुल स्पष्ट था। दोनों तरफ़ नयनाभिराम प्राकृतिक दृश्य थे। एक-एक पुष्प अपने-आप में अद्वितीय था, यह छोटा-सा तालाब-सा था, जिसमें शुद्ध स्वच्छ जल भरा हुआ था। इसके किनारे ही खिले हुए कमल देखने को मिले। एक कमल का डंठल लगभग आठ इंच मोटाई लिये हुए था, और उस पर एक मीटर से भी ज़्यादा घेरे वाला कमल खिला हुआ था जो गुलाबी पंखुड़ियों से अद्वितीय लग रहा था, जिसकी सुगन्ध ही अपने-आप में सम्मोहित करने वाली थी।

हमें वहां खड़े देख उस संन्यासी ने कहा, "यह ब्रह्म-कमल है, और ऐसे ब्रह्म-कमल यहां सैकड़ों खिले हुए हैं। उधर थोड़ा आगे चलने पर रुद्र-कमल और विष्णु-कमल भी खिले हुए देखने को मिल सकते हैं।" ऐसा कहते-कहते उसने एक तरफ़ संकेत कर दिया।

ब्रह्म-कमल गुलाबी, पीले और लाल रंग के भी खिले हुए थे। संन्यासी ने कहा, "इन सभी की अलग-अलग महत्ता है, अलग-अलग प्रयोजन हैं, कुछ विशिष्ट साधनाओं के लिए इनका प्रयोग किया जाता है।"

वह संन्यासी आगे बढ़ता जाता था, और अपनी बात कहता जाता था। हम दोनों उसके पीछे-पीछे चल रहे थे, लगभग दो-ढाई मील चलने पर ही हमें दाहिनी ओर एक छोटा-सा आश्रम दिखाई दिया, जो कि अत्यन्त घनी प्रकृति और पेड़ों के बीच स्थित था। इसका द्वार अत्यन्त ही विशाल और सुन्दर था। आश्रम के पास ही एक नदी प्रवाहित हो रही थी जिसके पास में से होकर ही आश्रम में जाया जा सकता है।

हम आश्रम के अन्दर पहुंचे, तो हमें कई यज्ञ-कुंड बने हुए दिखाई दिए। इन सभी यज्ञ-कुंडों की निर्माण-शैली अलग-अलग प्रकार की थी, कोई चतुष्कोणीय कुंड था, तो कोई षट्कोणीय, कोई अष्टदल युक्त था, तो कोई द्वादशकोणीय। एक तरफ़ हमें योनी के आकार के कुंड दिखाई दिए तो दूसरी ओर विचित्र प्रकार से निर्मित कुंड देखने को मिले। सभी कुंडों की बनावट और रचना शैली विशिष्ट थी।

निश्चय ही यह तान्त्रिक क्षेत्र है इस प्रकार से बने हुए कुंड हम दोनों ने पहली बार देखे थे। कुंडों के एक तरफ़ से रास्ता आगे की ओर जाता था,

हम दोनों भी उस संन्यासी के साथ उस रास्ते पर बढ़ गए।

सामने ही एक बहुत बड़ी पत्थर की शिला पर आसन बिछा हुआ था, जिस पर काले रंग का एक व्यक्ति बैठा हुआ था, जिसके लम्बे-लम्बे बाल पीछे लटके हुए थे, और रस्सियों की तरह गुंथे हुए थे। ललाट पर बड़ा-सा सिन्दूर का तिलक दिखाई दे रहा था, कानों पर और सीने पर बड़े-बड़े काले बाल दूर से ही नज़र आ रहे थे। पूरा शरीर मज़बूत और गठा हुआ था। पैर लटकाए हुए वह एक आसन पर बैठा हुआ था। पास में दो-तीन भैरव-भैरवियां खड़ी थीं।

संन्यासी ने चुपके से कहा, "ये ही स्वामी कालत्रयानन्द हैं।"

हम दोनों ने प्रणाम किया, तो कालत्रयानन्द ने हंसते हुए कहा, "आओ, आओ मृगाक्षी और अरविन्द। गुरुदेव का सन्देश मुझे मिल गया था और मैं इसीलिए यहां बैठा था। उसकी आवाज़ फटे हुए बांस की तरह खड़खड़ाहट युक्त थी, जैसे कि जंगल में परस्पर बांस टकरा गए हों।"

उसने ज़ोर से ताली बजाई। उसके शरीर में वास्तव में ही बहुत ताक़त थी। उस ताली की आवाज़ भी ऐसी लगी मानो किसी मज़बूत व्यक्ति ने दो पत्थरों को परस्पर टकरा दिया हो। तभी एक भैरवी प्रकट हुई, जिसकी उम्र लगभग पैंतालीस वर्ष के आसपास होगी। साड़ी पहने हुए, सिर पर सिन्दूर का तिलक, बड़े-बड़े दांत और पीछे छितरे हुए बाल। सब-कुछ मिलकर मन में जुगुप्सा का भाव ही पैदा कर रहा था।

संकेत पाकर हम दोनों भैरवी के पीछे-पीछे चल पड़े। सांझ का धुंधलका घिरने लगा था। थोड़ी ही दूर चलकर उसने दो पक्के बने हुए कक्ष दिखा दिए और कहा, "यह मृगाक्षी के लिए है और यह आपके लिए। किसी वस्तु को मांगने की ज़रूरत नहीं है, अपने-आप आपके पास पहुंच जाएगी।"

हम दोनों अपने-अपने साधना कक्षों में चले गए। प्रत्येक कक्ष भली प्रकार से सुसज्जित था। एक तरफ़ सोने के लिए मृग-चर्म बिछा हुआ था, पास में ही जलपात्र था, जिसमें ताजा जल भरा हुआ था। एक तरफ़ भोजन के लिए कुछ पात्र पड़े हुए थे और दूसरी ओर कोने में आसन बिछा हुआ था, उसके

सामने साधना से सम्बन्धित उपकरण करीने से सजाए हुए थे। सब-कुछ व्यवस्थित-सा लग रहा था।

थोड़ी ही देर में लगभग सोलह-सत्रह वर्ष की एक युवती आई, अत्यधिक सुन्दर और आकर्षक। मैंने आश्रम में घुसने के बाद पहली बार एक सुन्दर युवती को देखा था। उसने कहा, "मेरा नाम योगमाया है और इधर के कक्षों की ज़िम्मेवारी मेरे ऊपर है। यदि आपको किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो कह देना, किसी बात की चिन्ता न करें।"

फिर कुछ रुककर बोली, "अभी आधे घंटे बाद नदी तट पर भोजन की व्यवस्था हो जाएगी। सभी साधक-साधिकाएं वहीं पर भोजन करते हैं। आज पहला दिन होने के कारण मैं आपको उधर लिवा ले जाऊंगी। कल से फिर आपको अपने-आप ज्ञान हो जाएगा।"

मैं उससे कुछ और पूछना चाहता था, इससे पहले ही वह कक्ष से बाहर निकलकर मृगाक्षी के कक्ष में चली गई।

कुछ देर बाद तुरही की आवाज़ आई। यह इस बात का संकेत था कि भोजन का समय हो गया है। सभी नदी तट पर पहुंचें, अपना-अपना भोजन प्राप्त कर लें। तभी वह पहले वाली प्रौढ़ा आ उपस्थित हुई। उसका नाम योगिनी मां था। सभी उसे मां के नाम से ही पुकारते थे। देखने में वह क्रूर, बेढंगी और कुरूप-सी नज़र आती थी, परन्तु उसके हृदय में अत्यधिक दया, करुणा और ममत्व था। किसी भी साधक को असुविधा होती, तो वह सबसे पहले उसकी सहायता करती।

उसने आकर कहा, "जल्दी से बाहर निकल जाओ। अन्दर पड़े-पड़े क्या कर रहे हो? सभी लोग भोजन करने जा रहे हैं, तुम लोग भी आश्रम के मुख्य द्वार से बाहर निकलकर बिल्कुल पास में ही बहने वाली मेरुश्रृंगा नदी के तट पर पहुंच जाओ।

नदी का तट अत्यन्त ही आकर्षक था। मेरुश्रृंगा नदी हिमालय की अत्यन्त पवित्र नदियों में गिनी जाती है। इसकी लहरें कल-कल करती हुई अत्यधिक आकर्षक लग रही थीं। जिस प्रकार गांव में गोधूलि के समय मन्द-मन्द-सा

प्रकाश होता है, ठीक वैसा ही प्रकाश इस समय व्याप्त था। बाद में मुझे मालूम पड़ा कि यहां प्रत्येक रात्रि ऐसा ही प्रकाश बना रहता है, चाहे कृष्ण पक्ष हो या शुक्ल पक्ष।

उस आश्रम में आठ-सौ के लगभग साधक-साधिकाएं थीं। नित्य सायंकाल नदी तट पर ही भोजन की व्यवस्था होती। इस समय कोई भोजन बनाने वाला नहीं था। स्वतः प्रकृति भोजन का निर्माण करती और अदृश्य शक्तियां उस स्थान पर पकाया हुआ भोजन लाकर रख देतीं। पास में ही जल-पात्र भरे हुए थे और जैसी गृहस्थ के घरों में गिलास, थालियां और कटोरियां होती हैं, ठीक वैसे ही पात्र करीने से सजे हुए थे। वे सभी पात्र चमक रहे थे, पर यह पता नहीं चल रहा था कि वे किस धातु से निर्मित हैं।

चार-पांच साधक-साधिकाएं भोजन परोस रहे थे। प्रत्येक साधक एक पंक्ति में आकर एक थाली, तीन कटोरियां, एक गिलास उठाती, आगे थाली में खाद्य पदार्थ परोसे जाते, और फिर वह साधक एक स्थान पर बैठकर भोजन करता।

हमारी बारी आने पर मृगाक्षी ने और मैंने पात्र उठाए। आज थाली में लगभग आठ प्रकार के खाद्य पदार्थ परोसे गए थे। हम दोनों पंक्ति में बैठ गए। अत्यन्त ही मधुर और आनन्ददायक वातावरण में भोजन परोसा जा रहा था। एक परिवार की तरह सभी भोजन कर रहे थे और बीच-बीच में शिष्ट हास्य के साथ बातचीत चल रही थी।

भोजन करने के बाद सभी उठ खड़े हुए और पुनः आश्रम के अन्दर विशिष्ट कक्ष में एकत्र हो गए। सभी पंक्तिबद्ध बैठ गए। एक तरफ़ साधक-गण बैठे हुए थे, दूसरी तरफ़ साधिकाएं। पूरे कमरे में सुगन्धित पदार्थ धूप आदि जल रहे थे, जो कि उधर प्राप्त वनस्पतियों से निर्मित थे।

थोड़ी ही देर में स्वामी कालत्रयानन्द आए और व्यास पीठ पर बैठ गए। वह तन्त्र की व्याख्या और महत्ता समझाने के बाद पाशुपत साधना की प्रारम्भिक स्थिति समझा रहे थे। उन्होंने विस्तार से पाशुपत साधना और उसकी प्रयोग विधि समझाई। उन्होंने बताया कि मन्त्रों के माध्यम से हज़ारों मील दूर बैठे शत्रु का संहार भी किया जा सकता है। महाभारत युद्ध में अर्जुन ने कई

बार इसी पाशुपत का प्रयोग किया था। राम-रावण युद्ध में भी हनुमान ने इसी तन्त्र के माध्यम से पाशुपत प्रयोग को सम्पन्न कर अपने शत्रु को परास्त किया था।

लगभग डेढ़ घंटे तक उन्होंने विविध उदाहरण देकर पाशुपत प्रयोग के बारे में समझाया। उनकी समझाने की विधि अत्यन्त ही आकर्षक और बोधगम्य थी। तन्त्र जैसे कठिन विषय को जिस प्रकार से वे सरल भाषा और सरल प्रयोगों से समझा रहे थे, वह वास्तव में ही सराहनीय था। इस भीमकाय शरीर में इतना ज्ञान है, इसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

उस दिन अपना प्रवचन समाप्त कर उन्होंने साधकों को महानिशा में साधना सम्पन्न करने की आज्ञा दी। हम दोनों से कहा, "आज की रात्रि आपके लिए विश्राम की है। कल प्रातःकाल से आपको साधनाएं दी जा सकेंगी।"

दूसरे दिन लगभग चार बजे मेरी आंखें खुल गईं। मैं उठकर नदी की ओर चला गया। मैंने देखा कि मृगाक्षी पहले से ही नदी पर पहुंच गई थी। उसने तब तक स्नान कर लिया था और नदी के किनारे ही गुरु-पूजन में रत थी। मैं स्नान कर उसके पास ही जाकर बैठ गया।

लगभग सात बजे वह पूजा से उठी और अपने कक्ष में पहुंची। तभी उसे सन्देश मिला कि आप दोनों को कालत्रयानन्द जी बुला रहे हैं। मैंने तुरन्त कक्ष में ही भीगे कपड़े सुखा दिए और मृगाक्षी के साथ ही कालत्रयानन्द जी के पास पहुंच गया।

वे अपनी विशिष्ट साधना सम्पन्न कर यज्ञ-कुंड से लौटे ही थे और कुछ साधकों को उनसे सम्बन्धित क्रिया-पद्धति समझा रहे थे। हमें देखकर बोले, "बैठो।"

जब बाक़ी सब लोग अपनी विशिष्ट साधना-पद्धति लेकर चले गए, तो कालत्रयानन्द जी ने कहा, आज और कल दो दिन तुम्हें आसपास के स्थानों पर विचरण करना है। पर इस बात का ध्यान रहे कि शाम को लगभग सात बजे यहां आ जाना है और भूल करके भी जब तक पूज्य गुरुदेव का आदेश न मिले, तब तक दिव्य आश्रम की ओर नहीं जाना।

यह समस्त प्रदेश सिद्ध क्षेत्र है, और यह आवश्यक है कि तान्त्रिक साधना सम्पन्न करने वाला व्यक्ति इस सिद्ध क्षेत्र को भली प्रकार जान ले। इसलिए मैंने कोई दिशा या कार्य निर्धारित नहीं किया है। आप किसी भी तरफ़ जा सकते हैं, परन्तु इन दो दिनों में अधिक-से-अधिक स्थान देख लेने हैं। घूमते समय अपनी आंखें और कान खुले रखने हैं।

हम दोनों ने उन्हें प्रणाम किया और मुख्य प्रवेश द्वार से बाहर निकल गए। हमने पहले नदी के किनारे-किनारे ही आगे की ओर जाने का निर्णय लिया। यह सोचा था कि आज बारह बजे तक दक्षिण दिशा की तरफ़ बढ़ते हुए लगभग पांच मील का क्षेत्र देख लेंगे, और फिर पश्चिम की ओर होते हुए आश्रम की ओर लौट आएंगे।

हम लगभग नदी के किनारे-किनारे दो मील चले गए। देखा कि जंगल घने-से-घना होता जा रहा है।

हम मुश्किल से दो फर्लांग ही अन्दर गए होंगे कि पेड़ से धम्म से एक छाया-सी कूदी और शून्य में ही विलीन हो गई। मैं आगे चल रहा था कि एकदम से मेरे पांव रुक गए। तभी उस पेड़ से दूसरी, तीसरी, चौथी और इस प्रकार बारह छायाएं कूदीं और सबकी आवाज़ साफ़-साफ़ सुनाई पड़ी। ऐसा लगा कि पेड़ से कोई कूदा है। और कूदने के बाद वह कहीं दूर नहीं गया है, यहीं आसपास ही गया होगा।

कौन हो सकता है? कोई आवाज़ इसके बाद तो सुनाई दे नहीं रही है। हो सकता है कोई भूत-प्रेत हो, परन्तु केवल कूदने की आवाज़ से क्या होगा? जो भी हो सामने आए, तो पता चलेगा। मैंने ज़ोर से कहा, "जो भी हो, सामने आए, इस प्रकार कायरों की तरह कूदने से क्या होगा?"

तभी आवाज़ आई, "आगे नहीं जा सकते। यहां मेरा राज्य है, और मेरे बिना पूछे कोई आगे नहीं जा सकता।"

भैरवी के क़दम रुक गए, बोली, "क़दम तो तब रुकेंगे, जब तुम्हारा परिचय प्राप्त हो जाएगा। कौन है, और रोकने का आपको क्या अधिकार है?"

अचानक सामने एक अत्यन्त वृद्ध कंकालवत स्त्री आकर खड़ी हो गई।

अभी तो आवाज़ किसी पुरुष की आ रही थी, सम्बोधन भी पुरुष का था, और फिर यह स्त्री कौन सामने आकर खड़ी हो गई। मैंने आंखें फाड़कर देखा, अत्यन्त दुबली कंकालवत शरीर की सारी हड्डियां निकली हुईं। पोपला, दन्तविहीन मुंह, सिर के बाल सफ़ेद सन की तरह रूखे और बेतुके, आंखों की जगह दो छोटे से गड्ढे मात्र दिखाई दे रहे थे। शरीर पर पतला-सा लम्बा कपड़ा और दोनों हाथों में कुछ हड्डियां-सी ली हुई। एक अजीब-सी स्त्री दिखाई दे रही थी।

उस स्त्री ने कहा, "हम मसंड भूषित साधना कर रहे हैं, और तुम लोग बीच में क्यों आ टपके? हम बारह साधक-साधिकाएं हैं और यह मुंड भूषित साधना कर महाकाल को प्रसन्न कर रहे हैं। हम साधना लगभग पूरी करने ही जा रहे थे कि तुम बीच में आ टपके।"

एक क्षण के लिए उसने हम दोनों की आंखों में झांका और मुड़कर चल पड़ी। हम दोनों के पांव भी मुड़ गए। मेरा मन कह रहा था कि इधर नहीं चलना है, हर हालत में जंगल को पार कर लेना है। परन्तु केवल मन ही मेरे नियन्त्रण में था, शरीर तो शायद उसके नियन्त्रण में हो गया था, और स्वतः पांव उसके पीछे-पीछे चल रहे थे। यह स्थिति मेरी ही नहीं अपितु मृगाक्षी की भी थी। वह भी मन्त्रबद्ध-सी मेरे पीछे-पीछे चल रही थी।

वह बिना पीछे देखे तेज़ी से आगे-आगे चल रही थी। रास्ता कोई स्पष्ट नहीं था। बहुत हल्की-सी पगडंडी थी, जो कि कहीं-कहीं तो बिल्कुल अस्पष्ट सी थी, पर वह उस रास्ते पर इस प्रकार से चल रही थी मानो रात-दिन उस रास्ते पर चली हो।

अब जंगल लगभग समाप्त-सा हो रहा था। अभी तक जो वृक्षों की सघनता के फलस्वरूप अंधेरा-सा अनुभव हो रहा था, वह समाप्त हो गया था, और धूप दिखने लगी थी। मैंने देखा कि सामने ही कोई झोंपड़ी है और वह कंकालिनी उसी की ओर बढ़ रही है।

झोंपड़ी के पास जाकर वह रुक गई। तभी कहीं से तीन भयंकर सांप फुफकारते हुए आए और कंकालवती के सामने ही फन फैलाकर खड़े हो गए। वे बार-बार फनों को ज़मीन पर पटकते जैसे कि अत्यधिक क्रोधित हों और ज़बरदस्ती उन्हें लाया गया हो।

कंकालिनी उन तीनों को फन पटकते हुए देखती रही, फिर हवा में से उसने एक बड़ा-सा कटोरा प्राप्त किया, जिसमें दूध भरा हुआ था और वह कटोरा इन सांपों के सामने रख दिया।

दूध समाप्त होने पर कंकालवती ने वह कटोरा पांव के ठोकर से परे हटा दिया। तीनों सांपों के मस्तक पर सफ़ेद-सफ़ेद कौड़ियां चिपकी हुई थीं। कंकालिनी ने साहस कर उनके सिरों पर लगी कौड़ियां खींचकर हटा ली और दूसरे ही क्षण वे तीनों संन्यासी के रूप में तीन युवक दिखाई दिए। कंकालिनी ने उनको संकेत से झोंपड़ी के एक तरफ़ पेड़ के नीचे बैठ जाने के लिए कहा। इन तीनों ने आज्ञा का पालन किया।

कंकालिनी ने हमें थोड़ा आगे आने के लिए कहा। वह कटोरा लुढ़का हुआ अभी तक दिखाई दे रहा था। उसमें से थोड़ा दूध भी छलककर ज़मीन पर गिर गया था, तभी वह कंकालिनी एकदम से हमारे सामने देखते-देखते अट्ठारह वर्ष की सुन्दर तरुणी बन गई।

उस झोंपड़ी में से एक प्रौढ़ स्त्री बाहर निकली। सौम्य शान्त आकर्षक चेहरा, आंखों में मातृत्व भाव और चेहरे पर दिव्यता। आते ही बोली, "बेटा, आ गए तुम?"

मैंने पीछे मुड़ने की कोशिश की, तो लगा कि यह प्रयास करना व्यर्थ है। तभी उस प्रौढ़ा की फिर आवाज़ सुनाई दी, "बेटे, मैं तुमसे ही कह रही हूं।"

मैंने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "मैं तो सीधा-सादा व्यक्ति हूं और समय के प्रवाह में बहता हुआ इस तरफ़ आ गया हूं। न तो मैं आपको जानता हूं और न मुझे पता है कि आपके मेरे क्या सम्बन्ध हैं।"

वह ज़ोर से खिलखिला पड़ी। उसकी हंसी कोई ज़्यादा रुचिकर नहीं लग रही थी। उसने कहा, "कई वर्षों बाद इधर लौटे हो। तुम पहले तान्त्रिक थे और संन्यासी वेश में इसी स्थान पर साधना कर रहे थे। यहीं पर वर्षों तक तुमने तन्त्र की कुछ गुह्य क्रियाएं सीखी थीं। तुम्हारा नाम सर्वानन्द था।

"पर इस लड़की के चक्कर में तुमने साधना को खंडित कर दिया। अपने संन्यासी जीवन को अपवित्र कर दिया और गुरु की अवहेलना कर दी। यह

लड़की पास के ही गांव की रहने वाली थी। और इधर से झरने का पानी लेने नित्य जाया करती थी। तुम और तुम्हारे इन तीनों साथियों ने इसे बहकाया, फुसलाया और तुमने कामान्ध होकर इनके साथ कुकर्म करने की चेष्टा की।

"यद्यपि इसका शील भंग करने के प्रयास में तुम सफलता प्राप्त नहीं कर सके, फिर भी तुमने जो कुछ किया, वह नियमों के विपरीत था। इसीलिए इस स्त्री को चुड़ैल बनना पड़ा, क्योंकि यह सब कार्य केवल तुम्हारे प्रयासों से ही नहीं, इसकी इच्छा से भी हुआ और इस प्रवास में ये तीनों संन्यासी भी साथ थे, इसीलिए ये सर्प बनकर तब से भटक रहे हैं।

"तुम्हें भी सांप बनाकर इस जंगल में पटका जा सकता था, परन्तु तुमने गुरु सेवा की थी और वह शुभ फल कुछ बाक़ी था, जिस वजह से तुम्हें यहां से निकाल दिया गया था। मैं ही तुम्हें तैयार कर रही थी। तन्त्र मार्ग पर सर्वोच्चता प्रदान करने के लिए, मैं तुम्हें कुछ ऐसा बनाना चाहती थी कि तन्त्र के क्षेत्र में तुम अद्वितीय बन सको और तुम कामान्ध होकर मेरी बात अनसुनी कर बैठे। मैं समझाती रही, पर तुम पर किसी प्रकार का कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

"लेकिन चिन्ता करने की बात नहीं है। तुम भी पिछले पचास वर्षों से आग में जल-तप कर शुद्ध स्वच्छ बन गए हो। अब पिछले जीवन का कोई प्रभाव, कोई दोष, तुम पर नहीं रहा है। अब तुम पुनः साधना करने के लिए स्वतन्त्र हो।

"अब तुम सही हाथों में हो। कालत्रयानन्द समर्थ, सशक्त तान्त्रिक हैं, और असीम सिद्धियां उन्हें प्राप्त हैं। तुम दोनों को मैं आशीर्वाद देती हूं कि तन्त्र के क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करो।"

मेरी आंखों में आंसू आ गए। वास्तव में ही यह मेरी मां है, जो हमेशा अपने बच्चे का हित चिन्तन करती है। इच्छा हुई कि मैं उसके चरणों पर गिर पड़ूं, फूट-फूट कर रोऊं, अपनी सारी व्यथा उसे कह सुनाऊं, पर मन के किसी कोने में बुद्धि मेरे पांव बांध कर खड़ी थी। यह भैरवी क्या सोचेगी? इसकी नज़रों में गिर जाऊंगा।

सूर्य जल्दी से पश्चिम की ओर भागा जा रहा था। इच्छा हो रही थी

कि मैं आज की रात यहीं व्यतीत करूं, उन स्थानों को देखूं, जहां मैंने साधना की थी, उन संन्यासियों से मिलूं जिनके साथ मैंने विचरण किया था, पर स्वामी कालत्रयानन्द जी की आज्ञा ने मुझे पीछे से बांध रखा था, मैं जल्दी-से-जल्दी आश्रम पहुंच जाना चाहता था।

प्रौढ़ा ने कहा, "तुम्हें सूर्यास्त तक आश्रम पहुंच जाना चाहिए। फिर तुम्हारा आना अवश्य होगा, तब मैं उन सारे स्थानों को दिखाऊंगी, जिनसे तुम परिचित रहे हो। जल्दी ही ये तीनों संन्यासी भी शाप-मुक्त हो जाएंगे। करेंगे तो कालत्रयानन्द जी ही, पर जब उन्होंने तुम्हें अपना लिया है, तो इनको भी शाप-मुक्त कर मनुष्य जीवन में विचरण करने देंगे और यह योगिनी भी शाप-मुक्त हो सकेगी, जिससे कि पिशाच अवस्था से मुक्त होकर सही अर्थों में पुनः साधना सम्पन्न कर सके।"

फिर उसने मृगाक्षी और मेरे सिर पर हाथ फेरा तथा कहा, "किसी बात की चिन्ता न करो। यह भैरवी है, और तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय होगी। मैं इसकी आंखों में हिमालय की-सी ऊंचाई देख रही हूं, एक दिन यह पूरे विश्व में प्रसिद्ध हो सकेगी।"

फिर हम दोनों को एक-एक पारद बटी देते हुए कहा, "यह बटी हमेशा अपने पास रखना। इसे मुंह में रखते ही रास्ते को बहुत जल्दी पार कर सकोगे, जो रास्ता एक घंटे में पार होता है, वह इस बटी की वजह से पांच मिनट में ही पार हो जाएगा, और फिर किसी प्रकार की थकावट भी व्याप्त नहीं होगी।"

हम दोनों ने पारद बटी अपने मुंह में रखी और अनुभव किया कि वास्तव में ही हमारे पैरों में पंख से लग गए हैं, और इधर सूर्य पश्चिम क्षितिज में डूब रहा था, और उधर हम दोनों के क़दम आश्रम के मुख्य द्वार से अन्दर की ओर जा रहे थे।

शाम को भोजन आदि से निवृत्त होने के बाद स्वामी कालत्रयानन्द जी ने सान्ध्य सम्मेलन किया। शाम को सभी तान्त्रिक भैरव-भैरवियां हाल में एकत्र होते हैं और अपने-अपने अनुभव को सुनाते हैं। उन्हीं अनुभवों के आधार पर दूसरे दिन स्वामी जी विशिष्ट साधकों को बुलाकर उन्हें मार्गदर्शन देते हैं।

सभी दिन-भर की घटनाएं और साधनात्मक विधियां सुना रहे थे। जब मेरा नम्बर आया, तो कालत्रयानन्द जी ने कहा, "कुछ कहने की ज़रूरत नहीं है, मैंने सब सुन लिया है। कल सुबह तुम और मृगाक्षी मुझसे मिलना।"

दूसरे दिन ठीक समय पर स्वामी कालत्रयानन्द जी के विशेष कक्ष में जब हम दोनों पहुंचे, तो स्वामी जी किसी शिष्य को साधनात्मक पद्धति समझा रहे थे। उन्हें समझाकर हम दोनों को पास बुलाया और सामने बिठा दिया। बोले, "कल तूने जो कुछ देखा वह तेरा जीवन था, उसे बताने के पीछे मेरा अभिप्राय यह था कि फिर इस जीवन में तुम अपनी बरबादी न करो। एक बार जब आदमी ठोकर खाता है, तो दूसरी बार अधिक संभलकर चलता है।"

फिर उन्होंने भैरवी को कहा, "तुम्हें अपने जीवन में बहुत तीव्रता के साथ आगे बढ़ना है, और तन्त्र की सारी स्थितियों को हृदयंगम करना है। तुम्हारे पिता जी का एक स्वप्न था कि तुम अपने जीवन में इस क्षेत्र में पूर्णता प्राप्त करो, तुम पर मां विशालाक्षी की विशेष कृपा है और उसी का एक अंश तुम हो। मां की इच्छा अवश्य पूरी होगी।" ऐसा कहते-कहते उन्होंने हम दोनों के सिर पर हाथ रख दिया।

फिर उन्होंने कहा, "मैंने कहा था कि दो दिन तक तुम आसपास के जंगलों में विचरण करोगे, जिससे कि यहां की भौगोलिक परिस्थिति समझ सको। आज का दिन भी इसी निमित्त तुम्हारे पास है। मेरी बात याद रखना कि जीवन में संयम और अनुशासन महत्त्वपूर्ण होता है, इससे भी ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है गुरु आज्ञा। जो अपने जीवन में सब-कुछ भूलकर भी केवल गुरु आज्ञा को ही पूर्ण हृदयस्थ कर लेता है, वह जीवन में असफल हो ही नहीं सकता।"

हम दोनों ने अत्यन्त श्रद्धा से उन्हें प्रणाम किया और संकेत पाकर कक्ष से बाहर निकल गए।

हम दोनों एक-दो मिनट के लिए अपने-साधना कक्षों में गए और पारद गुटिका सुरक्षित रूप से अपनी जेब में रख ली तथा दोनों नदी तट पर आ गए।

भैरवी ने कहा, "अरविन्द, मुझे ऐसा लगता है कि यह सारा क्षेत्र मेरा

जाना-पहचाना है। मैं नहीं समझती कि इससे पहले मैं कभी इधर आई थी, परन्तु अन्तरात्मा कह रही है कि मैं पिछले किसी-न-किसी जीवन में इस तरफ़ अवश्य रही हूंगी। यह नदी, ये पेड़, ये पर्वत-शृंखलाएं सभी कुछ परिचित-सी प्रतीत हो रही हैं।"

हम दोनों कल की दिशा के विपरीत नदी के किनारे-किनारे चल रहे थे। लगभग एक मील जाने के बाद हम नदी के किनारे ही एक सुन्दर रमणीय स्थान पर बैठ गए, पीछे पर्वत-शृंखला थी, जिस पर बर्फ़ का मुकुट रखा हुआ था। पास में ही ऊंचाई से एक झरना गिरकर नदी में मिल रहा था और इसके पास ही सुन्दर नुकीली चट्टान निकली हुई थी, जो पानी के अन्दर तक चली गई थी। सारा दृश्य सम्मोहक-सा था। हमने चट्टान को पार करने के लिए ज्यों ही क़दम रखा कि झरने के पास चट्टान पर एक संन्यासी को बैठे हुए देखा। अत्यन्त वृद्ध सौम्य और तेजस्वी। कमर से नीचे केले की छाल से शरीर ढका हुआ, इसके अलावा बाक़ी सारा शरीर अनावृत। सिर पर लम्बी जटाएं, जो कि पीछे होकर आगे घुटनों तक आ गई थीं।

तभी उस वृद्ध संन्यासी के मुंह से आवाज़ आई, "मृगाक्षी, रुको। मेरे सामने बैठो।" हम दोनों इनके सामने बैठ गए।

संन्यासी ने कहा, "आगे नहीं जाना है, अगर आगे जाओगी तो विपत्ति में फंस जाओगी। तुम्हें इस तरफ़ जाने के लिए कालत्रयानन्द जी ने कहा होगा। वह दूसरों को तो इधर जाने के लिए कह देता है, पर ख़ुद इधर जाकर दिखाए तो पता चले। आश्रम में बैठकर बातें करना और बात है, और जीवन में कुछ करना बिल्कुल अलग बात है।"

हम दोनों सन्न से रह गए। यह क्या कह रहा है? यह तो सरासर स्वामी कालत्रयानन्द जी का अपमान है।

संन्यासी ने आगे कहा, "मृगाक्षी, तुम्हें शायद मेरी बात पर भरोसा नहीं आ रहा है। तुम्हारे पिता जी कहां हैं?"

मृगाक्षी ने अचकचाकर उनकी ओर देखा, बोली, "मैं आपका तात्पर्य नहीं समझ पाई आप क्या कहना चाहते हैं। आप मेरे पिता जी के बारे में कैसे जानते हैं?"

संन्यासी ने कहा, "मैं सब-कुछ जानता हूं। तुम्हारे बारे में भी, उस औघड़ कपालनाथ और बटुकनाथ के बारे में भी और इस कालत्रयानन्द के बारे में भी। यह ठीक है कि यह सारा क्षेत्र सिद्ध है, पर इस तरफ़ जाना किसी भी दृष्टि से उचित नहीं है। यह क्षेत्र तिब्बती लामाओं का और वज्रयानि सिद्धों का है।

"इनकी साधना-पद्धति अत्यधिक पेचीदी और कठिन है। शरीर छोड़ने के बाद तन्त्र बल से तुम्हारे पिता जी इसी तरफ़ आए थे और कालत्रयानन्द ने उन्हें इसी तरफ़ भेजा था। मैंने उन्हें बहुत मना किया था कि यह आगे का सारा क्षेत्र वर्जित क्षेत्र है, परन्तु वे अत्यधिक ज़िद्दी थे, माने नहीं। निश्चय ही वे वज्रयानी भैरवियों के चक्कर में फंस गए होंगे।"

भैरवी का चेहरा एकदम से उतर गया। वह यह क्या सुन रही है। यह तो सर्वथा नूतन रहस्य उसके सामने उजागर हो रहा है, मृत्यु के बाद सूक्ष्म शरीर से उसके पिता जी इधर आए थे और इस वर्जित क्षेत्र की ओर चले गए थे। फिर उनका क्या हुआ? अभी तक वे कहां हैं? क्या सूक्ष्म शरीर में वे जीवित हैं? "पर इस बारे में तो कालत्रयानन्द जी ने कुछ नहीं बताया।" उससे कहा।

वह कालत्रयानन्द कुछ बताएगा भी नहीं। वह बता भी क्या सकता है? निश्चय ही तुम्हारे पिता जी किसी वज्रयानी साधना की भेंट चढ़ गए होंगे। इधर के ये लोग नर-पिपासु होते हैं, और इनकी बलि देकर अपना स्वार्थ सिद्ध ये अत्यन्त ही उच्च कोटि की साधनाओं में सिद्ध हैं। इनमें वज्रयानी सिद्ध भी हैं और योगिनियां भी। पुरुषों की अपेक्षा ये योगिनियां ज़्यादा तीक्ष्ण और काम-पिपासु हैं।

ये योगिनियां अत्यन्त ख़तरनाक होती हैं। किसी पुरुष को देखकर ज़बरदस्ती उसके साथ सम्भोग कर लेती हैं, और जब तक उन्हें अपना बनाकर रखती हैं, तब तक उसके शरीर में यौवन की ऊष्मा और ताक़त होती है। जब वह पूरी तरह से निचुड़ चुका होता है, तब उसे बलि देकर फेंक दिया जाता है। इस प्रकार ये वज्रयानी योगी भी ख़तरनाक और कामुक होते हैं। बस कोई

संन्यासिनी या युवती दिखाई दे जाए फिर तो ये राक्षसों की तरह उस पर टूट पड़ते हैं और एक-एक स्त्री के साथ दस-दस कामुक सम्भोग कर हर्ष मनाते हैं। उस नारी शरीर के तो टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, वह निढाल और पस्त हो जाती है। पर ये तब भी नहीं छोड़ते।

हम दोनों सिहरकर रह गए। कितना बड़ा ख़तरा था सामने, यदि ये संन्यासी यहां नहीं होते तो निश्चय ही हम आगे बढ़ गए होते और किसी वज्रयानी योगी या योगिनी के चक्कर में फंस गए होते। हमारा हश्र भी वही होता, जो इस संन्यासी ने बताया है। मैंने भैरवी के चेहरे की ओर देखा उसकी आंखों में पहली बार भय तैरता हुआ दिखाई दिया।

संन्यासी बोले, "वज्रयानी सम्प्रदाय तिब्बत के लामाओं की साधना-पद्धति का एक विशिष्ट भाग है, और वह पद्धति सर्वथा विपरीत है। वज्रयानी साधना स्त्री-पुरुषों के सम्बन्धों पर आधारित है। इसमें कई साधनाएं तो ऐसी हैं कि मैथुन करते हुए सम्पन्न की जाती हैं। कई साधनाएं स्त्री-पुरुष परस्पर लिपटे हुए, मन्त्र जापकर उसे सिद्ध करते हैं। इस सम्प्रदाय में स्त्री को सिद्धा कहा गया है। वे उसे पूजन कर उसमें अपने-आप को समाहित करते हैं। उनके लिए स्त्री का तात्पर्य केवल साधना सिद्धि है। कई-कई दिनों तक वे सम्भोग करते हुए साधना करते हैं और यह मेरी साधना पद्धति के सर्वथा विपरीत है। हमारे यहां की साधना में तो स्त्री को मात्रस्वरूपा माना गया है। इसीलिए मैंने उस साधना-पद्धति को अपनी आंखों से देखा है, समझा अवश्य है, परन्तु प्रयोग में नहीं लाया।"

फिर अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए संन्यासी ने कहा, "हमारे यहां दस महाविद्याएं हैं, जिनमें काली-तन्त्र, षोडशी, त्रिपुर सुन्दरी तन्त्र तारा तन्त्र, भुवनेश्वरी तन्त्र, छिन्नमस्ता तन्त्र, बगला-मुखीतन्त्र, घूमावती तन्त्र, मातंगी तन्त्र आदि हैं। इसके अलावा टोडल तन्त्र, कामधेनु तन्त्र, फेतकारिणी तन्त्र, कुक्कुटेश्वर तन्त्र, उच्छिष्ट चांडालिनी तन्त्र, भद्रकाली श्मशान तन्त्र, विरुपाक्ष तन्त्र, ज्वालामुखी तन्त्र, जातवेदा तन्त्र आदि कई हैं। इन सबकी पूजा-पद्धतियों में लगभग समानता है। इसके अलावा स्तम्भन, मारण, मोहन, वशीकरण आदि क्रियाएं हैं, पर ये सभी क्रियाएं सौम्य हैं, इनमें मन का संयम है, साधना की

पवित्रता है, विचारों की उच्चता है और शरीर की दिव्यता है। इसके विपरीत तिब्बत की तरफ़ जो साधना पद्धतियां विकसित हुईं, वे निश्चय ही उच्च कोटि की और सौम्य थीं। उस तरफ़ के लामाओं ने इन साधनाओं को बहुत ऊंचाई तक पहुंचाया था। उन्होंने सूर्य विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, शून्य विज्ञान आदि में पूर्णता प्राप्त कर ली थी। पर आगे चलकर इसमें विकृति आ गई। और एक नवीन साधना-पद्धति विकसित हुई जो कि हठयोग साधना, सहस्र जटा साधना, वज्रयानी साधना आदि कही जाती है। इन साधना-पद्धतियों का क्रम ही अलग बन गया। इसमें नारी की नग्न देह को प्रमुखता दे दी गई। अग्राह्य अभक्ष खाद्य पदार्थों को ही सब-कुछ मान लिया गया। मैं इन लोगों के साथ तीन वर्षों तक रहा हूं। इन सभी साधना पद्धतियों को अपनी आंखों से मैंने देखा है, इसमें सुन्दर नारी के नग्न देह पर सुरा और शराब चढ़ाकर उसे ये साधक जीभ से चाटते हैं और साधना सम्पन्न करते हैं। वज्रयानी साधना-पद्धतियों में नारी के नग्न देह की ही पूजा होती है।

"इससे इन साधकों और साधिकाओं अर्थात वज्रयानी योगियों और योगिनियों की काम-पिपासा बहुत अधिक बढ़ जाती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि इससे ये कुछ विशिष्ट सिद्धियां प्राप्त कर लेते हैं। इनमें विशिष्ट क्षमताएं प्राप्त हो जाती हैं। ये मनुष्य को पशु या पशु को मनुष्य बना देते हैं, यौवन संलग्न साधना से ये किसी भी पुरुष को पूर्ण स्त्री बना सकते हैं, और किसी भी स्त्री को पूर्ण पुरुष बनाकर उसके साथ सम्भोग कर साधना सम्पन्न कर लेते हैं। इनके माध्यम से उन्होंने कुछ विशिष्ट सिद्धियां प्राप्त की हैं और प्रकृति के रहस्यों को समझा है। इन साधनाओं के माध्यम से कुछ वज्रयानी सिद्ध कालजयी हो गए हैं, और उन पर समय का या आयु का कोई प्रभाव नहीं होता। कई बार ये दूर-दूर से सुन्दर लड़कियों को पकड़ लाते हैं, और उन्हें साधना का माध्यम बनाते हैं। तुम कल्पना कर सकती हो कि एक अट्ठारह-बीस वर्ष की लड़की के साथ एक दिन-रात में सौ साधक बलात्कार करेंगे तो उसकी क्या स्थिति होगी। अधिकांश की तो मृत्यु हो ही जाती है, परन्तु फिर भी ये उनकी मृत देह के साथ भी सम्भोग करते रहते हैं।

सब-कुछ अत्यन्त घृणास्पद और परम बीभत्स-सा था। सुनने की भी इच्छा नहीं हो रही थी। केवल एक साधना या सिद्धि प्राप्त करने के लिए व्यक्ति

इतना अधिक कामुक और पशु बन जाता है, यह पहली बार सुन रहा था। ऐसी साधना या सिद्धि से क्या लाभ, जो मानवीय मूल्यों को समाप्त कर दे? उन साधनाओं से किसी का क्या भला हो सकता है?

संन्यासी ने आगे बताया कि यदि इनका बस चलता तो ये इस तरफ़ के पूरे क्षेत्र में छा जाते। युद्ध या ताक़त से इन्हें जीतना सम्भव नहीं, इन्हें तो साधना के बल पर जीता जा सकता था।

संन्यासी ने कहा, "इन लोगों पर क्रोध से नियन्त्रण प्राप्त नहीं हो सकेगा। आवेश में आकर यदि कुछ किया गया, तो अपनी ही मृत्यु निश्चित है। मेरी राय में तुम दोनों वापस कालत्रयानन्द के आश्रम में चले जाओ, जो कुछ वे सिखाएं सीख लो, यद्यपि वह और नवीन क्या सिखा सकता है?"

मैंने कहा, "गुरुदेव ने हमें कालत्रयानन्द जी के पास भेजा है। तो हमें वे जो भी सिखाएंगे, हम सीखेंगे। उनकी निन्दा हम नहीं सुन सकेंगे। हो सकता है ज्ञान के क्षेत्र में आप दोनों के बीच प्रतिस्पर्धा हो, परन्तु यह आप दोनों का व्यक्तिगत मामला है। हम दोनों अभी अबोध हैं, इस रास्ते पर क़दम रखा ही है, यों भी हमारे संस्कार ऐसे हैं कि ईश्वर की और गुरु की निन्दा सुनना भी पाप है।"

संन्यासी ने अर्थपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा, ऐसा लगा जैसे इनकी नज़रें सीधे मेरे हृदय में उतर जाना चाहती हैं। फिर बोले, "जीवित होने पर ही तो गुरु आज्ञा पाली जाती है, यदि उस वायुयान दुर्घटना में ही तेरा प्राणान्त हो जाता, तो आज इतनी लम्बी-चौड़ी बातें कौन कहता?"

और मेरे हृदय में खटका-सा हुआ। एकदम से मुझे लगा कि यही वह संन्यासी है, जो वायुयान के समानान्तर उड़ रहा था। इसी ने वायुयान बचाया था, वही चेहरा, वही दाढ़ी, वही भावप्रवण आंखें, सब-कुछ वही।

और मैंने पूछा, "तो उस दिन आपने हम सब लोगों की जान बचाई थी! आपने उस वायुयान को धीरे से ज़मीन पर उतारा था?"

संन्यासी ने कहा, "और कौन हो सकता है? मैं उधर से जा रहा था कि देखा तुम लोगों का वायुयान डगमगा रहा है, और निश्चय ही उसका

पंख टूट जाने की वजह से वह गिरने को ही था। और गिरते ही उसमें आग लग जाती। तब आप सब लोगों का सर्वनाश निश्चित था। और मैंने चलते-चलते ही हाथ के सहारे से उसे धीरे से ज़मीन पर उतार दिया था। इसके बाद मैं तो अपने रास्ते पर चला आया था, फिर आप लोगों का क्या हुआ, मैंने इस तरफ़ ध्यान दिया ही नहीं।"

तभी भैरवी ने कहा, "स्वामी जी, मैं आगे अवश्य जाऊंगी, हर स्थिति में आगे जाऊंगी ही और अपने पिता को ढूंढ़ निकालूंगी। वे किस हालत में हैं, किस स्थिति में हैं, अभी मैं कह नहीं सकती, परन्तु या तो इस संघर्ष में समाप्त हो जाऊंगी या अपने पिता जी को ढूंढ़ निकालूंगी।" और कहते-कहते वह तनकर खड़ी हो गई।

संन्यासी ने कहा, "चींटी को पहाड़ से नहीं टकराना चाहिए। इसमें चींटी का ही नाश निश्चित है। पहले तुम कुछ समर्थ हो जाओ, अपने-आप में कुछ क्षमता प्राप्त कर लो। तभी इन राक्षसों से तुम मुक़ाबला कर सकोगी, तभी तुम अपने पिता को ढूंढ़ सकोगी।"

भैरवी ने कहा, "आपकी बात सही है, परन्तु कभी-न-कभी तो इनसे टकराना ही पड़ेगा। यह टकराहट केवल मेरे पिता के लिए ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण नारी जाति के लिए है। हो सकता है, इससे मैं शाम को अपने आश्रम तक न जा सकूं, परन्तु जब मुझे यह ज्ञात हो गया कि मेरे पिता इनके चंगुल में हैं, जब यह ज्ञात हो गया है कि उन्होंने साधना के नाम पर नारी जाति का शोषण किया है, तो कोई-न-कोई नारी इससे मुक़ाबला करेगी ही। यदि यह अरविन्द मेरे साथ चलेगा तो ठीक, अन्यथा मैं अकेली ही आगे निकल जाऊंगी। मुझे विश्वास है आपका वरदान और आशीर्वाद मेरे साथ रहेगा।"

मैंने हल्के से प्रतिवाद किया, "मृगाक्षी, हमें तो शाम तक आश्रम में आने की आज्ञा है। इस समय मध्याह्न हो गया है और यदि आगे जाते हैं तो शाम तक शायद ही आश्रम पहुंच सकेंगे।"

तब तक भैरवी आगे निकल चुकी थी। वह उस पगडंडी पर अकेले ही आगे बढ़ गई थी। न मेरी उसने बात सुनी और न पीछे मुड़कर ही देखा।

मैं तुरन्त उठकर उसके पीछे चल पड़ा। यह बात निश्चित है कि आगे

मृत्यु अवश्यम्भावी है। पर जब पग-पग पर मृत्यु हो, तो फिर इससे घबराने या विचलित होने का फ़ायदा ही क्या है? जब एक स्त्री होकर ऐसे ख़तरों के बीच मृगाक्षी जा सकती है, तो फिर मैं तो पुरुष हूं, जो कुछ होगा देखा जाएगा। कुछ संकट आएगा भी, तो हम दोनों झेल लेंगे।

पर तभी कालत्रयानन्द जी का स्मरण हो आया। वे गुरुवत हैं। उन्होंने शाम तक लौटने को कहा था, आगे चलने का तात्पर्य तो किसी भी हालत में शाम तक लौटना नहीं है। इससे उनकी आज्ञा का उल्लंघन अवश्य होगा, परन्तु उसका दूसरी तरह से पालन भी है, उन्होंने कहा था कि पांच-पांच मील तक का भाग तुम लोगों को देख लेना है, अभी तक दो मील ही चले हैं, आगे तीन मील तक तो जा ही सकते हैं। फिर जो कुछ भी होगा, देखा जाएगा। मैंने अपनी जेब में पड़ी पारद गुटिका को संभाला, वह अपने स्थान पर सुरक्षित थी।

चलते-चलते लगभग सांझ होने को आई। शायद चार बज गए होंगे। थोड़ी देर में रात घिर आएगी, ऐसी स्थिति में क्या किसी गांव में जाना या आश्रय प्राप्त करना उचित होगा? इस तरफ़ से कोई गांव ही दिखाई नहीं देता।

तभी दूर से आकाश में एक बड़ा-सा पक्षी उड़ता हुआ आता दिखाई दिया। उसकी आवाज़ से ही लग रहा था कि वह तेज़ी से उड़कर आ रहा है, और आश्चर्य! वह नीचे उतरता हुआ सीधा मेरे सामने आकर ज़मीन पर बैठ गया। यह पक्षी लगभग भूचंडी वर्ग का गिद्ध के आकार का था, उसकी बड़ी-सी चोंच में धातुनिर्मित एक बड़ा-सा डोटा लटका हुआ था और कोई गर्म-गर्म तरल पदार्थ भरा हुआ था। पक्षी उस डोल को ठीक मेरे सामने रखकर थोड़ा-सा पीछे सरककर रास्ते के किनारे की तरफ़ बैठ गया।

मैंने देखा कि उसमें चाय जैसा ही कोई तरल पदार्थ भरा हुआ है और अभी भी उसमें से भाप निकल रही है। मैं यह सोच ही रहा था कि आवाज़ आई, 'पी लो-पी लो। इसमें कुछ बुराई नहीं है, थकावट दूर हो जाएगी।'

यह पहला आश्चर्य हुआ। हमने तो अभी सोचा ही था फिर यह कौन मददगार आ निकला? और जो बोल रहा था उसकी आवाज़ भी सुनाई नहीं पड़ रही थी, पर यह निश्चित है कि जो भी बोल रहा है, उसकी आयु लगभग

साठ-सत्तर के आसपास अवश्य होगी। तभी एक छोटा-सा और पक्षी वहीं उतरा, और उसकी चोंच में दो गिलास और एक छोटा-सा मग के आकार का बर्तन था और उसने भी उसी प्रकार से वे बर्तन मेरे सामने रख दिए और रास्ते के एक तरफ़ जाकर बैठ गया जैसे कि कोई आज्ञाकारक नौकर हो।

हम दोनों अभी यह सोच ही रहे थे कि इसे पीना भी चाहिए या नहीं, कि तभी एक संन्यासी-सा व्यक्ति सामने प्रकट हुआ। मैंने देखा कि वह बड़ा पक्षी अदृश्य हो गया था। तो क्या यह बड़ा पक्षी ही संन्यासी था, जिसने अपना रूप परिवर्तित कर दिया था?

तभी उस संन्यासी ने कहा, "इतना अधिक क्या सोच-विचार कर रहे हो! यह जीवन जड़ी से बना हुआ पदार्थ है। जो इस भूभाग में लगभग सभी साधु-संन्यासी स्वीकार करते हैं। मुझे भी किसी ने भेजा ही है, और जिसने भी भेजा है वह आपका हितैषी ही है।"

भैरवी ने कहा, "हमारी मृत्यु तो है नहीं, और अगर है तो कोई रोक नहीं सकता। जो कुछ होगा वह देख लेंगे जब इस रहस्य को भेदना ही है, तो इसमें प्रवेश करना ही होगा।" और ऐसा कहते-कहते उसने डोल से पेय पदार्थ गिलास में लेकर पीना शुरू कर दिया।

उसकी देखा-देखी मैंने भी वह गर्म-गर्म पदार्थ गिलास में लिया और पीना शुरू कर दिया। वास्तव में ही उसका स्वाद अजीब-सा था। ऐसा लगा जैसे कई जड़ी-बूटियों से मिलाकर यह बनाया गया हो। परन्तु पीते ही शरीर में फुर्ती और चुस्ती आ गई। मैंने और मृगाक्षी ने पीकर गिलास नीचे रखे ही थे कि छोटा पक्षी गिलासों और छोटे डोल को चोंच में लेकर उड़ गया। तभी उस बड़े डोल को, जिसमें कुछ पेय पदार्थ बाक़ी था, संन्यासी लेकर हवा में उड़ गए और हमें वे मनुष्य नहीं अपितु पुनः बड़े से पक्षी के रूप में ही दिखाई दिए।

सांझ ढलने लगी थी। हमारे मन में अज्ञात आशंका रह-रहकर कौंध रही थी। यह सारा प्रदेश तिलिस्म-सा नज़र आने लगा। पग-पग पर रहस्य बिखरे हुए थे जो कि कुछ देख रहे थे, वह सब अप्रत्याशित से थे। भैरवी ने कहा, "अरविन्द, इस प्रकार रुकने से काम नहीं चलेगा। वह देखो, दूर कुछ

घर नज़र आ रहे हैं, अवश्य ही वह कोई गांव होगा। उधर पहाड़ों में चार-चार, पांच-पांच घरों के भी गांव होते हैं।"

हम दोनों उस गांव की ओर बढ़ गए। मुझे भी वे घर साफ़-साफ़ दिखाई दे रहे थे। मैं तेज़ी से आगे-आगे चल रहा था। पेय पदार्थ पीने से शरीर में स्फूर्ति आ गई थी, और सारी जड़ता थकावट जाती रही।

लगभग आधे घंटे के बाद वह गांव साफ़ दिखाई देने लगा। हम नदी के इस ओर थे और गांव उस ओर था। हमने नदी को पार करने की सोची, पर कोई पुल दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। भैरवी ने कहा, "थोड़ा और आगे बढ़ो, हो सकता है जहां नदी संकरी हो, वहां कोई लकड़ी का लट्ठा होगा, जो कि पुल का काम देता होगा।"

तभी छोटा-सा पुल दिखाई दिया, जो नदी को पार कर रहा था, यह पुल भी ठीक वैसा ही था जैसा कि आमतौर पर इधर पहाड़ी क्षेत्रों में होता है। हम पुल के पास पहुंचे, तो उसके बाईं ओर तीन योगिनियां सर्वथा नग्नावस्था में बैठी हुई दिखाई दीं, जो कि झोंपड़ी के बाहर बैठी हुई थीं। वे तीनों हमारी ओर ताक रही थीं जैसे कि प्रतीक्षा कर रही हों।

आगे-आगे मैं चल रहा था और कनखियों से उन स्त्रियों को देख रहा था। तीनों योगिनियां लगभग चौबीस-पच्चीस वर्ष की होंगी। उनके शरीर पर किसी प्रकार का कोई वस्त्र नहीं था और न किसी प्रकार की शर्म, हया।

मैंने दृष्टि को स्थिर किया और पुल की तरफ़ बढ़ने लगा। मेरे पीछे-पीछे मृगाक्षी चल रही थी। अचानक ऐसा लगा कि जैसे मेरे पैर में लकवा मार गया हो, पैर उठाने पर भी नहीं उठ पा रहे थे। मैंने अपने शरीर की सारी शक्ति पैरों में लगा दी, परन्तु वे तो जैसे उस जगह जम से गए थे। मैंने खड़े-खड़े ही पीछे मुड़कर देखा, तो भैरवी की स्थिति भी लगभग वैसी ही थी।

मैं विवश-सा अपनी ही जगह पर खड़ा था, जैसे कि मेरे दोनों पांवों में कीलें ठोंक दी गई हों। मैंने लगभग बेबसी की-सी स्थिति में उन योगिनियों की ओर देखा। वे उसी प्रकार स्मित मुस्कुराहट के साथ बैठी हुई थीं।

अब मैंने ध्यान से खड़े-खड़े ही उनकी ओर देखा, वे तीनों एक ही पंक्ति

में बैठी हुई थीं। ललाट में सिन्दूर का बड़ा-सा तिलक और गले में एक माला-सी दिखाई दे रही थी, शायद माला रुद्राक्षी का हो।

उनके पास ही वह संन्यासी भी बैठा हुआ था, जो कि अभी-अभी हमें तरल पदार्थ पीने के लिए दे गया था। उसकी उम्र लगभग तीस के आसपास होगी। वही चेहरा, वही रूप-रंग, वही आकृति, यद्यपि वहां कुछ प्रौढ़-सा नज़र आ रहा था, पर यहां तो इसकी आयु तीस से भी कम लग रही थी।

उन तीन योगिनियों में से बीच वाली योगिनी ने संकेत से मुझे अपनी तरफ़ बुलाया। मैंने भैरवी की ओर एक क्षण देखा। वह परेशान-सी अपनी जगह पर स्थिर-सी थी। मैंने विवशता से योगिनी की ओर क़दम बढ़ाया, तो मेरे पैर खुल गए। ऐसा लग रहा था कि मैं उस तरफ़ तो चलकर जा सकता था, परन्तु ज्यों ही नदी की ओर क़दम बढ़ाता, तो पैर कीलित-से हो जाते। मैं खिंचा-खिंचा-सा उनकी तरफ़ बढ़ गया।

मध्य में बैठी हुई योगिनी ने कहा, "आ गए? मैं तो तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रही थी।"

मैंने कहा, "हम दोनों नदी पार कर उस तरफ़ जाना चाहते हैं। आपने क्यों व्यर्थ में हम दोनों को कीलित कर दिया है, क्या कोई विशेष प्रयोजन है?"

उसने उत्तर दिया, "अवश्य ही प्रयोजन है। तुम सुन्दर हो, स्वस्थ हो, फिर हमारे साथ रहो। कुछ विशिष्ट साधनाएं तुम सम्पन्न करो, तो निश्चय ही चिर यौवनमय बने रहोगे और सैकड़ों वर्षों तक शरीर का आनन्द प्राप्त करते रहोगे।"

मैं लगभग उन योगिनियों के पास पहुंच चुका था। उनके और मेरे बीच में दो गज़ से ज़्यादा फ़ासला नहीं था। तीनों योगिनियां बैठी हुई थीं, उनके सामने ही बहुत छोटा-सा हवन कुंड था, जिसमें लकड़ियां पड़ी थीं और अंगारे चमक रहे थे। शायद अभी-अभी ये लकड़ियां जली होंगी। हमें देखकर उसकी आंखों में चमक आ गई।

बीचवाली योगिनी ने अपनी दाईं ओर पड़ी चिलम को उठाया, उसमें

पास में ही रखी पोटली में से गांजे की तरह का कुछ पदार्थ निकाला और चिलम में भरकर उसके ऊपर अंगारा रख दिया। नीचे कपड़े का टुकड़ा लगाया और चिलम को मुंह से लगाया और ज़ोर से खींचा। एक ही सांस में उसने सारे गांजे को पी लिया, दूसरे ही क्षण उसने चिलम उलटी कर दी।

उसकी आंखें अंगारे की तरह लाल सुर्ख़ होने लगी थीं, वासना के डोरे खिंचने लगे थे। शरीर की मांसपेशियां फड़कने लगी थीं और सारा शरीर एक प्रकार से नर्तन-सा करने लग गया।

उसने कहा, "साधना करनी है, खड़ा-खड़ा क्या देख रहा है? अपने कपड़े उतारकर नदी में स्नान करके आ। आज तुझे योगी बनाना है और सिद्ध करना है। इसके बाद तू भी इस संन्यासी की तरह आकाश में उड़ सकेगा, जहां भी चाहे जा सकेगा। आज तो अक्षुण्ण यौवन प्राप्त हुआ है, आज अवश्य ही मेरा तोड़ल तन्त्र सम्पन्न होगा। आज अवश्य ही तुझे सफलता प्राप्त होगी।" ऐसा कहते-कहते उसने अगल-बगल बैठी योगिनियों की ओर देखा, तो दो-चार क़दम चलती हुई दिखाई दीं और हवा में ही विलीन हो गईं। उसने संन्यासी की ओर घूरकर देखा, तो वह संन्यासी दहलकर रह गया और मेरे सामने ही उसने पक्षी का आकार ग्रहण किया और दूसरे ही क्षण आकाश में उड़ गया।

उसने एक और चिलम भरी और एक दूसरी पोटली में से गांजे के आकार की कुछ पत्तियां निकालीं। ये पत्तियां ठीक वैसे ही थीं जैसी केसर की पंखुड़ियां होती हैं। पर ये लाल रंग की थीं। उसने हवा में सीटी बजाई और उसकी आवाज़ होते ही शून्य में से एक छोटी-सी गोली उसके हाथों में आई। वह गोली उन पंखुड़ियों पर रखी, उस पर दहकता हुआ अंगार रखा और नीचे कपड़ा लपेटकर उसे अपने मुंह से लगा लिया। इस बार भी उसने ज़ोर से सांस खींची और 'भक्क'-सी तेज़ नीली लपट निकली और वह सारा गांजा जलकर ख़ाक़ हो चुका था। उसने चिलम को उलटी कर ज़मीन पर ठोंका और एक तरफ़ रख दी।

वह सर्वथा नग्न तो थी ही, उसका शरीर आग की लपटों की तरह जलने-सा लग गया था।

उसने मेरी ओर अजीब चुम्बकीय दृष्टि से देखा। बाईं ओर पड़ी एक

बोतल में से उसने घूंट भरे, उसमें शराब की तरह कोई द्रव पदार्थ-सा था और उसने एक ही बार में उस बोतल को लगभग आधी ख़ाली कर दिया और फिर एक तरफ़ रख मुझे कहा, "मेरे पास आ जाओ बैठो, मैं तुम्हें वे तान्त्रिक क्रियाएं और साधनाएं सिखाऊंगी, जो सर्वथा अज्ञात और गोपनीय रही हैं। मुझसे ज़्यादा जानकार इस तरफ़ तुम्हें कोई नहीं मिलेगा।"

तभी मुझे अपनी जेब में पड़ी गोली का स्मरण हो आया। यद्यपि उस गोली का प्रभाव शीघ्र पहुंचने में ही था। मैंने अन्तिम स्थिति में उस गोली को मुंह में रखने का निश्चय किया, शायद इससे कुछ हो जाए। मैंने उस गोली को जेब में से निकालकर अपने हाथ में ले लिया। ज्यों ही गोली हाथ में ली त्यों ही कुछ दाने मेरे हाथों में आ गए जो कि चावल के आकार के थे। ये दाने कैसे और किस प्रकार से गोली के साथ-ही-साथ मेरे हाथ में आए, कुछ कह नहीं सकता। मेरे कानों में गुन-गुन की आवाज़ हुई, ऐसा लगा जैसे मुझसे कोई बात कह रहा है।

मेरे कानों में गुन-गुन की आवाज़ स्पष्ट हुई और मैंने वह गोली पुनः जेब में डालकर उन चावलों के दानों को हाथ में लेकर 'मातृस्वरूपा त्वां चरको नमामि सत्वैक मूर्ति सिद्धा नमः' कहकर उसके चरणों पर वे चावल के दाने रख दिए। मेरे कानों में जो गुन-गुन की आवाज़ आ रही थी, उसने मुझे यही बताया कि इन शब्दों को एक या दो बार दोहराकर ये चावल के दाने इसके चरणों पर रख दो। न तो प्रतिरोध करो और न साधना करो। केवल यही उपाय तुम्हारे पास है।

चावल के दाने उसके चरणों पर रखते ही उसके शरीर का भाव परिवर्तित होने लगा। शायद मन्त्र की इस पंक्ति का प्रभाव रहा होगा। धीरे-धीरे वह शान्त होने लगी और जो शरीर काम की अग्नि से दहक रहा था वह शान्त-सा होने लगा।

मैं उसके चरणों में चावल के दाने रखकर उठ खड़ा हुआ।

मैंने उसके सामने हाथ जोड़ दिए और उसी पंक्ति को वापस दोहरा दिया। अब तक उसका शरीर लगभग शान्त हो चुका था और उसने शून्य में से केले के छिलके की तरह का वस्त्र प्राप्त कर कमर के नीचे लपेट-सा

लिया था। बोली, "तुमने मुझे मातृस्वरूपा कहा है, पर यह कामधेनु तन्त्र का गुह्य मन्त्र तूने कहां से प्राप्त किया? यह मन्त्र तो अत्यधिक गोपनीय होता है, तूने कहां से सीखा? ऐसा प्रयोग किस प्रकार से किया?

"तूने मुझे 'मां' कहा है, तो मैं तेरी मां के समान हूं। तूने कामधेनु तन्त्र से मुझे आबद्ध कर दिया है, पर अब तुम दोनों का यहां ठहरना निरापद नहीं है। कुछ ही समय में योगी और योगिनियां आएंगी और तुम दोनों को देखकर वे कामातुर होकर पागल से हो जाएंगे। निश्चय ही तुम दोनों के साथ वे साधनाएं करेंगे, मेरी राय में तुम्हें यहां से चले जाना चाहिए।"

मैंने कहा, "मां, जब हम दोनों तुम्हारी शरण में आ ही गए हैं, तो तुम्हें छोड़कर फ़िलहाल कहीं नहीं जाएंगे।" मैंने देखा कि उसका शरीर परिवर्तित होने लगा है, वह अपने वास्तविक स्वरूप में आने लगी है। उसका शरीर जो कुछ क्षणों पूर्व यौवनवती कामातुरा रूपसी का था, वह ढलकर प्रौढ़-स्वरूपा बन गया है। इस समय जो स्त्री मेरे सामने बैठी थी, उसकी उम्र लगभग पचपन वर्ष के आसपास दिखाई दे रही थी। आंखों में मातृत्व भाव साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा था।

वह उठ खड़ी हुई, बोली, "यदि तुम नहीं जा रहे हो, तो फिर मैं तुम्हारे साथ चलूंगी। यहां रहना तो किसी भी हालत में तुम लोगों के लिए उचित नहीं है। और ऐसा कहती-कहती वह एक तरफ़ चल दी। हम दोनों भी उसके पीछे चल पड़े। उसने रुककर दाहिने हाथ से मेरी उंगली तथा बाएं हाथ से मृगाक्षी की उंगली पकड़ ली। अचानक हमने देखा कि हम तीनों आकाश में उड़ रहे थे। हमारे नीचे पृथ्वी, पर्वत, नदियां तेज़ गति से दौड़ते हुए दिखाई दे रहे थे। मैंने अपनी आंखें बन्द कर लीं।

कुछ ही क्षणों में हम तीनों धरती पर उतर गए। देखा, तो एक पहाड़ के मध्य में बड़ा-सा मैदान है। एक तरफ़ गुफा है, जो कि स्वच्छ और पारदर्शी पत्थरों से निर्मित है। सामने कई योगी और योगिनियां साधनारत हैं। उसे देखकर कई योगी और योगिनियां स्वागत और अभ्यर्थना के लिए उठ खड़े हुए। उसने उस बड़ी गुफा के पास ही एक छोटी-सी गुफा की ओर संकेत करते हुए कहा, "आज की रात तुम दोनों इसी गुफा में विश्राम करो। मैं प्रातःकाल

तुमसे मिलूंगी। यहां तुम लोग पूर्णतः सुरक्षित हो। यदि किसी वस्तु की आवश्यकता हो तो मुंह से उच्चारण कर लेना, वह सामग्री स्वतः ही इस गुफा में ही तुम्हें प्राप्त हो जाएगी। यहां सब प्रकार की सुविधाएं हैं।"

फिर कुछ रुककर बोली, "बाहर जो योगी और योगिनियां साधना कर रहे हैं, वे सभी मेरी शिष्य-शिष्याएं हैं। बिना मेरी आज्ञा के यहां पत्ता भी नहीं खड़कता, इसलिए तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है।"

मैंने पूछा, "मां, यह स्थान कहां पर है? हम इस समय किस जगह हैं?"

उसने उत्तर दिया, "यदि तुम पैदल यहां से जाने की कोशिश करोगे, तो दस वर्ष में भी अपने स्थान पर नहीं पहुंच पाओगे। इन पहाड़ों में ही भटककर रह जाओगे। यह क्षेत्र तिब्बत में है और इसे उरुंगमठ कहते हैं। तान्त्रिक क्षेत्र में इस मठ की बहुत महत्ता है, और प्रत्येक तान्त्रिक अपने जीवन में एक बार इस मठ के दर्शन करने की लालसा मन में रखता है।"

"ये चारों तरफ़ लामा हैं, जो कि विशिष्ट साधनाओं में रत हैं। पर ये सभी अपनी-अपनी साधनाओं में व्यस्त हैं, न तो तुम्हारे पास कोई आएगा और न कोई बात ही होगी। अपने मन में किसी प्रकार का भय करने की ज़रूरत नहीं है। और आज्ञा के बिना इस मठ को छोड़कर बाहर न जाना, नहीं तो किसी नई विपत्ति में फंस जाओगे।"

ऐसा कहते-कहते वह बाहर निकलकर अदृश्य हो गई। अब मैंने गुफा की ओर ध्यान दिया। यह गुफा तीस फ़ुट लम्बी और लगभग बीस फ़ुट चौड़ी थी। अन्दर से बिल्कुल स्वच्छ और पारदर्शी पत्थरों से निर्मित थी। पत्थर कुछ इस प्रकार से बने हुए थे कि अन्दर बैठा हुआ व्यक्ति तो बाहर के दृश्यों को और घटनाओं को स्पष्ट देख सकता था, परन्तु बाहर वाले व्यक्ति गुफा के अन्दर बैठे हुए लोगों को नहीं देख सकते थे।

उस गुफा में सभी साधन उपलब्ध थे। एक तरफ़ पानी भरा हुआ था, जहां बैठकर भली प्रकार से स्नान किया जा सकता था। यही नहीं अपितु उसके पास ही पुरुषोचित और स्त्रियोचित कपड़े भी पड़े हुए थे। दूसरी तरफ़ पीने का पानी रखा हुआ था। उसके पास ही बर्तनों में खाद्य पदार्थ ढके हुए थे,

जिनकी सुगन्ध यहां बैठे-बैठे भी नथुनों में आ रही थी।

भैरवी ने पूछा, "तूने आज कमाल कर दिया। कहां तो वह कामातुर होकर पागल बन रही थी, और कहां तूने उसे मां और प्राणरक्षिणी बना दिया। निश्चय ही आज यदि और योगी-योगिनियां आ जाते, तो ठीक वही दुर्दशा हमारी होती, जो उस संन्यासी ने बताई थी। पर तूने कामधेनु तन्त्र की उस पंक्ति को उच्चरित करते ही सब-कुछ बदल दिया। क्या तूने कभी कामधेनु तन्त्र जैसे कठिन तन्त्र को सिद्ध किया था?"

मैंने कहा, "इच्छा तो अवश्य थी, परन्तु जीवन में उसे सिद्ध करने का अवसर ही नहीं मिला था।" फिर मैंने वह सारी बात बता दी कि किस प्रकार जेब में रखी पारद गुटिका का स्पर्श करते ही कानों में गुन-गुन की आवाज़ के साथ मार्गदर्शन मिला। चावलों के दाने प्राप्त हुए और मैंने वही कुछ किया, जो कि मुझे बताया गया था।

मैंने उठकर स्नान किया और वहां रखे हुए कपड़े धारण कर लिये फिर मैंने भैरवी को भी स्नान करने के लिए कहकर गुफा से बाहर निकल गया। मैंने सोचा जब तक यह स्नान करेगी तब तक मैं आसपास की भौगोलिक स्थिति को समझने का प्रयास कर लूंगा।

मैंने बाहर देखा कि तिब्बती लामा अपनी-अपनी साधनाओं में बैठे हुए थे। उनके चेहरों की बनावट से स्पष्ट ज्ञात हो रहा था कि वे सभी तिब्बती योगी हैं। निश्चय ही लामा होंगे। वह क्षेत्र भी तिब्बत का ही भाग दिखाई दे रहा था। लगभग आधा घंटा आसपास घूम-फिरकर जब वापस गुफा में आया, तब तक भैरवी स्नान कर कपड़े बदल चुकी थी। हम दोनों ने बैठकर भोजन किया।

भोजन के बाद मृगाक्षी ने बाहर घूमने की इच्छा प्रकट की। चांदनी खिली हुई थी। हम दोनों बाहर निकल पड़े, लगभग दो-तीन घंटों तक घूमते रहे।

मैंने देखा कि सभी साधक अपनी विशिष्ट साधनाओं में तल्लीन हैं। सभी के चेहरों से एक विशेष प्रकार का तेज पुंज निसृत है। ऐसा लग रहा है कि उनके चेहरे के चारों ओर प्रभामडंप बन रहा है, और यह भी बन सकता

है जब वह तन्त्र के क्षेत्र में ऊंचे स्तर पर पहुंच रहा हो। जो भी हो, यह बात तो सही है कि यहां बहुत ही ऊंची साधनाएं सम्पन्न हो रही हैं।

आधी रात बीत गई। हम दोनों गुफा में आकर सो गए। प्रातः काल जब आंखें खुलीं, तो सूर्य उगने की तैयारी कर रहा था। हम जल्दी से नहा-धोकर तैयार हुए और कपड़े बदलकर बैठे ही थे कि वह योगिनी गुफा में आ पहुंची जिसने हमें कल यहां छोड़ा था।

उसने कहा, "रात को बाहर घूमने की क्या ज़रूरत थी। ख़ैर, जो हो गया सो हो गया। मुझे वापस उसी जगह जाना ज़रूरी हो गया था। मैं थोड़ा-थोड़ा अपराधबोध अनुभव करने लगा था कि मुझे बिना पूछे बाहर नहीं जाना चाहिए था, परन्तु मैं अब अपने-आप को किसी बन्धन में नहीं रखना चाहता था। मुक्त होकर विचरण करना चाहता था।"

मैंने कहा, "मां यह तिब्बत का गुह्य क्षेत्र है, जहां प्रत्येक का पहुंचना कठिन ही नहीं, अपितु असम्भव-सा ही है। वास्तव में ही मैंने तवांग मठ और उरुंग मठ का नाम सुना था। जीवन में सोचा भी नहीं था कि ऐसे स्थानों पर जाना सम्भव हो सकेगा। उरुंग मठ के बारे में तो सुना था कि यहां वे लामा साधना सम्पन्न करते हैं, जो आगे चलकर धर्म गुरु बनते हैं, जो तन्त्र के क्षेत्र में अद्वितीय होते हैं।"

योगिनी ने कहा, "तुम सही कह रहे हो। यहां पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण साधनाएं सम्पन्न होती हैं, जिनमें परकाया में प्रवेश साधना, ब्रह्मांड विचरण साधना, हावी साधना, कादी विद्या साधना, अनन्छ वर्ष साधना आदि कई ऐसी साधनाएं हैं, जो सर्वथा अज्ञात हैं। तुम सामान्य लोगों को तो इन साधनाओं के बारे में ज्ञान ही नहीं है। यहां कुछ ऐसी साधनाएं भी होती हैं, जिनके माध्यम से व्यक्ति हज़ारों वर्षों तक जीवित रह सकता है, ऐसी साधनाएं भी हैं, जिससे व्यक्ति की आयु, स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता और सैकड़ों वर्षों तक तरुण यौवनमय बना रह सकता है, कामारु साधना के माध्यम से पुरुष को स्त्री या स्त्री को पुरुष कुछ ही क्षणों में बनाया जा सकता है। तरांग तन्त्र के माध्यम से व्यक्ति अपने शरीर को दो सौ मीटर लम्बा और चौड़ा और चाहे तो मच्छर से भी छोटा आकार दे सकता है, व्युपांग तन्त्र के माध्यम से

बिना गर्भ के भी बालक को जन्म दिया जा सकता है और उसे सभी प्रकार से सक्षम बनाया जा सकता है। धीर वाण तन्त्र के माध्यम से संसार की प्रत्येक वस्तु और पदार्थ को प्राप्त किया जा सकता है और उसका उपयोग किया जा सकता है। द्रवान तन्त्र के माध्यम से समस्त शक्तियों को अपने अधीन बनाया जा सकता है, मारण मोहन वशीकरण उच्चाटन आदि की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त की जा सकती है। कुक्टेश्वर तन्त्र के माध्यम से मनुष्य को या स्त्री को किसी भी प्रकार का आकार दिया जा सकता है, वह चाहे तो पल में पशु या पक्षी बन सकता है और चाहे तो पुनः अपने मूल रूप में आ सकता है। ज्वालामुखी तन्त्र के माध्यम से पूरे विश्व में आग लगाई जा सकती है और प्रलय जैसी स्थिति बनाकर पहाड़ों को भी ख़ाक किया जा सकता है। एक जटा महाकाली तन्त्र के माध्यम से अपने रक्त की बूंदों से नए वीर पैदा किए जा सकते हैं, जो युद्ध में अद्वितीय हों, श्मशान काली तन्त्र के माध्यम से भूतों-प्रेतों, पिशाचों, राक्षसों को अपने अधीन कर उनसे जीवन-भर काम लिया जा सकता है। ग्रग्रवर्णा तन्त्र के माध्यम से ऊंचे-ऊंचे तान्त्रिक को अपना वशवर्ती बनाकर मनोनुकूल कार्य सम्पन्न करवाया जा सकता है, और इस प्रकार सैकड़ों गोपनीय तन्त्र हैं, जिन्हें यहां पर सिद्ध कराया जा सकता है और उससे लाभ उठाया जा सकता है। इन लामाओं ने हम भारतवासियों की अपेक्षा ज़्यादा उच्च कोटि की तान्त्रिक क्रियाएं सिद्ध की हैं, भारतवर्ष की यह सारी विद्या बौद्धों के माध्यम से तिब्बत में आ गई। इन ग्रन्थों के माध्यम से ही इन लामाओं ने उन तन्त्रों को पूर्णता के साथ सिद्ध किया और सफलता प्राप्त की।

"आज भारतवर्ष के पास छुट-पुट तान्त्रिक क्रियाएं ही रह गई हैं। उच्च कोटि की साधना और उनसे सम्बन्धित साधन विधियां उनके पास नहीं हैं। वे सभी इन मठों में सुरक्षित हैं। जिस मठ में तुम बैठे हुए हो इसमें विशाल पुस्तकालय है, जिसमें प्राचीन हस्तलिखित लगभग दस हज़ार तान्त्रिक ग्रन्थ सुरक्षित हैं, ये पुस्तकें ताड़-पत्रों पर, भोज-पत्रों पर लिखी हुई हैं और कुछ प्राचीन ग्रन्थ तो मनुष्य की चमड़ी पर लिखे हुए हैं, क्योंकि उन दिनों भोज-पत्र या ताड़-पत्रों का प्रचलन नहीं था। अतः उन्होंने मानव की चमड़ी को रसायन क्रिर से सह्य बनाकर उन पर उन तान्त्रिक ग्रन्थों को लिखकर सुरक्षित रखा। ऐसे नगभग तीन सौ से भी ज़्यादा ग्रन्थ यहां सुरक्षित हैं। एक प्रकार से देखा

जाए तो यह उरुंग मठ विश्व का सर्वश्रेष्ठ प्रामाणिक और गोपनीय मठ है। तवांग मठ भी इसकी बराबरी नहीं कर सकता।

"शंकराचार्य ने इन दुर्गम मठों की यात्राएं भी की थीं। उन्होंने इन साधना रहस्यों को तो समझा था, परन्तु वे इन ग्रन्थों को अपने साथ पुनः भारतवर्ष नहीं ले जा सके। उन्होंने इन गुप्त और दुर्गम तवांग मठ तथा उरुंग मठ की भी यात्राएं कीं।

"चीनी और तिब्बती तवांग मठ तक तो पहुंचे हैं, परन्तु ऊंची-ऊंची बर्फ़ीली पहाड़ियों के बीच स्थित इस उरुंग मठ तक वे भी नहीं पहुंच सके हैं। इस प्रकार यह उरुंग मठ आधुनिक सभ्यता से बिल्कुल अछूता बचा रहा और इसीलिए इसमें मूल ग्रन्थ तथा साधना पद्धतियां ज्यों-की-त्यों सुरक्षित रह सकीं।

"इन सभी लामाओं और सिद्धों से मुझे ज़्यादा जानकारी है, क्योंकि गुरुदेव ने मुझे ब्रह्मत्व साधना सिद्ध कराकर, विहंगल सिद्धि अपने तपोबल से प्रदान कर दी थी, जिसकी वजह से लामाओं से भी ज़्यादा सिद्धियां मुझे स्वतः प्राप्त हो सकीं और उसमें सिद्धहस्त हो सकी।"

मेरे सामने से रहस्य का बहुत बड़ा पर्दा दूर हो चुका था। मैंने पूछा, "फिर आप जिस स्वरूप में हमें पहली-पहली बार दिखाई दीं, उसका कोई विशेष प्रयोजन था।"

उसने हंसकर मेरी ओर देखा। बोली, "तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए ही मुझे ऐसा करने के लिए विवश होना पड़ा था। तुमने जिस मन्त्र का उच्चारण किया था वह मन्त्र-पूत मन्त्र है।"

भैरवी ने कहा, "जब हम आपको मां शब्द से सम्बोधित कर ही सकते हैं, तो हमें इन समस्त सिद्धियों और साधनाओं को सीखने की इच्छा है। हम तन्त्र के क्षेत्र में इन लामाओं से भी आगे निकलना चाहते हैं, जिससे कि भारतवर्ष की तान्त्रिक थाती समाप्त न हो जाए। वे विद्याएं या तो ग्रन्थों में हैं या फिर जीवित ग्रन्थ के रूप में विद्यमान हैं और हम जीवित ग्रन्थ बनना चाहते हैं, जिससे कि भारतवर्ष की थाती सुरक्षित रह सके।"

उस दिन योगिनी ने विस्तार से बातें कीं। मैंने कहा, "मां, क्या तन्त्र मानव

के लिए उपयोगी है? क्या इसके माध्यम से हम मानव में भरा हुआ ज़हर दूर कर सकते हैं? एक देश दूसरे देश से भयभीत है? एक दूसरे पर आक्रमण करना चाहता है और समाप्त करने की घात में लगा रहता है। क्या तन्त्र के माध्यम से इन लोगों को सद्‌बुद्धि दी जा सकती है? क्या इनके मन में जो भय है, परस्पर घृणा, द्वेष, छल और कपट का जो भाव है, क्या वह दूर किया जा सकता है?"

योगिनी कात्यायनी ने कहा, "निश्चय ही तन्त्र के माध्यम से यह सब कुछ सम्भव है। यह भी तुम समझ लो कि जब तक भारत में तन्त्र सही प्रकार से फलता-फूलता रहा, तब तक बराबर तरक़्क़ी करता रहा। परन्तु ज्यों ही तन्त्र में न्यूनता आई, तब से उसका ह्रास होना प्रारम्भ हो गया। आज भारतवर्ष में जो कुछ न्यूनता दिखाई दे रही है, वह सब तन्त्र को भली प्रकार से न समझने की वजह से ही है। प्राचीन काल कितना अधिक समृद्ध था, सुखी और सम्पन्न था, यह सब तुम इतिहास में पढ़ चुके हो, परन्तु इसके साथ-ही-साथ इतिहास हमें यह भी बताता है कि तन्त्र उस समय अपने पूर्ण विकास पर था। जब तक भारतवर्ष में तन्त्र की पूर्णता के साथ पुनर्स्थापना नहीं हो जाएगी, तब तक भारतवर्ष में उन्नति होना भी सम्भव नहीं।"

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कात्यायनी ने कहा, "यदि विश्व में शान्ति है, तो इसका कारण हिमालय स्थित इन तान्त्रिकों को ही जाता है, जिन्होंने अपनी साधना के बल पर पूरे संसार को नियन्त्रित कर रखा है। इन्होंने अपनी साधना-पद्धतियां इस प्रकार से विकसित की हैं कि जिसकी वजह से सब-कुछ सही प्रकार से गतिशील है।

"तन्त्र जीवन की पूर्णता नहीं अपितु उसका शृंगार है। जीवन में जो कुछ न्यूनता है, वह हमारे कार्यों के फलस्वरूप है। इस न्यूनता को केवल तन्त्र के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है। भारतवर्ष में जितने भी ऋषि, मुनि हुए, वे जहां सौम्य साधना में सफल हुए, वहीं उन्होंने तन्त्र साधना में भी पूर्णता प्राप्त की। तन्त्र का तात्पर्य व्यवस्थित तरीक़े से जीवन को पूर्णता एवं सफलता देना है।

"तुम भारत-पुत्र हो, नई पीढ़ी हो, तुम्हें तन्त्र के प्रति गहराई के साथ

रुचि लेनी चाहिए। खाना-पीना, मौज-मस्ती, यह सब-कुछ तो भोग के अंग हैं, जीवन का असली आनन्द तो तन्त्र में ही है।"

फिर कात्यायनी ने कहा, "यहां हिमालय में ऐसे कई सिद्ध योगी हैं, जो पिछले हज़ार-बारह सौ वर्षों से केवल विश्व कल्याणार्थ साधना में रत हैं। उनका कोई व्यक्तिगत हेतु नहीं। उनका स्वयं का कोई स्वार्थ या इच्छा नहीं, वे इन वैयक्तिक और सांसारिक इच्छाओं से बहुत ऊपर हैं। उनकी आंखों में विश्व कल्याण की भावना है — फिर उसने एक तरफ़ संकेत करते हुए कहा, "हिमालय की उन सुदूर चोटियों को तुम लोग देख रहे हो, जो कि हमेशा ढकी रहती हैं। इन पहाड़ों में कई गुफाएं हैं, जिनमें ये योगी सैकड़ों वर्षों से ध्यानस्थ हैं। इनकी साधना से और तपस्या से हिमालय का कण-कण प्रकाशित है। बहुत ही ऊंचाई पर स्थित गौपांग मठ देखा है, जिस पर अभी तक सामान्य मनुष्य के चरण नहीं पड़े। यहां पर कई तिब्बती लामा पिछले पन्द्रह सौ वर्षों से साधनारत हैं और उनके शरीर के प्रकाश से आसपास का सारा वातावरण प्रभावित है। हज़ारों वर्षों से कुछ कालजयी योगी निरन्तर साधनारत हैं। उनके दर्शनों का सौभाग्य भी तुम्हें जीवन में प्राप्त करना चाहिए।"

भैरवी ने जिज्ञासा की, "मां, जिस प्रकार से कल आप हमारी अंगुली पकड़कर यहां ले आई थीं, क्या उसी प्रकार आप इन गुफाओं में नहीं ले जा सकतीं? जहां इतने हज़ार वर्षों से योगी-साधनारत हैं, क्या आप उसके दर्शन नहीं करा सकतीं?"

कात्यायनी ने जवाब दिया, "वह साधनाबद्ध क्षेत्र है, जिसकी काया वज्रयुक्त हो, वही इस तरफ़ जा सकता है या वज्रयुक्त काया साधक के साथ उस तरफ़ जाना सम्भव हो सकता है। मैंने अभी वज्रदेह साधना नहीं सम्पन्न की है।"

कात्यायनी ने फिर कहा, "इस समय अट्ठारह तान्त्रिक क्रियाएं गुप्त और दुर्लभ हैं। जब तक उन समस्त विद्याओं में पूर्णता प्राप्त नहीं कर लोगे, तब तक लक्ष्यों की प्राप्ति सम्भव नहीं है।"

मैंने कहा, "ये अट्ठारह साधनाएं कौन-सी हैं, जो अपने-आप में महत्त्वपूर्ण और अद्वितीय हैं?"

कात्यायनी ने कहा, "वे साधनाएं हैं — 1. सृष्टि निर्माण साधना — जिसके माध्यम से सर्वथा नूतन सृष्टि का निर्माण किया जा सकता है, जिस प्रकार से ब्रह्मा से विरोध होने पर विश्वामित्र ने इस साधना के माध्यम से नवीन मनुष्य, स्त्रियां, पशु-पक्षी, कीट-पतंग, पृथ्वी, आकाश आदि का निर्माण प्रारम्भ कर दिया था। 2. वज्रांग साधना — जिसके माध्यम से समस्त शरीर वज्र की तरह मज़बूत और कठोर हो जाता है। उसके सीने से यदि चट्टान भी टकराती है, तो चट्टान के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं, पर सीने पर किंचित भी खरोंच नहीं आती। 3. कालजयी साधना — जिसके माध्यम से व्यक्ति सैकड़ों वर्षों तक जीवित रह सकता है, काल या मृत्यु चाहकर भी उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। 4. लोकानुलोक गमन साधना — इसके माध्यम से साधक पृथ्वी से अन्य लोकों की यात्रा कर सकता है, फिर भले ही वह सूर्य लोक हो या नक्षत्र लोक, वहां रह सकता है, वहां की भाषा समझ सकता है, उन्हें समझा सकता है और जिस प्रकार से भी चाहे क्रिया-कलाप कर सकता है। 5. हादी विद्या साधना — जिसके माध्यम से व्यक्ति अनन्त वर्षों तक भूख-प्यास से रहित जीवन व्यतीत कर सकता है, न जो उसे जल की आवश्यकता होती है और न अन्न की, फिर भी उसके शरीर में ऊष्मा और शक्ति बराबर बनी रहती है। 6. कादी विद्या साधना — जिसके माध्यम से वह किसी भी मौसम में, किसी भी स्थिति में कहीं पर भी वर्षों रह सकता है, बर्फ़ीली ऊंची चोटियों के बीच भी नंगे बदन वह सुखपूर्वक रह सकता है, उसे सर्दी व्याप्त नहीं होती। इसी प्रकार वह हज़ारों अग्नि-कुंडों के बीच भी मुस्कुराता हुआ बैठ सकता है, एक प्रकार से देखा जाए, तो प्रकृति का प्रभाव उस पर व्याप्त नहीं होता। 7. रूपानुरूप तन्त्र साधना — इसके माध्यम से साधक जिस रूप में भी जीना चाहता है जी सकता है। 8. रूप्य तन्त्र साधना — इसके माध्यम से साधक अपने-आप को सैकड़ों रूपों में विभक्त कर सकता है और वे सभी स्वरूप अपने-आप में पूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए यदि तुम चाहो तो अपने बीस समान रूप धारण कर सकते हो। एक रूप में यहां साधना कर सकते हो, दूसरे रूप से व्यापार कर सकते हो और इस प्रकार एक ही समय में एक व्यक्ति कई रूप धारण कर कई कार्य सम्पन्न कर सकता है। 9. महत्तम तन्त्र साधना — जिसके माध्यम से व्यक्ति विशाल रूप धारण कर सकता है, एक क्षण में वह दो सौ फ़ीट लम्बा-चौड़ा व्यक्ति बन सकता है, और अपने आकार को इससे भी ज़्यादा

लम्बा-चौड़ा कर सकता है और चाहे तो दूसरे ही पल मच्छर से भी सूक्ष्म रूप धारण कर सकता है। 10. आकाश गमन साधना — इसके माध्यम से व्यक्ति आकाश में उड़कर कुछ ही सेकेंडों में एक स्थान से दूसरे स्थान तक जा सकता है, इससे उसके शरीर पर किसी प्रकार का कोई व्याघात उपस्थित नहीं हो सकता। 11. परकाया प्रवेश साधना — इसके द्वारा व्यक्ति अपने शरीर को स्पन्दनशील बनाकर दूसरे शरीर में जा सकता है, और उस शरीर के माध्यम से कार्यकलाप सम्पन्न कर पुनः अपने मूल देह में आ सकता है। 12. अदृश्य सिद्धि साधना — इसके माध्यम से व्यक्ति तत्क्षण हवा में विलीन हो सकता है, ऐसी स्थिति में वह तो दूसरों को भली प्रकार से देख सकता है, परन्तु दूसरे व्यक्ति या प्राणी उसे नहीं देख सकते। वह जितने समय तक चाहे इस स्थिति में रह सकता है। 13. रसायन सिद्धि साधना — इसके माध्यम से वह एक धातु को दूसरे धातु में परिवर्तित कर सकता है और इसके माध्यम से लोहे के ढेर को स्वर्ण में परिवर्तित कर सकता है। 14. सूर्य विज्ञान साधना — जिसके माध्यम से वह मात्र सूर्य की किरणों से किसी भी नवीन पदार्थ की सृष्टि कर सकता है। 15. शून्य साधना — जिसके माध्यम से शून्य में से किसी भी प्रकार का पदार्थ प्राप्त कर सकता है, यह चाहे तो हवा में से पलंग और हाथी तक प्राप्त कर सकता है। 16. काल ज्ञान साधना — इससे किसी भी व्यक्ति के पिछले दो हज़ार वर्ष तक के जीवन को और आगे के दो हज़ार वर्ष तक के जीवन को देख सकता है। वर्तमान जीवन के तो प्रत्येक पल को ठीक उसी प्रकार से देख सकता है, जिस प्रकार से हम चलचित्र देख रहे हों। 17. वाग्देवी साधना — इसके माध्यम से बिना पढ़े ही संसार की प्रत्येक भाषा और साहित्य को कंठस्थ कर समझ सकता है, सुना सकता है, वह घंटों किसी भी विषय पर प्रवचन दे सकता है और हज़ारों-लाखों लोगों की भीड़ को मन्त्रमुग्ध कर सकता है। 18. पूर्णत्व साधना — इसके माध्यम से व्यक्ति शरीरस्थ समस्त चक्रों को जाग्रत कर ब्रह्म से साक्षात्कार कर सकता है।

"इसके अलावा भी सैकड़ों छोटी-मोटी सिद्धियां हैं, जिनमें पुरुष को स्त्री या स्त्री को पुरुष बनाना, किसी के मन की बात जान लेना, कहीं से भी कोई वस्तु मंगा लेना आदि हैं। पर ये सब शूद्र सिद्धियां कही जाती हैं।"

फिर कुछ रुककर कात्यायनी बोली, "इन अट्ठारह सिद्धियों में से कुछ

सिद्धियां तो मैं तुम्हें सिखा दूंगी, पर कुछ विशिष्ट सिद्धियां मेरे पास नहीं हैं, और न उनका मुझे ज्ञान है।"

दूसरे दिन कात्यायनी ने मनोयोगपूर्वक तन्त्र की साधना और शिक्षा देनी प्रारम्भ की। वह प्रत्येक विषय को सूक्ष्मता के साथ समझाती। इस तरह से बताती कि जैसे कोई मां बच्चे को लाड़ से समझाती हो। यद्यपि शुरू-शुरू में हमसे भूल हो जाती, उतनी तन्मयता नहीं आ पाती जितनी कि होनी चाहिए, परन्तु वह कभी क्रोधित नहीं होती।

धीरे-धीरे सरल कठिन की ओर बढ़ते हुए कात्यायनी ने विशिष्ट साधनाओं को सिखाना प्रारम्भ किया। मैं अनुभव कर रहा था कि जो साधना मैं दस दिन में सीख पाता, मृगाक्षी उसे दो ही दिन में सिद्ध कर लेती। मैंने एक दिन इस विषय में मां कात्यायनी से पूछा, तो उसने जवाब दिया कि पूर्व संचित पुण्यों से ही ज्ञान और सिद्धि प्राप्त होती है, मृगाक्षी के पूर्व-संचित पुण्य तुमसे ज़्यादा हैं। इसलिए वह तुमसे आगे बढ़ रही है। फिर भी तुम्हें हिम्मत हारने की ज़रूरत नहीं है, तुम भी धीरे-धीरे इन समस्त साधनाओं को समझ लोगे, प्राप्त कर लोगे।

कात्यायनी ने बताया था कि यह पूरा क्षेत्र प्रकृति का सर्वाधिक सम्पन्न क्षेत्र है, यहां विविध तरह की जड़ी-बूटियां आसानी से मिल जाती हैं, जो कि विश्व में अन्यत्र दुर्लभ हैं। यहां कई जड़ी-बूटियां ऐसी हैं, जिन्हें एक बार चबा लेने से कई वर्षों तक भूख-प्यास की अनुभूति ही नहीं होती। जब भूख-प्यास नहीं लगेगी, तो मल-मूत्र विसर्जन की क्रिया भी नहीं करनी पड़ेगी। कात्यायनी ने पास ही पड़ी एक जड़ी को उखाड़कर कहा, "यह कपड़े से मसलकर यदि कमरे में रख दी जाए, तो सौ वर्षों तक इसमें से प्रकाश निकलता रहता है और बहुत बड़े भूभाग को प्रकाशित करता रहता है। इसे संस्कृत में वीरन कहते हैं।"

उसने एक छोटी-सी झाड़ी को दिखाते हुए कहा, "मुश्किल से इसकी ऊंचाई एक फुट है, पर इसका नाम गन्ध प्रसारिणी है। इसे यदि घर में रख दिया जाए, तो यह पौधा सूखता नहीं है, हवा से ही यह जल एवं खाद्य ग्रहण कर लेता है और इसकी सुगन्ध सैकड़ों वर्षों तक बराबर बनी रहती है।"

उसने शतपत्रिका पौधा भी दिखाया, जो कि दुर्लभ होता जा रहा है,

जिसके पत्ते यदि घोटकर पानी के साथ मिलाकर पिला दिए जाएं, तो सभी बीमारियां नष्ट हो जाती हैं। कैंसर के लिए तो अचूक औषधि है। हमने महामुंडी पौधा भी देखा जिसके पत्तों को चबाने से शरीर के रोग तो समाप्त होते ही हैं, उससे अतुलनीय बल प्राप्त हो जाता है।

हमने वहां कालस्कन्ध पौधा देखा, जिसके पंचमूल का सेवन करने से व्यक्ति की मृत्यु हो ही नहीं सकती। कायाकल्प के क्षेत्र में यह अद्वितीय पंचमूल है। वहीं पर हेमन्त हरित बेल देखने को मिली, जो यदि अपने पास रख ले या उसका टुकड़ा यदि शरीर पर बंधा हुआ हो, तो अत्यन्त बर्फ़ीले प्रदेश में भी सर्दी व्याप्त नहीं होती। यहीं पर अग्निवती पौधा कात्यायनी ने दिखाया, जिसे यदि लोहे से स्पर्श किया जाए, तो वह तुरन्त स्वर्ण में परिवर्तित हो जाता है। नवमल्लिका पौधा भी देखने को मिला, जो कि पुरुषत्व के लिए अद्वितीय है। इस प्रकार सैकड़ों-हज़ारों वनस्पतियों से भी हमारा परिचय हुआ।

कात्यायनी ने कहा, "ये सब पौधे हरितावस्था में ही लाभप्रद हैं, सूखने पर सम्भवतः उतना प्रभाव न हो। पर यदि कोई भी पौधा या पत्ती अरण्य-कुलिका के पत्तों में लपेटकर रख दिया जाए, तो सौ वर्ष तक भी पौधा वैसा का वैसा बना रहता है जैसा तोड़ते समय होता है। इन पत्तों में लपेटकर यदि यह पौधा किसी भी जलवायु में लगाया जाए, तो निश्चित रूप से वह उग सकता है।"

इसके दूसरे दिन उसने अरण्य-कुलिका का पेड़ भी दिखा दिया। यह विशिष्ट स्वर्ग का पेड़ है, और इसके पत्ते इतने बड़े-बड़े हैं कि यदि चाहे तो एक पत्ते में हाथी को भी लपेटा जा सकता है।

कात्यायनी ने मुझे कृष्ण-बीज पौधा दिखाया, जो कि ताम्बे को स्वर्ण में परिवर्तित करने में सक्षम है। गरुड़ फल दिखाया, जिसे हाथ में रखकर जो भी याचना की जाए, वह तुरन्त प्राप्त हो जाती है। नागदमनी के माध्यम से किसी भी प्रकार का ज़हर समाप्त किया जा सकता है। कोकिलाक्ष के माध्यम से मनचाहा आकार प्राप्त किया जा सकता है, और इस प्रकार सैकड़ों वनस्पतियों से परिचय कराया। मैं देख रहा था कि प्रकृति सौ-सौ रूपों में हमें देने का आतुर है, पर मनुष्य अपने ही अहं में इतना अधिक डूब गया है कि

वह प्रकृति से कट-सा गया है। इसकी वजह से प्रकृति के द्वारा जो लाभ व्यक्ति को प्राप्त होना चाहिए, उससे वह वंचित हो गया है।

हम दोनों ने कात्यायनी से तन्त्र का मर्दन मारण और उच्चाटन सीखा, तन्त्र की मूलभूत क्रियाएं सीखीं, अपने ऊपर किए जाने वाले प्रयोगों को निरस्त करना सीखा, शत्रुओं पर प्रहार करने की क्षमता प्राप्त की और धीरे-धीरे आगे बढ़ते हुए आकाशगमन सिद्धि आदि सिद्धियां प्राप्त कीं। पीछे कात्यायनी ने जो अट्ठारह गोपनीय विशिष्ट सिद्धियां बताई थीं, उनमें से भैरवी ने और मैंने बारह सिद्धियां सफलतापूर्वक सम्पन्न कर ली थी। मैंने अनुभव किया कि यदि सिखाने वाला सही हो, और सीखने में रुचि हो तो निश्चय ही किसी भी विद्या में सफलता पाई जा सकती है।

हमें वहां आए लगभग दो साल व्यतीत हो चुके थे। ये दो वर्ष किस प्रकार बीत गए कुछ पता ही नहीं चला। हम निरन्तर साधना में रत रहते और जो भी थोड़ा-बहुत समय बचता, उसमें वनस्पतियों की खोज और उनके बारे में जानकारी प्राप्त करने के बारे प्रयत्न करते।

एक दिन कात्यायनी ने कहा, "अब तुम दोनों को कल यहां से जाना होगा। मैं तीन महीनों के लिए विशिष्ट साधना के लिए अन्यत्र जा रही हूं। तुम लोगों ने जो कुछ तन्त्र के क्षेत्र में प्राप्त करना चाहा था, वह प्राप्त कर लिया है और इस अवधि में तुमने जो सेवा की है, मुझे मां की तरह सम्मान और स्नेह दिया है, उससे मैं अत्यधिक प्रसन्न हूं। मैं तुम्हें वहीं पर छोड़ दूंगी जहां से तुम्हें मैंने आकाश मार्ग से उड़ाया था। तुम मुझसे और कुछ चाहते हो तो बिना संकोच कह सकते हो।"

मृगाक्षी ने कहा, "मां, तुमने हम दोनों को जितना और जो कुछ दिया है, उससे तो जीवन-भर तुमसे उऋण नहीं हो सकते। जब तुमने यह कहा है कि जो भी इच्छा हो, वह बता दो, तो मेरी एक ही इच्छा है और वह केवल तुम ही पूरी कर सकती हो। मुझे वचन दो कि तुम मेरी इच्छा को पूरा करने में सहयोग दोगी।"

कात्यायनी ने कहा, "मेरा सहयोग तुझ अवश्य ही मिलेगा। यदि अनुकूल और उचित मांग हुई, तो मैं अवश्य ही तुम्हारी मदद करूंगी।"

मृगाक्षी ने कहा, "जब आपसे हमारी भेंट हुई थी उससे पहले एक संन्यासी नदी के तट पर शिला पर बैठे हुए मिले थे। उन्होंने मुझे बताया था कि इसी रास्ते से तुम्हारे पिता जी गए थे और वापस नहीं लौटे हैं। हो सकता है किसी वज्रयानी योगियों ने उन्हें अपने वश में कर रखा हो। मैं तुमसे इतना ही सहयोग चाहती हूं कि मेरे पिता का पता चल जाए और मैं एक बार अपनी आंखों से उन्हें देख लूं।"

कात्यायनी ने कहा, "वज्रयानी योगिनियां अपनी साधना में काम को प्रधानता देती ही हैं, काम तो भगवान शिव का वरदान है। यद्यपि उन्होंने काम को भस्म कर दिया, फिर भी अरूप होते हुए भी वह सर्वशक्तिमान, समर्थ एवं सशक्त है।

फिर उसने दो क्षण ध्यान लगाकर कहा, "मैं तुम्हारे पिता जी को दिखा दूंगी, परन्तु उनकी साधनाओं में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करूंगी। उन वज्रयानी योगिनियों से अगर टक्कर लेनी भी पड़ी, तो तुम्हें अकेले ही जूझना पड़ेगा।"

हम दोनों तैयार हो गए। तैयार क्या होना था सिर्फ़ दो वस्त्र थे, जो कि अपने साथ लेने थे। इसके अतिरिक्त एक झोले में कुछ विशिष्ट वनस्पतियों के नमूने मैंने अवश्य ले लिये थे, जो कि मेरी पूंजी बने हुए थे।

कात्यायनी ने एक विशिष्ट मन्त्र का उच्चारण किया और हम दोनों उसके साथ आकाश मार्ग में उड़ने लगे। इस सिद्धि को हमने प्राप्त कर लिया था और एक प्रकार से यह कात्यायनी के सामने परीक्षा ही थी, और इस परीक्षा में हम सफल भी हुए। कात्यायनी ने आकाश मार्ग में गतिशील होते हुए कहा, "तुम लोगों ने सही प्रकार से साधनाएं सिद्ध की हैं। यदि तुम्हारा भाग्य होगा, तो निश्चय ही दिव्य आश्रम में तुम लोगों को स्थान मिल जाएगा।"

तभी मुझे ऐसा लगा कि जैसे मेरा उड़ना अवरुद्ध हो गया है, मैं आगे की ओर उड़ना चाहता हूं, पर उड़ नहीं पा रहा हूं। मेरी ही नहीं भैरवी की भी यही स्थिति हो रही थी। मृगाक्षी ने चिल्लाकर मुझसे कहा, "यह क्या हो गया है? मैं आगे उड़ नहीं पा रही। ऐसा लग रहा है कि नीचे से कोई ताक़त के साथ खींच रहा है।"

कात्यायनी ने कहा, "मैं तुम दोनों से विदा लेती हूं। जहां तुम उतरोगे वहीं तुम्हारे पिता जी मिल जाएंगे। आंख और कान खुले रखोगे, तो पहचान लोगे।"

कात्यायनी उड़ती-उड़ती दूर चली गई थी। शायद उस पर इस आकर्षण का कोई प्रभाव नहीं था। धीरे-धीरे वह आंखों से ओझल हो गई और हम फिर दोनों अकेले रह गए।

धीरे-धीरे हम नीचे खिंचते रहे, हमने देखा कि एक योगिनी मन्त्र बल से हमें नीचे की ओर उतार रही है। लगभग सत्ताईस-अट्ठाईस साल की युवती — सुन्दर थी और आकर्षक परिधान पहने हुए ज़मीन पर खड़ी थी। दोनों पांव एक फ़ुट के फ़ासले पर थे, और दाहिने हाथ की उंगली आकाश की ओर उठाए हुए थी। उसी से वह हम दोनों को नीचे उतरने के लिए बाध्य कर रही थी।

हम दोनों उसके पास नीचे उतर गए। लगभग एक फर्लांग तक पैदल चले। वहां पर बीस-पच्चीस सुन्दर मकान बने हुए थे जैसे कि पहाड़ों की ओर बने होते हैं। मकानों के आगे सुन्दर छायादार पेड़ थे, जिनके नीचे सुन्दर स्त्रियां और पुरुष बैठे हुए थे, ये सभी लगभग नग्न से थे। यदि कुछ स्त्रियों ने या पुरुषों ने छाल के वस्त्र पहन भी रखे थे, तो केवल सुन्दरता के लिए। तन ढकने का कोई प्रयोजन नहीं था।

एक तरफ़ तीन-चार जोड़े परस्पर किलोलें कर रहे थे। पुरुष सामने बैठी स्त्री के शरीर से खेल रहा था और वह हंस रही थी। एक तरफ़ तो एक पुरुष पांच-छः सुन्दर स्त्रियों से लिपटा हुआ पड़ा था।

वहां पहुंचने पर भी किसी ने हमारी तरफ़ ध्यान नहीं दिया। सभी अपने आप में खोए हुए से थे। दो-तीन पुरुष मृगाक्षी को देखकर आश्चर्य से प्रसन्न हुए और पास आए, परन्तु उस स्त्री का संकेत पाकर वे वापस लौट गए।

सब-कुछ अजीब-सा था। मैं न चाहते हुए भी उन दृश्यों को देख रहा था और जितना भी देखता उतनी ही ज़्यादा वितृष्णा मन में भर जाती। एक ने स्त्री के पूरे शरीर पर विविध प्रकार के चित्र बना रखे थे और वह तल्लीनता

के साथ उन तान्त्रिक चित्रों की पूजा कर रहा था। एक तरफ़ हमने देखा कि कमरे से निकलकर सुन्दर तरुणी बाहर आई, जिसकी उम्र लगभग सत्रह-अट्ठारह वर्ष की होगी। वह सर्वथा नग्न थी, बाहर आकर पत्थर की शिला पर बैठ गई। तभी उसी कमरे से तीन-चार युवक शराब के पात्र लिये हुए बाहर निकले और उस नारी शरीर पर शराब उड़ेल दी। एक प्रकार से उसे शराब से स्नान ही करा दिया और फिर हाथों के पात्र फेंककर उसके शरीर पर पड़ी शराब को चाटने लगे। उनमें किसी प्रकार की लाज, हया, शर्म आदि का लवलेश नहीं था।

मैंने एक सेकेंड के लिए मृगाक्षी की ओर देखा। वह शर्म से पानी-पानी हो रही थी। उसकी आंखें नीची थीं। यदि उसका बस चलता, तो निश्चय ही वह वहां से भाग खड़ी होती। परन्तु उसके पैर तो मेरी तरह ही कीलित किए हुए थे।

एक तरफ़ थोड़ी-सी दूरी पर पेड़ के नीचे एक बूढ़ा हरिण बैठा दिखाई दिया, जो बार-बार हमारी ओर ताक रहा था। ज्यों ही हमारी दृष्टि उसकी तरफ़ जाती वह उठ खड़ा होता और पैरों के अगले पंजों से ज़मीन पर आवाज़-सी करता। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह कुछ हमें समझा रहा है, पर हम समझ नहीं पा रहे हैं। यहां की माया विचित्र है। यहां तो मनुष्य पशु बन गए हैं और पशु मनुष्य का-सा व्यवहार करने लगे हैं। मृगाक्षी एकटक उस हरिण की ओर देख रही थी।

मैंने देखा कि हरिण बराबर कुछ संकेत कर रहा है। कभी आंखों से, कभी गर्दन घुमाकर और कभी खुरों से ज़मीन पर प्रहार कर। मृगाक्षी उसकी तरफ़ तीन-चार क़दम बढ़ी, तभी उस योगिनी ने गुर्राहट की, उधर कहां जा रही है? यदि ज़्यादा हेकड़ी दिखाई, तो तेरे बाप की तरह तुझे भी हरिण बना दूंगी।"

मैंने चीख़कर कहा, "इस पुरुष को हरिण क्यों बना रखा है? इस प्रकार से किसी को अवश कर बांध देना नृशंसता है, पाप है।"

वह योगिनी ज़ोरों से हंस पड़ी, "यह पाप और पुण्य की परिभाषा तुम कहां से ले आए युवक? जब तुम पर पांच-सात स्त्रियां टूट पड़ेंगी और हफ़्ते-भर

में तुम्हारा सारा यौवन नष्ट हो जाएगा, तब मैं पूछूंगी कि पाप क्या होता है और पुण्य क्या होता है। इस मृगाक्षी पर तो कई विशिष्ट साधनाएं सम्पन्न होंगी। कम-से-कम सौ पुरुष तो इसके शरीर के यज्ञ-कुंड में हवन कर ही सकते हैं। चौबीस घंटों में सौ साधक कोई ज़्यादा तो नहीं होते।"

"जैसा तुम सोचती हो, वैसा मैं होने नहीं दूंगा," मैंने उसी प्रकार चीख़ते हुए कहा, "यह सही है कि तुमने हम दोनों को बांध-सा दिया है, परन्तु हम इस प्रकार से पराजय स्वीकार नहीं करेंगे।"

पता नहीं उस समय मुझमें इतना जोश कहां से आ गया था? मैं बात को चीख़कर डांटते हुए स्वर में कह रहा था। मैंने कहा, "यह हरिण मृगाक्षी के पिता हैं, और तुमने उन्हें पशु बनाकर रख दिया है। क्यों? मैं पूछ रहा हूं, ऐसा क्यों किया?"

उसने उत्तर दिया, "यह निश्चय ही इस लड़की का पिता है और कई वर्ष पहले यह इधर वज्रयानी साधना सीखने के लिए आया था। जब तक यह मेरे साथ रमण नहीं करेगा, मुझे और मेरे शरीर को सन्तुष्ट नहीं करेगा, तब तक मैं इसे हरिण ही बनाए रखूंगी। भूखा-प्यासा मारकर विवश कर दूंगी। एक-न-एक दिन तो इसे हार माननी होगी। तभी मैं इसके साथ अनंग साधना सम्पन्न कर सकूंगी।" ऐसा कहते-कहते उसने हवा में हाथ लहराया, सरसों जैसे कुछ दाने प्राप्त किए, अपने मुंह के सामने मुट्ठी रखकर फूंक मारी और उस हरिण की तरफ़ उछाल दिए। दूसरे ही क्षण हरिण के स्थान पर मृगाक्षी के पिता खड़े थे, अवश, थके हुए, बूढ़े से, निरुपाय, निस्सहाय।"

मृगाक्षी दौड़कर उनसे लिपट गई, बोली, "यह आपकी क्या स्थिति हो गई है?" पिता ने कहा, "यह बहुत दुष्ट है। मैं अपने-आप को बचाता रहा, तब से यह क्रुद्ध हो गई है और मुझे हरिण बनाकर रख दिया है। यहां बहुत से युवक हैं, जिन्हें जब जी चाहता है, पुरुष बना देते हैं और जब उससे काम ले लेते हैं, तो फिर पशु बना देते हैं।"

तभी मैंने देखा कि आठ-दस सर्वथा नग्न पुरुष और पांच-सात स्त्रियां हमारी तरफ़ आ रही थीं। मृगाक्षी के पिता ने कहा, "बेटी, अपने-आप को

बचाना। अब ये तुम दोनों की दुर्दशा ही करेंगे।"

तभी अपनी जेब में पड़ी पारद गुटिका की याद हो आई। मैंने अपनी जेब में हाथ डाला तो सौभाग्य से वह गुटिका उसमें ही थी। मैंने उसे हाथ में लिया कि कानों में गुनगुनाहट की ध्वनि आई कि तुम तीनों परस्पर ऊपर की ओर उठ जाओ। यह गुटिका हाथ से छोड़ना मत और मन में यह सोच लेना कि तुम्हें उड़ना है और इस वर्जित क्षेत्र से बाहर निकलना है।

मैंने तुरन्त गुटिका को बाएं हाथ में ले लिया और दाएं हाथ से मृगाक्षी और उसके पिता को पकड़ लिया और फिर मन में ज्यों ही उड़ने की भावना की, त्यों ही हमारे पैर ज़मीन से ऊपर उठने लगे। हमें ऊपर उठते देख आते हुए युवक-युवतियां आश्चर्यचकित रह गए। यह क्या हो रहा है? ऐसा कैसे सम्भव है? और वे हमें पकड़ने के लिए दौड़ने लगे।

तब तक हम तीनों ज़मीन से काफ़ी ऊपर उठ गए थे और तीव्र गति से आकाश मार्ग में एक तरफ़ को उड़े जा रहे थे। पता नहीं कौन-सी शक्ति इस प्रकार से हमें उड़ा रही थी। हम किस तरफ़ उड़ रहे थे, कुछ भान नहीं था, मन में इतना सन्तोष अवश्य था कि जहां भी होंगे इन वज्रयानियों से तो सुरक्षित ही होंगे।

वज्रयानी क्षेत्र हमसे पीछे रहा था। उन लोगों ने मुट्ठियां बांध-बांधकर कई प्रकार के संकेत किए, शायद कई प्रकार के मन्त्र पढ़े होंगे, परन्तु वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो पा रहे थे और कुछ ही क्षणों में हम उनके क्षेत्र के बाहर आ गए थे। हमने देखा कि हम आकाश-मार्ग से नीचे की ओर उतर रहे हैं, मुझे वह क्षेत्र परिचित-सा लगा। जब और नीचे आया, तो ज्ञात हुआ कि यह तो वही संन्यासी हैं, जिन्होंने हमें इस तरफ़ जाने के लिए मना किया था। ये हमें मन्त्र-बल से नीचे उतारने का संकेत कर रहे थे और हम तीनों नीचे उतर रहे थे कुछ ही क्षणों में ज़मीन पर हम उसके सामने खड़े थे।

वही चट्टान थी। सामने नदी अपने पूरे वेग के साथ बह रही थी। वही संन्यासी खड़े थे। आज उनके पास एक और संन्यासी बैठे हुए थे, जो अत्यन्त ही वृद्ध, सौम्य और तेजस्वी थे।

संन्यासी ने उन दूसरे संन्यासी का परिचय देते हुए कहा, "ये स्वामी सूर्यानन्द जी हैं, रसायनशास्त्र में इन्होंने अत्यधिक श्रेष्ठता प्राप्त की है, इस तरफ़ कुछ विशिष्ट वनस्पतियों को लेने के लिए आए थे और मेरे पास बैठे थे।"

मैंने पूछा, "पारद के बारे में मैंने पढ़ा है कि वह विश्व की अद्वितीय शक्ति है। उसके माध्यम से सब-कुछ सम्भव है। आद्य शंकराचार्य ने गुरु श्रीमद गोविन्दपादाचार्य जी ने अपने ग्रन्थ 'रसहृदय तन्त्र' में कहा है — एवं रससंसिद्धौ दुःख जरामरणवर्जितो गुणवान, खेगमनेन च नित्यंसंचरते सकलभुवनेषु यानी रस अर्थात पारे को सिद्ध कर सेवन करने से कोई भी व्यक्ति वृद्धावस्था एवं मृत्यु से मुक्त हो जाता है, उसका शरीर दिव्य गुणों से युक्त बन जाता है तथा वह जब भी चाहे अपनी सूक्ष्म देह से आकाश गमन करके तीनों लोकों में विचरण कर सकता है।

"उस ग्रन्थ में पारे से कई प्रयोग दिए हुए हैं, जिसके माध्यम से व्यक्ति पारद मर्दन करके स्वर्ण बन सकता है, सिद्ध बन सकता है, और जरा, मरण से रहित होकर अजर-अमर हो सकता है। क्या आज के युग में ये सब सम्भव है?"

सूर्यानन्द जी ने कहा, "सही हैं और प्रामाणिक हैं। पारद तो भगवान शंकर के समस्त शरीर का सत्व है, वीर्य है। यदि उसको बांध दिया जाए और गजपुट करके ऊर्ध्वपातन यन्त्र से गोली बना दी जाए, तो उस गोली को मुंह में रखते ही व्यक्ति अदृश्य हो सकता है। जितने समय तक वह गोली उसके मुंह में रहेगी वह बराबर अदृश्य बना रह सकेगा। पारद को सूर्य ताप से आच्छादित कर अरण्य सूरण के रस में घोंटकर गोली बनाई जाए और उस गोली को हाथ में रखने से ही योगी आकाश-मार्ग में विचरण कर सकता है और एक स्थान से दूसरे स्थान पर बिना किसी बाधा के आ-जा सकता है। पारद को नाग भस्म से शिला प्रक्षेप कर जारण करने से, जो गोली बनती है, यदि मधु में कुछ समय रखकर उसका सेवन किया जाए, तो साधक का पूरा शरीर वज्रवत बन जाता है। स्वर्ण के लिए तो उसमें कहा ही है —

आवृत्ते प्यावर्त्य हेमवरे क्षेप्यमुज्ज्वले नागम्
त्रिगुणशिलाप्रतिवापं स्यहिबींजं तत्समुद्दिष्टम्

अर्थात शुद्ध पारद में मूपा रस, समभाग नागभस्म तथा तीन गुनी शिला सत्व मिलाने से पारद स्वतः स्वर्ण बन जाता है।"

"वस्तुतः इस पारद से हम पूरे विश्व में क्रान्ति ला सकते हैं, इसके माध्यम से अक्षय यौवन प्राप्त किया जा सकता है। परकाया प्रवेश हो सकता है, और सोने का ढेर लगाया जा सकता है।"

स्वामी जी हंस दिए। बोले, "तन्त्र की अन्तिम स्थिति पारद शोधन एवं पारद रूपान्तरण है। रावण तन्त्र का सर्वश्रेष्ठ साधक था और उसने पारद के माध्यम से ही पूरे नगर को स्वर्ण बना दिया था। पारद के द्वात्रिंश संस्कार कर उसे पूर्ण बुभुक्षित बनाया जा सकता है और फिर उसे स्वर्ण-ग्रास देकर पारद पारस निर्मित किया जा सकता है। ऐसा पारद स्वर्ण को निगलता रहता है, परन्तु फिर भी न तो उसका वज़न बढ़ता है, न उसमें किसी प्रकार का कोई अन्तर ही आता है। पर एक स्थिति ऐसी आती है कि वह पारद स्वर्ण निगलना बन्द कर देता है और पुनः स्वर्ण प्रवाहयुक्त बन जाता है। ऐसे बुभुक्षित पारद को यदि लोहे के ढेर से भी स्पर्श करा दिया जाए, तो वह कुछ ही सेकेंडों में उस लोहे के ढेर को भी सोने में परिवर्तित कर देता है। यही नहीं अपितु जब वह पारा पारस बन जाता है तब वह मात्र लौह को ही नहीं, अपितु पत्थर को भी स्वर्ण में रूपान्तरित कर देता है। ऐसा स्वर्ण सर्वथा निर्दोष होता है।"

मैंने पूछा, "तापरहित स्वर्ण का क्या तात्पर्य है?"

स्वामी जी ने कहा, "स्वर्ण को जब अग्नि-मुख किया जाता है या उसे अग्नि में रखा जाता है, तो एक निश्चित ताप पर वह पिघल जाता है। परन्तु जो पारस पारद से स्वर्ण बनता है, वह चाहे लोहे से बना हो या पत्थर से बना हो, ताप का उस पर कोई प्रभाव व्याप्त नहीं होता। न उसका रूपान्तरण ही होता है।"

सूर्यानन्द जी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा, "यदि पारे को करकट जिह्वा से मर्दन किया जाए और उस पारे का सेवन कर दिया जाए तो योगी बर्फ़ीली चोटियों के बीच युगों तक बैठा रह सकता है। यदि लौह क्षार से मर्दन कर पारे का सेवन किया जाए, तो सारा शरीर अत्यधिक सुन्दर बन जाता है। अभी तक हमने पारद के महत्त्व को समझा ही नहीं है, हम तो पुनः लौह

युग में चले गए हैं और व्यर्थ-सी धातु लौह को अपना सर्वस्व समझ बैठे हैं।"

उन्होंने शून्य में से कुछ पारद प्राप्त किया और फिर अपने पास ही उगी हुई एक जड़ी की पत्तियों को तोड़कर अलग किया। मैं जान गया कि ये पत्तियां हेमन्त हरित पौधे की हैं। उन पत्तियों के साथ अपनी हथेली पर ही पारद का मर्दन कर गोली बनाई और कहा, "यह गोली यदि मुर्दे के मुंह में रख दी जाए, तो निश्चय ही उसमें प्राण-चेतना लौट आती है और इसके बाद भी वह कई वर्षों तक जीवित रह सकता है।"

फिर उठते-उठते उन्होंने कहा, "शायद अगली भेंट दिव्य आश्रम में ही होगी और वह संन्यासी जी से मिल एक तरफ़ को बढ़ गए।"

हम तीनों ने स्वामी जी को प्रणाम किया, उन्होंने 'शुभाष्तु पंथानः' का आशीर्वाद देते हुए हमें विदा दी। हम बराबर नदी के किनारे-किनारे चल रहे थे और जब स्वामी कालत्रयानन्द जी के आश्रम में पहुंचे, तो लगभग चार बज चुके थे।

योगिनी ने मोहग्रस्त-सी दृष्टि से स्वामी जी की ओर देखा। स्वामी कालत्रयानन्द जी ने कहा, "योगी और तान्त्रिक के लिए किसी भी प्रकार का कोई सामाजिक सम्बन्ध नहीं होता। तुम्हें पिता का मोह नहीं करना चाहिए, आगे चलकर तुम्हारे पिता कुछ विशिष्ट साधनाएं प्राप्त कर इन वज्रयानी साधकों का मुक़ाबला करेंगे और उन्हें परास्त करेंगे। ऐसा मुझे काल के गर्भ में दिखाई दे रहा है।"

हम तीनों उठ खड़े हुए और नदी के किनारे चले गए। मृगाक्षी पिता को छोड़ते हुए अत्यधिक दुःख अनुभव कर रही थी।

वहां से हम दोनों दिव्य आश्रम की ओर चल पड़े। यह आश्रम का रास्ता आते समय मेरे मानस में स्पष्ट था। मुझे वह दिन याद हो आया जब हम दोनों दिव्य आश्रम से इधर आ रहे थे और आज हमारा सौभाग्य था कि हम पुनः दिव्य आश्रम की ओर पूर्णता के लिए जा रहे थे।

हम दोनों बातचीत में तल्लीन बराबर बढ़े जा रहे थे कि सामने दिव्य आश्रम का द्वार दिखाई दिया। द्वारपाल ने हमें साथ ले जाकर एक कक्ष की

ओर संकेत कर दिया जहां हमें रात्रि विश्राम करना था।

प्रातः काल उसी संन्यासी ने हमें आकर सूचना दी कि आज ब्रह्मत्व दिवस के अवसर पर पूज्य गुरुदेव तुम दोनों को दीक्षा देंगे और शिष्यत्व प्रदान करेंगे।

हम दोनों की प्रसन्नता का ठिकाना न था, जल्दी से हमने दिव्य निर्झर में स्नान किया। काशाय वस्त्र, जो पहले से ही रखे हुए थे। धारण किए और ठीक समय पर गुरुदेव के चरणों में पहुंच गए।

उन्होंने हज़ारों शिष्य-शिष्याओं के बीच हमें दीक्षा प्रदान की और शिष्यत्व देते हुए कहा, "आज से तुम मेरे शिष्य हो। अपने-अपने क्षेत्र में अद्वितीयता प्राप्त करना है। मेरा आशीर्वाद प्रत्येक क्षण तुम्हारे साथ रहेगा।" और ऐसा कहते-कहते परमहंस योगीराज स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी ने हम दोनों के सिर पर वरदहस्त रखकर अभय प्रदान किया।

हम दोनों गद्गद थे, भाव-विह्वल थे, सौभाग्य से श्रेष्ठतम क्षणों में थे कि आज वह सब-कुछ प्राप्त हो सका है, जो बिरले ही योगियों के भाग्य में होता है। हम ही नहीं दिव्य आश्रम के सभी गुरु-भाई-बहनों ने हर्ष ध्वनि कर हमें अपनाया। और हमारे मुंह से शब्द उच्चरित हो रहे थे, **'त्वदीयं वस्तु निखिलं तुभ्यमेवं समर्पयेत।'**

●●●

नेपाल की एक रियासत की कोमलांगी परम सुन्दरी राजकुमारी मृगाक्षी के अद्‌भुत-अनोखे तन्त्र-संसार की रोचक-रोमांचक दास्तान।

हिमालय के महाश्मशान में बसने वाले भैरव-भैरवियों तथा अघोरियों की रहस्यमय जीवन-शैली और तन्त्र साधनाओं का आश्चर्य में डाल देने वाला वर्णन। अपने गुरु के साथ मृगाक्षी का भयानक तन्त्र-युद्ध और उसमें विजय के बाद परम गुरु की शरण में जाने का जीवट भरा वृत्तान्त। एक ऐसी रचना, जो उपन्यास होने के साथ-साथ तन्त्र-क्षेत्र के नियमों, विधियों और उसके इतिहास तथा परम्परा से सीधा साक्षात्कार कराती है।

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त ज्योतिषाचार्य तथा तन्त्र-शास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान डॉ. नारायणदत्त श्रीमाली की चमत्कारिक लेखनी से निकला हिन्दी का एकमात्र तान्त्रिक उपन्यास है श्मशान भैरवी।

एक अर्से तक नहीं भुलाई जा सकने वाली अनूठी कृति श्मशान भैरवी।

हिन्द पॉकेट बुक्स

Rs. 125

तन्त्र-मन्त्र

TANTRA-MANTRA

AHW HPB HINDI SERIES

Please visit:
www.hindpocketbooks.in

ISBN 978-81-216-0510-6

9 788121 605106